श्री गोपीगीत

पू. श्रीरामचंद्र डोंगरेजी महाराज



प्रकाशक

राधा भण्डार

श्रीरामाय श्रीकृष्णाय च नमः

श्रीगोपीगीत

प० पू० श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराजश्रीकी

अति उत्कट हृदय - भावनाओंकी गहराईमें डूबी

प्रेमरसपूर्ण प्रवचन - सुधा

[अलौकिक दिव्य प्रेमका अमर तथा बेजोड़ भाव - गीत]



श्रीगोपीगीत एक अलौकिक प्रेमगीत है। दुनियाके प्रेमगीतोंमें सबसे निराला व दिव्य गीत है यह। वैष्णवोंने जिस प्रेमका गायन किया है, वह शरीरके साथ किये गये प्रेमका गायन नहीं है। वह तो परमात्माके साथ किये गये प्रेमका अलौकिक हर्ष है, जो अतिशय शुद्ध, मार्मिक, अपना भान भुला देनेवाला तथा उत्साहके साथ हृदयसे प्रकट होनेवाला है।

--प० पू० श्रीडोंगरेजी महाराज

प्रकाशक

राधा भण्डार

गोस्वामी गणेशदत्त मार्ग, गांधी नगर, दिल्ली-११००३१ फोन : २२१३१०७

सांसारिक प्रेमके क्षेत्रमें पहला कदम रखनेवाले प्रत्येक नवयुगलका हृदय भी धीरे-धीरे ऐसे दिव्य प्रेमसे छलकनेवाला हो जाय, इस उद्देश्यसे आप शुभेच्छापूर्वक यह पुस्तक उन्हें प्रेम - सहित भेंटके रूपमें दे सकते हैं ।

प्रकाशन • बसंत पंचमी
तिथि • वि. सं. २०४६,
संस्करण • एक हजार प्रतियाँ

न्यौछावर—पच्चीस रुपये

卐

मुद्रक • राधा प्रेस,
२४६५, गोस्वामी गणेशदत्त मार्ग,
गांधी नगर, दिल्ली-११००३१

शासल (17)

वन्दना

परम पूज्य श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराजके श्रीमुखसे, गुजरातके कपडवंज नामक स्थानकी धर्मप्रेमी जनताके समक्ष बहायी गयी, गोपीगीतपर दिये गये व्याख्यान-रूपी ज्ञान भक्तिकी गंगा-यमुना, वैष्णवोंके हृदय-प्रांगण तक पहुँचानेमें कृतकृत्यताका अनुभव हो रहा है।

प० पू० महाराजश्रीकी आज्ञा थी कि प्रत्येक वैष्णवको चाहिये कि वह गोपीगीतकी प्रार्थनाके द्वारा श्रीबाँकेविहारीलालको सतत मनाये और रिझाये किन्तु इस गीतके फलका अधिकारी होनेके लिये सबसे पहिले हमें गोपी बनना पड़ेगा व अपनेमें गोपी-भाव जाग्रत करना पड़ेगा। श्रीकृष्णके दर्शन-मिलनकी तीव्र आतुरता जब हृदयमें जागती है, तभी गोपी-भाव जाग्रत होता है।

परम पूज्य महाराजश्रीके द्वारा इन व्याख्यानोंमें बहायी गयी भक्ति-यमुनाके किनारेपर जब आप निरन्तर रहेंगे, बार-बार इसका पठन, मनन, और चिन्तन करेंगे तो धीरे-धीरे आपके हृदयमें गोपी-भाव जाग्रत होगा और तभी आप गोपीगीतके भाव और रहस्यको प्राप्त कर सकेंगे व इस भावको हृदयमें उतार सकेंगे। जब आपके हृदयमें गोपी-भाव स्थिर रूपसे बस जायगा, तब श्रीबाँकेविहारीलाल अवश्य ही अपनी रासलीलामें आपको प्रवेश देंगे तथा आपको परमानन्दका दान देंगे।

कथा-श्रवण तथा पुस्तकके पढ़नेमें बहुत अन्तर है। पुस्तककी अपनी मर्यादाएँ हैं। कथामें वक्ता श्रोताओंको प्रत्यक्ष रसास्वादन कराता है, जबकि पुस्तकके पढ़नेमें पुस्तकको माध्यम व आधार बनाकर चलना पड़ता है। अतएव स्पष्ट है कि कथा-श्रवणमें जो रसानुभूति होती है, वह पुस्तक पढ़कर होनी कठिन है।

वैष्णवजन, भक्तिके किनारेपर निरन्तर रह सकें, इसी हेतुसे ही महाराजश्री-के द्वारा बहायी गयी भक्ति-सरिताको इस पुस्तकमें समेट लेनेका विनम्र प्रयास किया गया है। प्रयासमें अनेक भूलें रह गई होंगी। वह सारा दोष हमारे अधिकारीपनकी गफलतके कारण ही आया है, ऐसा हम मानते हैं। वैसे परम पूज्य महाराजश्रीको कथामें तो सचमुच ही वक्ता, विषय तथा वाणीका अमृतमय त्रिवेणी-संगम हुआ ।

यह पुस्तक परम पूज्य महाराजश्रीको सादर समर्पित है।

—प्रकाशक

अनुक्रमणिका

पृष्ठ-संख्या

॥ श्रीगोपीगीत ॥

श्री गोपी-विरह-गीत

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥१॥

शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदर श्रीमुषा दृशा ।
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका वरद निघ्नतो नेह किं वधः ॥२॥

विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद् वर्षमारुताद् वैद्युतानलात् ।
वृषमयात्मजाद् विश्वतोभयात् ऋषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ॥३॥

न खलु गोपिकानन्दनो भवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् ।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान्सात्वतां कुले ॥४॥

विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते चरणमीयुषां संसृतेर्भयात् ।
करसरोरुहं कान्त कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥५॥

व्रजजनार्तिहन् वीर योषितां निजजनस्मयध्वंसनस्मित ।
भज सखे भवत्किङ्करीः स्म नो जलरुहाननं चारु दर्शय ॥६॥

प्रणतदेहिनां पापकर्शनं तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् ।
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम् ॥७॥

श्री गोपी-विरह-गीत

(हे कृष्ण !) तुम्हारे प्राकट्यसे व्रजकी शोभा बढ़ी है। लक्ष्मीजी भी यहाँ नित्य निवास करती हैं, व्रजका आश्रय उन्होंने भी ले रक्खा है। (हे प्रिय !) जो तुम्हारे लिये जीवित हैं और जो तुम्हारी ही हैं, ऐसी ये गोपियाँ, सम्पूर्ण दिशाओंमें तुम्हें खोजती फिर रही हैं। इसलिये हे दयालु ! इन्हें दर्शन दो, दर्शन दो ॥१॥

हे प्रिय ! शरद् ऋतुमें सरोवरमें उत्पन्न हुए अति सुन्दर कमलके अभ्यन्तरकी शोभाको लजानेवाली दृष्टिसे अपनी बिना मोलकी चेरियोंको क्यों मार रहे हो ? हे वर देने वाले ! क्या यह वध नहीं है ? ॥२॥

हे श्रेष्टतम ! कालियनागके द्वारा दूषित जहरीले जलसे, अघासुरसे, वर्षा व तूफानसे, बिजली और दावाग्निसे, वृषभासुरसे—अधिक क्या, सभी प्रकारके भयोंसे आपने बारम्बार हमारी रक्षा की है। (हमारा विश्वास है कि अब भी आप हमारी रक्षा करेंगे।) ॥३॥

निश्चय ही आप गोपिका (यशोदा) के पुत्र ही नहीं हो, परन्तु सब शरीरधारियोंकी अन्तरात्माके द्रष्टा हो। हे सखे। ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे विश्वकी रक्षाके लिये यादवकुलमें आप प्रकट हुए हो। ॥४॥

हे वृष्णिकुलमें श्रेष्ठ ! हे कान्त ! संसारके भयसे त्रस्त जो लोग आपकी शरणमें आते हैं, उनको अभय देनेवाले, जनोंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले तथा लक्ष्मीजीका पाणिग्रहण करनेवाले अपने हस्तकमल हमारे मस्तकपर आप रक्खें ॥५॥

हे व्रजवासियोंकी पीड़ा हरनेवाले ! हे स्त्री-वीर ! (स्त्रियोंको जीतने वाले) अपने भक्तोंके दर्प व गर्वका अपनी मुसकानसे नाश करनेवाले ! हे सखे ! हम जो तुम्हारी दासी हैं, उन्हें आप भजो ! अपना मनोहर मुख-कमल (हमें भी) दिखाओ ॥६॥

तुम्हें जो प्रणाम करते हैं, ऐसे देहधारियोंके पापोंको दूर करनेवाले, गौओंके पीछे-पीछे फिरनेवाले, लक्ष्मीजीके निवासरूप, कालियनागके फणोंके ऊपर नृत्य करनेवाले अपने चरण-कमलोंको हमारे हृदयों पर भी पधराओ तथा हमारे अन्तरमें सोनेवाले कामका (सम्पूर्ण) नाश करो ॥७॥

मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण ।
विधिकरीरिमा वीर मुह्यतीरधरसीधुनाऽऽप्यायस्व नः ॥८॥

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम् ।
श्रवणमंगलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनः ॥९॥

प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं विहरणं च ते ध्यानमंगलम् ।
रहसि संविदो या हृदिस्पृशः कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि ॥१०॥

चलसि यद् व्रजाच्चारयन्पशून्नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम् ।
शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नःकलिलतां मनः कान्त गच्छति ॥११॥

दिनपरिक्षये नीलकुन्तलैर्वनरुहाननं बिभ्रदावृतम् ।
घनरजस्वलं दर्शयन्मुहुर्मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि ॥१२॥

प्रणतकामदं पद्मजार्चितं धरणिमण्डनं ध्येयमापदि ।
चरणपङ्कजं शन्तमं च ते रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥१३॥

सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम् ।
इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥१४॥

अटति यद् भवानह्नि काननं त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् ।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम ॥१५॥

हे कमलनयन ! हे वीर ! सुन्दर वाक्योंसे भरी तथा विद्वानोंके मनको अच्छी लगनेवाली तुम्हारी मधुरवाणीसे मोहित हुई अपनी इन दासियोंको अधरामृतसे तृप्त कर दो ॥८॥

(हे नाथ !) तुम्हारा कथामृत संतप्त प्राणियोंका जीवन है। कवि भी उसका बखान करते हैं। वह कथामृत पापोंको दूर करता है। उसे सुननेसे कल्याण होता है। वह श्री-से युक्त है तथा सर्वत्र व्यापक भी है। इस धरतीपर जो जन उसका गान करते हैं अथवा स्तवन करते हैं, वे महादानी हैं ॥९॥

हे प्रिय ! हे कपटी ! तुम्हारा हास्य, तुम्हारी प्रेमभरी दृष्टि, ध्यानके लिए मंगलकारी तुम्हारा विहार तथा हृदयको छूनेवाली तुम्हारी सिद्धान्तोंसे भरी संकेतवार्ता, हमारे मनमें क्षोभ उत्पन्न करती है (इसलिये हमारे मनोंको शान्तिसे भर दो) ॥१०॥

हे नाथ ! जब पशुओंको चरानेके लिये आप व्रजसे पधारते हो, तब आपके कमल जैसे सुन्दर चरण, कंकड़ियों, काँटों तथा अंकुरों आदिके लगनेसे व्यथित होते होंगे ऐसा विचारते हुए हमारा मन व्याकुल हो जाता है। हे कान्त ! हमारे इस आकुल मनको शान्ति प्रदान करो ॥११॥

हे वीर ! सन्ध्याके समय बिखरी हुई घुंघराली अलकोंसे आवृत तथा गौओंके खुरोंसे उड़ती रजसे धूसरित हुये अपने मुखके दर्शन कराकर आप हमारे मनमें बारम्बार मिलनकी तीव्र भावना जाग्रत् करते हो ॥१२॥

हे रमण ! आपको जो प्रणाम करता है, उसकी कामनाएँ पूर्ण करनेवाले, लक्ष्मीजी (अथवा ब्रह्माजी) के द्वारा पूजित, इस धरतीके श्रृंगाररूप, आपत्तिके समय चिन्तन करनेके योग्य तथा सदा सुखकारी अपने चरण-कमल हमारे वृक्षःस्थलपर पधराओ ॥१३॥

हे वीर ! प्रेमकी वृद्धि करनेवाले, शोकका नाश करनेवाले, सुरीली वंशीके द्वारा मनोहर रीतिसे चुम्बित तथा मनुष्योंके अन्य सभी रागोंको भुलानेवाले अपने अधरामृतको हमें प्रदान करो ॥१४॥

दिनमें जब आप वनमें विहार करते हो, तब आपको न देखकर एक क्षण भी हमें युगके समान लगता है तथा सायंकाल जब घुंघराली अलकोंसे घिरे आपके श्रीमुखका हम दर्शन करती हैं, तब इन आँखोंकी पलकोंको बनानेवाला ब्रह्मा जड़ है, ऐसा हमें लगता है ॥१५॥

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवानतिविलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतागताः ।
गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि ॥१६॥

रहसि संविदं हृच्छयोदयं प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम् ।
बृहदुरः श्रियो वीक्ष्य धाम ते मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः ॥१७॥

व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमंगलम् ।
त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ॥१८॥

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ।

तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥१९॥



हे अच्युत ! पति, पुत्र, भाई तथा सगे सम्बन्धियोंका भी उल्लंघनकर हम आपके पास आई हैं। आपके गीतसे हम मोहित हो गई हैं। हमारे आगमनका कारण भी आप जानते हैं। हे कपटी ! रात्रि के समय आपके बिना ऐसा दूसरा कौन-सा पुरुष है जो स्त्रियोंका त्याग कर सके ॥१६॥

एकान्तमें आपके साथ हुआ वार्त्तालाप, उसके कारण हममें इच्छाका उदय, आपका हँसता हुआ मुख-कमल, आपकी प्रेम-भरी दृष्टि तथा लक्ष्मीजीका धाम-रूप आपका विशाल वक्षःस्थल—इन सबको देखकर हममें बारम्बार असाधारण भावना जाग रही है और हमारा मन, मोहको प्राप्त हो रहा है ॥१७॥

अपने प्राकट्यसे आपने व्रजवासियोंके पापोंका हरण किया है तथा जगतका कल्याण किया है। अतः हे प्रिय आत्मन् ! आपकी अभिलाषा करनेवाली जो हम हैं— उनके हृदयके रोगका जो नाश कर सके, ऐसी औषधि हमें प्रदान करो ॥१८॥

हे प्रिय ! आपके जो कोमल चरण-कमल हैं, उनको हम अपने वक्षःस्थलको कठोर जानकर डरते-डरते उनपर धारण करती हैं। उन्हीं चरणोंसे आप वन-वनमें फिरते हो। आपके उन चरणोंको काँटों एवं छोटी-छोटी कंकड़ियोंसे क्या पीड़ा नहीं होती होगी ? आप ही जिनके जीवन हो, ऐसी हम यही सोचती रहती हैं। हमारी मति इन्हीं विचारोंसे चक्कर खाती रहती है। (हे प्रभु) हमारी इस हृदय-पीड़ाको शान्त करो ॥१९॥



पीठिका

अलौकिक प्रेम-गीत

गोपी-विरह-गीत एक अलौकिक प्रेम-गीत है। यह संसारके प्रेम-गीतोंमें सबसे निराला दिव्य गीत है। वैष्णवोंके द्वारा जिस प्रेमका गान किया गया है, वह प्रेम शरीरके साथ किया जानेवाला प्रेम नहीं है। वह तो परमात्माके साथ होनेवाला अतिशय शुद्ध, मार्मिक, भान भुला देनेवाला तथा हार्दिक उमंगके साथ प्रकट होनेवाला अलौकिक प्रेम वा हर्ष है।

परमात्मा श्रीकृष्णके साथ प्रेमसे अभिन्न रूपसे जुड़ी हुई हैं उनकी आत्मा श्रीराधा। उनका जो श्रीकृष्णसे विरह है, उसका भाव है ईश्वरसे मिलनेकी जीवन-दायिनी तीव्र उत्कण्ठा। प्रभुसे मिलनेकी आतुरताका अनुभव करनेवाली पवित्र जीवात्मा तो प्रभुके प्रेम-मन्दिरके समान है। वह तो प्रभु के चरणोंमें हृदयकी भावनाके पुष्पोंको अर्पित करनेके लिये सदा तत्पर रहती है किन्तु भक्तिमें सोलहों आने यानी पूरी तन्मयता हो तो प्रभु अपने जनको अंगीकार करते हैं। प्रभुकी ओर-से दृष्टि यदि थोड़ी-सी भी हटती है तो हम परमात्माको खो देते हैं। अपने अभिमानके कारण प्रभुकी अवज्ञा कर डालने-वाली उन्नीस प्रकार की गोपियोंने प्रभुको रिझानेके लिये उन्नीस श्लोकोंके द्वारा जो स्तुति की, वही दिव्य गोपी-विरह-गीत है।

गोपी-विरह-गीतकी भाषा भले ही लौकिक हो, किन्तु उसमें निहित भावना तो दिव्य प्रेमकी ही है। प्रभु-मिलनके लिये तड़पती अकुलाती गोपियोंके शरीर, मन, प्राण, प्रभुके स्मरणमें रम गये। उसके पश्चात् प्रेमोन्मादका प्रतीक-जैसा यह अलौकिक प्रेम-गीत उन्होंने गाया। यह गीत आज तक भी भावुकोंको भाव-मग्न कर प्रभुके लीला-लोकमें पहुँचा देता है।

श्रीकृष्ण—

'कृष्' अर्थात् सत् एवं 'ण' अर्थात् आनन्द। इस प्रकार श्रीकृष्ण हैं सदानन्द यानी परब्रह्म। वेदकी ऋचाओं तथा मन्त्रोंमें परब्रह्मके सदानन्द-स्वरूप—रस-रूपका निरूपण किया गया है।

रसो वै सः। श्रीकृष्ण स्वयं रसरूप हैं। प्रेमके चिदानन्दघन दिव्य शरीर हैं। उनके देह-देही, गुण-गुणी, रूप-रूपी, नाम-नामी व लीला-लीलापुरुषोत्तमके स्वरूपोंमें कोई भेद नहीं। वे तो अजन्मा, अविनाशी और अच्युत हैं। श्रीकृष्णका प्रत्येक अंग पूर्ण रूपसे श्रीकृष्ण ही है। यों वह सर्वथा पूर्णतम हैं। उनकी यह रूप-माधुरी नित्य नवीन तथा नित्य सुन्दर है।

श्रीकृष्णको स्वयं आकर्षित करनेवाली यह रूपमाधुरी यदि गोपियों, गायों, हिरनों, वृक्षों, लताओं तथा व्रज-जनोंको आकर्षित करे तो इसमें क्या आश्चर्य है?

गोपी—

जिस प्रकार भगवत्स्वरूप, चिदानन्दमय और दिव्य है, वैसे ही भगवन्मयी गोपियाँ दिव्य जगत्‌की अद्‌भुत भगवत्‌की अद्‌भुत शक्ति हैं।

प्रभुके मुखसे प्रकट हुई वेदकी ऋचाओंने खूब तप किया और वे गोलोक धाम पहुँचीं। वहाँ उन्होंने आनन्दघन स्वरूपके साक्षात् दर्शन किये तथा दिव्य अलौकिक-अखण्ड रासके भी दर्शन किये। उनकी रसानुभूति करनेकी आतुरताको देख प्रभुने आज्ञा दी और उस आज्ञाको प्राप्तकर श्रीकृष्णावतारमें वे ऋचायें ही श्रुतिरूपा गोपियाँ बनीं।

दण्डकारण्यमें श्रीसीतारामजीके दर्शनकर सोलह हजार ऋषि मन्त्र-मुग्ध हो गये। उनके हृदयमें उत्कण्ठा जगी कि वे श्रीसीताजीकी तरह श्रीरामसे मिलनेका सुख-लाभ करें। उनको भी प्रभुने आज्ञा दी और वे ऋषि श्रीकृष्णावतारमें ऋषिरूपा गोपियोंके रूपमें अवतरित हुए।

गोपियाँ दिव्य रसात्मिका हैं। भौतिक बन्धनोंसे वे मुक्त हैं। उनकी दृष्टिमें केवल चिदानन्दरूप श्रीकृष्ण ही रहते हैं। उनके हृदयमें श्रीकृष्णको भी तृप्त करनेवाला प्रेमामृत रहता है। गोपियाँ तो ब्रह्माण्डके सात आवरणोंको भेदकर प्रभुके चरणोंको प्राप्त करनेवाली सम्पूर्ण प्रगतिशील दिव्य जीवात्माएँ हैं।

वेणु—

मुरलिया कौन तप तैं कियौ ॥
सुन्दर श्याम कमल दल लोचन, अधरनकौ रस दियौ ॥

वेणु, पूर्वकालमें ब्रह्माजी मानसपुत्री सरस्वती थीं किन्तु उनकी रूपराशिसे स्वयं ब्रह्माजी आकर्षित हो गये। तब इन्होंने ब्रह्माजीको रोकनेके लिये चेतावनी दी कि

"मैं तो सर्वेश्वरकी बन चुकी हूँ ।" यह सुनकर ब्रह्माजीको क्रोध आया और उन्होंने सरस्वतीजीको शाप दिया कि जड़ बाँसके रूपमें तुम्हें जन्म लेना पड़ेगा तब उन्होंने प्रभु-प्राप्तिके लिए एक हजार वर्षोंतक तपस्या की । प्रभु प्रसन्न हुए और कृष्णावतारमें अपनी सहचरी बनानेका वरदान उन्होंने सरस्वतीजी को दिया । तब उन्होंने ब्रह्माजीके शापको यादकर प्रभुसे कहा 'लेकिन मुझे तो जड़ बाँसके रूपमें जन्म लेनेका शाप मिला है ।' यह सुनकर प्रभुने कहा—'भले ही तुम्हारा जन्म जड़रूपमें हो, फिर भी मैं तुम्हें स्वीकार करूँगा । तुम्हारी जडतामें मैं ऐसी प्राण-शक्ति भर दूँगा कि तुम विचित्र चेतनाका अनुभव करोगी और अपनी उस चेतनाके द्वारा तुम अनेक जड़ोंको चैतन्य बनाये रख सकोगी ।'

उसके पश्चात् सरस्वतीजीका जन्म वंशीके रूपमें हुआ और वे प्रभुकी प्यारी वंशी बन गयीं ।

रास—

अपनी निजस्वरूपा गोपियों तथा आह्लादिनी शक्ति श्रीराधाके साथ हुई प्रभुकी दिव्यातिदिव्य क्रीड़ाका नाम है रास । रासमें प्रभु स्वयं आस्वाद्य, आस्वादक, लीला, धाम, आलम्बन, उद्दीपन आदि अनेक रसोंके रूप धारण करते हैं तथा अनन्त रसका आस्वादन करते हैं ।

प्रभु की यह दिव्य लीला, दिव्य धाममें तो निरन्तर चलती रहती है किन्तु उसका आनन्द, प्रेमी भक्तों तथा वैष्णवोंको भी मिले—ऐसी भावना जब प्रभुके अन्तरमें जागती है तब वे अपने दिव्य धाम के साथ पृथ्वीपर उतरते हैं तथा दिव्य रासलीला करते हैं । उस लीलाका स्मरण-चिन्तन करके तथा उसमें सम्मिलित होकर अधिकारी भक्त कृतकृत्य हो जाते हैं ।

रसात्मक ब्रह्मके— रसेश श्रीकृष्णके अपनी शक्तियोंके साथ किये गये इस रास-रमण को भागवतकारने अपनी अनुपम प्रतिभा तथा क्षमता से रसपूर्ण, हृदयंगम तथा लोकोत्तर बना दिया है ।

पूज्य डोंगरेजी महाराजका गोपीगीत ग्रन्थ



परमात्मा श्रीकृष्ण व्यासनारायण के रूपमें प्रकट हुए। व्यासनारायण, भगवान् श्रीकृष्णके ज्ञानावतार हैं। प्रभुको लगा कि मेरे स्वरूपका जगत्को ज्ञान नहीं है। इसी कारण परमात्माने व्यासजी का स्वरूप धारण किया।

श्रीव्यास महर्षिने वेदोंका विभाग किया तथा अनेक पुराणोंकी रचना की। इतने पर भी उन्हें शान्ति नहीं मिली। तब नारदजीकी आज्ञासे उन्होंने प्रेम-प्रधान भागवत-शास्त्रकी रचना की।

श्रीमद्भागवतशास्त्र, प्रेमशास्त्र है। परमात्मासे जीव जब प्रेम करता है, तभी परमात्मा, मायाका पर्दा हटाकर प्रकट हो जाते हैं। जीव, जबतक जगत्से प्रेम करता है, तबतक जीवको संसारके विषय मीठे लगते हैं और तब तक इसकी भक्ति बराबर होती नहीं। परमात्मा जीवको प्रेम देते हैं और जीवसे प्रेम की ही माँग करते हैं। व्यास महर्षिने भागवतमें प्रेमकी महिमाका वर्णन किया है। सगुण परमात्मा प्रेमके स्वरूप हैं तथा निर्गुण-निराकार ईश्वर, ज्ञानके स्वरूप हैं। दोनोंका ही साक्षात्कार प्रेमसे होता है।

ज्ञान-मार्गमें परमात्मा सोलहों आने वैराग्यकी माँग करते हैं तथा भक्ति मार्गमें सोलहों आने यानी पूर्ण प्रेमकी माँग करते हैं। संसारके विषयोंसे पूर्ण वैराग्य हो तो ज्ञानमें सिद्धि प्राप्त होती है। जो लोग परमात्मासे विशुद्ध प्रेम करते हैं, उनको परमात्मा अपना असली स्वरूप बतलाते हैं। ज्ञानी भी जबतक ईश्वरसे अतिशय प्रेम नहीं करता, तबतक परमात्मा मायाके पर्देसे अपने आपको ढँके रहते हैं।



पूज्य डोंगरेजी महाराजका

भागवतमें परमात्माके निर्गुण-निराकार तथा सगुण-साकार—दोनों ही स्वरूपोंका वर्णन मिलता है। निर्गुण-निराकार ईश्वर सभीमें चैतन्य-रूपसे विराजमान हैं। उनका अनुभव करना अत्यन्त आवश्यक है। सभीमें ईश्वरका अनुभव होनेसे ही मन पवित्र रहता है। लड्डूके एक-एक कणमें खांड रहती है। यह खांड आँखसे भले ही दिखाई न देती हो लेकिन बुद्धिसे उसका अनुभव तो होता ही है। इसी प्रकार सभीमें चैतन्य-रूपसे विराजमान ईश्वरका अनुभव, महापुरुष बुद्धिके द्वारा करते हैं।

सगुण-साकार परमात्मा श्रीकृष्ण तो आँखोंके आगे प्रत्यक्ष रूपमें प्रकट होते हैं। दर्शन भी वे देते हैं। श्रीकृष्ण, प्रेम-स्वरूप हैं। जीवमात्रको अपनी ओर खींचनेके लिये श्रीकृष्ण लीला करते हैं। इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति संसारके विषयोंमें होती है। बहिर्मुखी होनेके कारण इन्द्रियाँ अन्दर विराजे हुए अन्तर्यामी परमात्मा श्रीकृष्णके सामने जाती नहीं। वे तो संसारके विषयोंकी ओर दौड़ती हैं। परमात्मा ऐसी दिव्य लीला करते हैं कि मानवकी एक-एक इन्द्रिय उनकी ओर आकर्षित होने लगती है।

आज भी जब हम लीलाकी बातोंको सुनते हैं तो मन लीलाकी ओर आकर्षित होता है, उसे बहुत आनन्द मिलता है। मन आकर्षित होता है, तभी तो आप अत्यन्त भीड़में भी शान्तिके साथ कथा सुनते हैं। आपको इस लीलामें आनन्द न आवे तो शान्ति आप रख ही नहीं सकेंगे।

श्रीकृष्णकी लीलाका श्रवण करनेमें आप सबको जब इतना अधिक आनन्द आता है तो गोपियोंका तो कहना ही क्या? वे तो श्रीकृष्णका प्रत्यक्ष दर्शन करती थीं। श्रीकृष्णकी वंशीके स्वर अपने कानोंसे सुनती थीं। कैसा आनन्द उन्हें मिलता होगा!

श्रीकृष्ण एक-एक इन्द्रियको अपनी ओर खींच लेते हैं। आँखोंको सौन्दर्य अच्छा लगता है श्रीकृष्णका स्वरूप इतना सुन्दर है कि उसका दर्शन करने के पश्चात् आँखोंको दूसरा स्वरूप देखना अच्छा लगता ही नहीं। अलौकिक सौन्दर्यसे प्रभु आँखोंको अपनी ओर खींचते हैं। तभी तो गोपियाँ उनको एकटक निहारती ही रहती हैं।



कानोंको मधुर ध्वनि प्रिय लगती है। श्रीकृष्ण वंशीको इतने सुन्दर व मधुर स्वरमें बजाते हैं कि लाला कन्हैयाकी वंशीको सुननेके पश्चात् दूसरा कुछ सुननेकी इच्छा ही नहीं रहती। यह तो अच्छा ही है कि आपने लालाकी वंशी अभी सुनी नहीं। यदि आप लालाकी वंशी सुन लें तो निश्चय ही आपको घर जाने तक की इच्छा न हो। लालाकी वंशी सुननेसे श्रीकृष्ण-दर्शन तथा श्रीकृष्ण-मिलनकी तीव्र आतुरता का उदय हृदयमें हो जाता है।

जगत्के सभी वाद्योंमें वंशी श्रेष्ठ है। वैसे तो बहुत प्रकारके वाद्य हैं परन्तु अन्य सभी वाद्योंको जब थोड़ा छेड़ा जाता है या उन्हें गति देनेकी चेष्टा की जाती है, तभी वे स्वरको अभिव्यक्त करते हैं, जबकि वंशी तो प्राणका वाद्य है। वंशीमें परमात्मा प्राण भर देते हैं।

परमात्माकी ऐसी इच्छा रहती है कि 'यह जीव तो मेरा अंश है। जबतक यह मायाके द्वारा संसारमें फँसा हुआ है, संसारका होकर रह गया है, तबतक यह मृतकके समान ही है। सब जीव मेरे अंश हैं। मैं उनसे मिलनेके लिये आतुर हूँ।' इस प्रकार परमात्माको तो जीवसे मिलनेकी बड़ी ही आतुरता रहती है किन्तु यह जीव इतना अभागा है कि प्रभुसे मिलनेकी किसी दिन भी यह इच्छा करता ही नहीं।

आप जब किसी मनुष्यसे मिलते हैं तो आपको बहुत आनन्द मिलता है तो जब आप परमात्मासे मिलेंगे तो आपको कितना आनन्द प्राप्त होगा, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। मानवसे मिलनेमें सुख है तो उस सुखसे हजारगुना दुःख भी है। जहाँ संयोग है, वहाँ वियोग भी अवश्य है। संयोग तो होता ही वियोगके लिये है। यह जीव एक बार यदि ईश्वरसे मिल ले, परमात्मा इसे एक बार अपनावे, इसे हृदयसे लगावे, एक बार इस जीवसे आलिंगन कर ले तो पीछे इसका वियोग ईश्वरसे होगा ही नहीं। इस जीवका ईश्वरके साथ जो सम्बन्ध है, वह सच्चा है लेकिन संसारके साथ इसका सम्बन्ध झूँठा ही है।



पूज्य डोंगरेजी महाराजका

आपका जन्म हुआ तब क्या आप किसीके पति थे। जन्म से न कोई पति होता है और न कोई पत्नी। पति-पत्नीका सम्बन्ध व्यवहारकी दृष्टिसे भले ही ठीक हो किन्तु तत्त्व-दृष्टिसे विचार करनेपर प्रतीत होता है कि यह सच्चा सम्बन्ध नहीं है। यह सम्बन्ध बहुत समय तक टिकता भी नहीं। कल्पना कीजिये कि कभी किसी की पत्नीकी मृत्यु हो जाती है तो पीछे वह पति कहलाये जानेपर भी पति नहीं रहेगा। जब पत्नी ही नहीं है तो पीछे वह पति कैसा ? पत्नी है तो पति भी है।

पति-पत्नीका सम्बन्ध सापेक्ष है। उसी प्रकार पिता-पुत्रका सम्बन्ध भी सापेक्ष है। पुत्र न रहे तो वह व्यक्ति पिता भी किसका रहेगा ? पुत्र हो तो पुरुषमें पितृत्व आता है। पुत्रकी मृत्यु हो जाय, पत्नीकी मृत्यु हो जाय तो न कोई पिता और न कोई पति। जीवका ईश्वरके साथ ही सच्चा सम्बन्ध है। परमात्मा तो आज भी जीवको आकर्षित करनेके लिये वंशी बजाते हैं।

आपने श्रीनाथजीके दर्शन तो किये ही होंगे। आपने देखा होगा कि श्रीनाथजीके हाथ ऊँचे हैं। एक वैष्णवने ठाकुरजीसे पूछा -'उस समय तो आपको गिरिराज गोवर्धनको धारण करना था तो आपने हाथ ऊँचा किये थे किन्तु क्या अब भी आपको गिरिराजको धारण करना है ? आपने हाथोंको ऊँचा क्यों कर रखा है।' प्रभुने कहा—'अब मैं हाथोंको ऊँचा करके एक-एक को बुलाता हूँ। यह जीव मेरा अंश है। यह मुझे भूल गया है तथा संसारमें फँसा हुआ है—जगत्का हो गया है।,

ईश्वर तो जीवसे मिलनेके लिये आतुर हैं तथा हाथोंको ऊँचा करके बुला भी रहे हैं। वे कह रहे हैं—'तू यहीं आ। तुझे संसारमें आनन्द नहीं मिलेगा।' इसका कारण है कि संसारके विषय सुख देते हैं तो दुःख भी देते हैं। आनन्द तो श्रीकृष्ण ही देते हैं। वे आनन्दके स्वरूप हैं। जीवको भी आनन्द चाहिए। परमात्मा श्रीकृष्ण जीवमात्रको अपनी ओर खींचनेके लिए लीलाएँ रचते हैं। श्रीकृष्ण-लीलाका एक रहस्य यह भी है कि इससे अनायास मनका निरोध होता है। मन संसारके विषयोंसे हट जाता है और परमात्माके चरणोंमें—भगवत्स्वरूपमें टिक जाता है।



प्रभुने अपने सौन्दर्यके द्वारा आँखोंको, वंशीके द्वारा कानोंको तथा लीलाओंके द्वारा मनको आकर्षित किया। श्रीकृष्णकी आकर्षण-शक्ति अलौकिक है। नित्यप्रति ठाकुरजीसे प्रार्थना कीजिये—'मेरे मनको आप खींच लीजिये। मेरा मन बिना कारण ही संसारमें भटक रहा है। मेरी आखें बहुत चंचल हैं। आँखें पाप करती हैं। हे प्रभु ! मेरी आँखोंको आप अपनी ओर खींच लीजिये।'

ऐसी आँखें किस कामकी जिन्हें संसारका सौन्दर्य बहुत अच्छा लगता हो ? ऐसी आँखें, आँखें ही नहीं हैं। ये तो पापकी साधिका हैं। आखें तो परमात्माका दर्शन करनेके लिये हैं। श्रीकृष्णका स्वरूप अति सुन्दर है। श्रीकृष्णकी प्रत्येक लीला जीवको अपनी ओर खींचनेके लिये सम्पन्न होती है।

रासलीला—

श्रीकृष्णकी सभी लीलाओंमें रासलीला अति श्रेष्ठ है। श्रीसर्वोत्तम स्तोत्रमें महाप्रभुजीका एक नाम है—रासलीलैकतात्पर्यः। श्रीमद्भागवतका फल भी रासलीला ही है। रासलीलाके पाँच अध्याय हैं। महापुरुष ऐसा मानते हैं कि ये पाँच अध्याय तो भगवान्‌के पंचप्राण ही हैं। इन पाँच अध्यायोंके मध्यमें ही गोपी-गीत है। उन्तीस तथा तीस—इन पहले दो अध्यायोंके समाप्त होनेके पश्चात् इकत्तीसवें अध्यायमें गोपीगीत आता है तथा बत्तीस और तेंतीस, इन दो अध्यायोंमें रासका सामान्य वर्णन होनेके साथ ही पाँचों अध्यायोंकी समाप्ति है। रासमें गोपीगीत प्रधान है।

परमात्मा वंशी बजाते हैं तथा उसका स्वर गोपियोंके कानोंमें पड़ता है। श्रीकृष्णकी वंशीको सुननेके पश्चात् गोपियोंको लगा कि श्रीकृष्ण हमसे मिलनेके लिये आतुर हैं तथा हमें बुला रहे हैं। गोपियोंको पूर्ण अधिकार मिला है। इसीलिए वे रासकी वंशी सुन सकती हैं। ऐसे तो श्रीकृष्ण जब गायोंको चरानेके लिये ले जाते हैं, तब भी मार्गमें वंशी बजाते हैं। इस वंशीका स्वर गायें भी सुनती हैं, पशु-पक्षी भी सुनते हैं, सभी सुनते हैं किन्तु रासकी वंशी सब नहीं सुन सकते। व्रजमें बहुत-सी सखियाँ हैं, अनेक जीव हैं लेकिन जिन



पूज्य डोंगरेजी महाराजका

जीवोंका यह जन्म अन्तिम है, प्रभुने जिन्हें अंगीकार किया है, जिनको परमात्माने अपनाया है, जिनको पूरा अधिकार मिला है, वे ही रासकी वंशी सुन सकते हैं।

परमात्माकी वंशीको सुननेके पश्चात् गोपियाँ प्रेमके वशीभूत हो दौड़ पड़ीं। 'गोपी'—यह शब्द सुननेपर कितनोंको ही लगता है कि उनका शरीर स्त्रीका शरीर है किन्तु गोपियाँ न तो स्त्री हैं और न ही पुरुष। गोपियोंमें न तो स्त्रीत्व है और न ही पुरुषत्व। मल-मूत्रसे भरे शरीरका तो देवगण भी स्पर्श नहीं करते। भगवान्‌के श्रीअंग जैसे आनन्दमय हैं, वैसे ही गोपियोंका स्वरूप भी अति दिव्य है।

खाँडके अनेक खिलौने बनते हैं। यदि कोई खाँडका करेला बनावे तो क्या उसमें कड़वाहट आयेगी ? खाँडका करेला देखनेमें तो करेला ही है। शायद कभी किसी बालकको भ्राँति भी हो जाय कि यह असली करेला है, किन्तु खाँडके इस करेलेमें कड़वाहट थोड़ी-सी भी नहीं बल्कि अत्यन्त मिठास है।

गोपियोंके श्रीअंग भी स्त्रियों जैसे दिखाई देते हैं, किन्तु गोपियोंमें स्त्रीत्व नहीं है। गोपियोंका स्वरूप अति दिव्य है। गोपी-भावकी कथा करनेमें भी साधारण जीव समर्थ नहीं है। गोपी-भाव सर्वोच्च भाव है। स्त्रीत्व तथा पुरुषत्वकी विस्मृति होनेके पश्चात् ही यह भाव जगता है। जिसकी बुद्धिमें स्त्रीत्व और पुरुषत्वका भाव है, वह इन्द्रियोंका दास है। वह व्यक्ति श्रीकृष्णकी सेवा निरन्तर नहीं कर सकता। श्रीकृष्णकी सेवा और उनका स्मरण करते-करते जीव जब स्त्रीत्व और पुरुषत्वको भूलता है तभी शुद्ध-गोपी भावका उदय होता है। शुद्ध गोपी-भावके जागनेके पश्चात् ही परमात्माकी वंशी कानोंको सुनाई देती है।

गोपियोंके कानोंमें भगवान्‌की वंशीके स्वर आते हैं। गोपियाँ तो प्रेममें पागल हो उठती हैं। उन्हें श्रृंगारका भी भान नहीं रहता। शुकदेवजी महाराजने बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। गोपियाँ प्रेममें दौड़ती-दौड़ती गयी हैं। शुकदेवजी महाराज उनके दर्शन करते-करते बोल उठे हैं—



लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्याः अञ्जन्त्यः काश्च लोचने ।
व्यत्यस्तवस्त्राभरणः काश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः ॥

(भावार्थ—कोई लीपती-लीपती, कोई मार्जन करती-करती, कोई आखोंमें काजल आँजती तो कोई अस्त-व्यस्त वस्त्रों तथा आभूषणोंको धारण करती हुई स्त्री भगवान् श्रीकृष्णके समीप आयी ।)

शुकदेवजी महाराज किसी का भी नाम नहीं लेते । वे तो 'काश्चित्' 'अन्याः', 'अपराः, कहते हैं । यहाँ लौकिक नाम और रूपकी पूर्ण विस्मृति है और तभी दिव्य गोपी-भाव जाग्रत हुआ है । गोपी प्रेममें पागल हुई हैं । रासलीला तो प्रेमलीला है ।

प्रेम और काम – दोनोंका रूप थोड़ा मिलता-जुलता है किन्तु दोनोंके तत्वमें बहुत अन्तर है । सुखको अपनी ओर खींचने की चेष्टा करता हो, वह काम कहलाता है तथा प्रियतम को सुख देनेमें जो लगा रहे उसे प्रेम कहते हैं । जिनके मनमें सुख भोगनेकी इच्छा रहती है, वे जीव, पुरुषोत्तम परमात्मा के पास जा ही नहीं पाते । वे तो किसी स्त्री या पुरुषके पास ही जाते हैं । जिन्हें किसी सुखके भोगने की थोड़ी भी इच्छा नहीं है, वे ही परमात्मा के पास जाते हैं । गोपियोंकी किसी सुखके भोगनेकी थोड़ी भी इच्छा नहीं है, तभी वे दौड़ती-दौड़ती प्रभुके पास जाती हैं ।

परमात्माने गोपियोंसे कहा – 'तुम घर जाओ ।' तब एक गोपीने कहा—'हम घर तो चली जायँगी किन्तु पीछे आप क्या करेंगे ? हमें यह चिन्ता है कि हमारे घर जानेके पश्चात् आपका क्या होगा ? आप तो बड़े लजीले हैं ।'

गोपियोंकी सुख भोगनेकी इच्छा नहीं थी किन्तु उनको श्रीकृष्णको सुखी करनेकी इच्छा थी । गोपी कहती हैं "श्रीकृष्ण की हमसे मिलनेकी इच्छा है ।' परमात्माकी ऐसी इच्छा होती है कि यह जीव मेरा ही अंश है, इसलिए यह मुझसे मिले तो ठीक है । इसी कारण गोपीने प्रभुको उत्तर दिया—'मैं तो घर चली जाऊँगी किन्तु आपका क्या होगा ? मैं तो घर नहीं जाऊँगी ।'



इसके पश्चात् श्रीकृष्णने गोपियोंको धर्मकी शिक्षा दी। वे कहने लगे—'स्त्री पतिकी सेवा करे, यह उसका धर्म है। तुम लोग भी घर जाकर पतिकी सेवा करो।' यह सुनकर एक गोपीने कहा—'धर्मका पालन करनेसे क्या होता है, यह हमें समझाइये।' भगवान ने कहा—'धर्मका पालन करनेसे पाप दूर होते हैं।' गोपी बोली—'पाप दूर होनेके पश्चात् क्या होता है ?' भगवान् बोले—'जिनके पाप नष्ट होते हैं, उनका मनशुद्ध होता है।' गोपी बोली—'मन शुद्ध होनेके पश्चात् क्या होता है ?' भगवान्ने उत्तर दिया—'जिनके मन शुद्ध होते हैं, उन्हें परमात्मा मिलते हैं।' यह सुनकर गोपीने फिर कहा—'किन्तु आप तो हमें मिले हुए हैं। आपको छोड़कर हम धर्मका पालन क्यों करें ? अब हमें धर्मका पालन करने की आवश्यकता ही नहीं है।

यदि कोई स्त्री हो तो पतिकी सेवा करना उसका धर्म हो जाता है किन्तु जो न तो स्त्री हैं और न पुरुष—अधिक क्या, स्त्री और पुरुषसे इतर भी जो कुछ नहीं हैं अर्थात् जो केवल शुद्ध जीव ही हैं, उन्हें छोड़कर परमात्मा कहाँ जायेंगे ? आत्मा, परमात्मासे मिले, यह धर्म ही है। आत्माका धर्म है कि परमात्माके चरणोंमें वह दौड़ती हुई जाये तथा परमात्माके साथ एक हो जाये।

भक्ति जब अधिक बढ़ती है, तब धर्म भी बाधक हो जाता है। जब तक भक्ति सामान्य है, तब तक धर्मका पालन करना आवश्यक है किन्तु भक्तिकी एक ऐसी विशेष स्थिति आती है, जब कि परमात्माका अनुभव भक्तको होने लगता है, परमात्माकी सेवा और उनके स्मरणमें देहका भान भूल जाता है। ऐसी स्थिति आनेके पश्चात् धर्मका पालन करनेकी अधिक आवश्यकता नहीं रहती।

इस प्रकार गोपियोंकी खूब परीक्षा करने के पश्चात् श्रीकृष्णको विश्वास हो गया कि गोपियाँ विशुद्ध भावसे प्रेरित होकर मुझसे मिलने आयीं हैं। इनके मनमें विकार नहीं हैं, वासना नहीं है तथा कामकी गन्ध तक नहीं है।

गोपियाँ पूर्ण निष्काम हैं, ऐसा प्रभुको विश्वास हुआ। इसलिये वे गोपियोंके साथ रास-क्रीडा करने लगे। अत्यन्त आनन्द छा गया। एक-एक गोपीको अपने साथ



लेकर उन्होंने उनका आलिंगन किया। गोपियोंके हाथोंमें उन्होंने अपने दोनों हाथ दे दिये।

परमात्मा रस-रूप हैं। रसो वै सः। रसमय परमात्मासे जब आलिंगन हो, उनके साथ जीव जब एक हो जाय, उसीको रास कहते हैं। रासमें संगीत, साहित्य तथा नृत्यका समन्वय हुआ है। समाजमें रासलीलाकी कथा कहते-कहते शुकदेवजी महाराजको भी संकोच हुआ। समाजमें सब लोग इसके अधिकारी नहीं हैं। उसी प्रकार सब लोग इसके अनधिकारी भी नहीं हैं। शुकदेवजी महाराजने श्रीराधाजीका खूब स्मरण किया। निवेदन किया कि आपकी आज्ञा हो तो यह कथा कहूँ। श्रीराधाजीने आज्ञा दी—'पुत्र ! कथा कहो, किन्तु विवेक से कहना।'

रासलीलाकी कथा सुननेसे पहिले तीन सिद्धान्त याद रखने चाहिये। एक तो यह कथा गंगा किनारे हुई है, तथा कथा कहनेवाले श्रीशुकदेवजी हैं, जिनको अपनी दृष्टि में यह जगत् ब्रह्मरूप भासता है। इस प्रकार जिनकी वासनाएँ समाप्त हो गई हैं, ऐसे महान् पुरुष यह कथा कह रहे हैं। रासलीलामें स्त्री-पुरुषके मिलनकी कथा नहीं है। जिस प्रकार तीन-चार वर्षका बालक शृङ्गारके वर्णनको नहीं समझ सकता, उसी प्रकार रासलीलामें कामसुखका वर्णन होता तो शुकदेवजी वह कथा करते ही नहीं। भागवत् तो परमहंसोंकी कथा है। शुकदेवजी महाराज परमहंसोंके आचार्य हैं। परहंस निवृत्ति-प्रधान होते हैं। निवृत्ति-धर्मका फल है जीव और ईश्वरका मिलन।

कथा सुननेवाले राजा परीक्षित हैं। एक-दो दिनमें मृत्यु उनको ग्रसित करनेवाली है। जिनका मरण समीप हो, उन्हें क्या कामकी कथा रुचेगी ? रासलीलामें जिसे कामकी गन्ध आती है, उसकी बुद्धि बिगड़ी हुई है। रासलीला तो आत्मा और परमात्मा-के मिलनकी कथा है।

मल-मूत्रसे भरे शरीरके साथ तो साधु-महात्मा भी नहीं रमते। फिर श्रीकृष्ण तो परमात्मा हैं। क्या वे ऐसे शरीर के साथ आनन्द प्राप्त करेंगे ? श्रीकृष्णका स्वरूप



आनन्दमय है। जैसे गंगाजी को सर्दी नहीं लगती, अग्निदेवको गर्मी नहीं लगती, सूर्यनारायणके सामने अँधेरा आता नहीं, वैसे ही ठाकुरजीको इच्छा सुखकी नहीं होती। ठाकुरजीके श्रीअंग स्वयमेव आनन्दसे परिपूर्ण हैं।

हमारे हाथ-पैर जैसे हैं, वैसे ही हमें भगवान् के हाथ और चरण दिखाई देते हैं, किन्तु हमारे शरीरमें तो मांस-मज्जा और रुधिर है, जबकि ठाकुरजीका स्वरूप आनन्दमय है। जीवको जो शरीर मिला है, वह पिछले जन्मकी वासनाके आधारपर मिला है, जब कि परमात्मा, अपनी इच्छासे शरीर धारण करते हैं। 'निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुन गो पार।'

अलौकिक सिद्धान्तोंको समझनेके लिये अलौकिक भाषा तो मिलती नहीं। लौकिक दृष्टान्तोंके द्वारा ही अलौकिक सिद्धान्त समझाये जाते हैं। एक बारकी बात है। रातके बारह बजे एक भाई बिस्तरपर करवटें बदल रहे थे। चाय नहीं मिली, इसलिए नींद नहीं आ रही थी। चाय बनानेके लिये उठे, किन्तु डिब्बेमें खाँड खत्म हो गई थी। आधी रातके समय बेचारे खाँड लेने कहाँ जायँ ? विचार करते हुए याद आई कि पिछले दिन बच्चोंके लिये खाँडके खिलौने लाये थे। खाँडके खिलौनोंका डिब्बा उन्होंने खोज निकाला। बहुत खुश हुए। डिब्बा खोला। अंदर खाँडका हाथी था। हाथीकी दो टाँगें तोड़कर उन्होंने चायमें डाल दीं। अब विचारनेकी बात है कि उन्होंने हाथीकी दो टाँगें चायमें डालीं या खाँड डाली ? अगर वास्तविक हाथी या घोड़ा होता तो क्या उस डिब्बेमें रह सकता था ? वह न तो वास्तविक हाथी है और न घोड़ा। वह तो खाँड ही है। खांडको हाथीका आकार भर दिया गया है लेकिन खाँडका हाथी, हाथी नहीं है, खाँड है, खाँडसे बना है।

इसी प्रकार श्रीकृष्णका स्वरूप आनन्दमय है। श्रीव्यास महर्षिका ब्रह्मसूत्र है— 'आनन्दमयोऽभ्यासात्।' ईश्वरमें आनन्द है—यदि ऐसा कहें तो अर्थ होगा कि इस सिद्धान्तके आधारपर ईश्वर और आनन्द अलग-अलग हैं किन्तु महर्षि व्यासजीका सिद्धांत है कि जो आनन्द है, वह ही ईश्वर है।



निराकार वस्तुका बुद्धिसे अनुभव होता है किन्तु निराकारके प्रेम साथ तो होता नहीं। वह निराकार आनन्द ही नराकार श्रीकृष्णके रूपमें प्रकट हुआ है। गोपियोंको परमानन्दका दान करनेके लिये ही श्रीकृष्ण यह लीला करते हैं। ऋषिरूपा गोपियाँ जब पांच-छह वर्षकी थीं, तभीसे व्रत करती थीं। पार्वतीजी को पूजा करतीथीं। श्रीकृष्ण पतिके रूपमें मिलें, ऐसी इच्छा करती थीं। भागवतमें इन गोपियोंके लिये 'कुमारिका' शब्दका प्रयोग हुआ है। पाँच वर्षकी कन्याको ही कुमारिका कहते हैं। ये गोपियाँ यमुनाजीके किनारे अपने वस्त्रोंको रखती हैं और यमुनाजीमें स्नान करती हैं। तभी श्रीकृष्ण वहाँ पधारते हैं। वस्त्रोंको वे कदम्बके वृक्षके ऊपर रख देते हैं। और कहते हैं -'वस्त्रोंको जलसे बाहर आकर ले जाओ।'

शरीरको वस्त्र ढँकते हैं और आत्माको वासना ढँकती है। सामान्य बादल जैसे सूर्यनारायणको ढँक लेते हैं, वैसे ही वासना, परमात्माको ढँक लेती है। ईश्वर सर्वत्र हैं किन्तु उनका दर्शन होता नहीं। इसलिये प्रभुने गोपियोंकी वासनाके पर्देको हटाया है। परमात्मा, सर्वव्यापक हैं। हर समय और हर स्थानपर वे बिराजे हुए हैं। जबतक वासनाका पर्दा रहता है, तबतक उनका अनुभव हो नहीं पाता। भगवान् मिलते हैं तो क्या वे कहीं बाहरसे आते हैं? वासनाका—अज्ञानका पर्दा जब हटता है तब मिलनेवाला परमात्मासे मिलता है।

श्रीकृष्ण गोपियोंकी नंगी काया देखने तो आये नहीं। श्रीयमुनाजीके जलमें श्रीकृष्ण, रस-रूपमें रहते हैं। गोपियोंसे मिलते हैं किन्तु वासनाका पर्दा होनेके कारण, मिलनका अनुभव गोपियोंको नहीं हो पाता। वासनाके पर्देको सद्‌गुरु हटा देते हैं। श्रीकृष्ण उनके सद्‌गुरु हैं। गोपियाँ पूर्वजन्ममें ऋषि थीं। ध्यान और तपके द्वारा उन्होंने काम-वासनाका विनाश कर दिया था किन्तु फिर भी उनकी बुद्धिमें सूक्ष्म काम तो था हीं। उसको श्रीकृष्णने दूर किया क्योंकि श्रीकृष्ण ही सूक्ष्म कामको दूर करते हैं।

बुद्धिमें बसनेवाले सूक्ष्म कामका विनाश परमात्मा करते हैं। वस्त्रोंके द्वारा वे



परमात्मा गोपियोंकी वासनाके पर्देको हटाते हैं और कहते हैं—'मेरा खूब ध्यान करो। यह तुम्हारा अन्तिम जन्म है। शरद् पूर्णिमाकी रातको तुमसे मिलेंगे।'

जिनका जन्म अन्तिम है, उनको ही रासलीलामें प्रवेश मिलता है। रासमें एक-एक गोपीको प्रभुने परमानन्दका दान दिया है। गोपियाँ कृतार्थ हुई हैं। श्रीकृष्ण तो सभीसे निःस्वार्थ भावसे प्रेम करते हैं। जगत्‌में बहुतसे लोग अभिमानके आवेशमें कहते हैं—'मैं तो श्रीकृष्णको नहीं मानता।' ऐसे नास्तिकोंसे भी श्रीकृष्ण प्रेम करते हैं। कोई जीव अज्ञानसे ऐसा कहे कि मैं ईश्वरको नहीं मानता तो भी श्रीकृष्ण ऐसा मानते हैं कि यह जीव तो मेरा ही अंश है। श्रीकृष्ण तो बिना किसी आशा व अपेक्षाके सभीसे प्रेम करते हैं।

श्रीकृष्ण-लीलाका आरम्भ हुआ है पूतनाके प्रसंगसे तथा श्रीकृष्ण-चरित्रकी समाप्ति हुई है जरा नामक शिकारीके द्वारा बाण मारे जानेके प्रसंग से। आरम्भसे लेकर समाप्ति तक प्रभुने प्रेम ही किया है। श्रीकृष्ण जैसा प्रेम करते हैं, वैसा प्रेम करनेमें समर्थ इस जगत्‌में कोई भी दूसरा देव नहीं है। ऐसा प्रेम करनेवाला कोई हुआ ही नहीं। यह जीव लायक नहीं है, तब भी श्रीकृष्ण इससे प्रेम करते हैं। इस जीवको धन देते हैं, मान देते हैं, सुख देते हैं।

पूतनाने प्रभुको जहर दिया। फिर भी जहर देनेवाली पूतनाको श्रीकृष्णने मुक्ति दी। जहर देनेवालेसे भी श्रीकृष्ण प्रेम करते हैं। सभामें गाली देनेवाले शिशुपालसे भी श्रीकृष्णने वैर नहीं किया वरन् प्रेम ही किया। आपको कोई गाली दे तो क्या आप उससे प्रेम करेंगे?

अधिक तो क्या कहूँ? छातीपर लात मारनेवाले भृगु ऋषिके चरणकी भी परमात्माने सेवा की। एक बार भृगु ऋषिने तय किया कि सब देवोंकी मैं परीक्षा लूँगा। भगवान् नारायण शेष-शय्यापर शयन कर रहे थे। उसी समय भृगु ऋषि पधारे। उनको यह देखकर आश्चर्य हुआ कि नारायण तो सारे दिन सोये ही रहते हैं। लक्ष्मीजी इनके



चरणोंकी सेवा करती रहती हैं। ऋषिने और कुछ विचार नहीं किया तथा परमात्माकी छातीपर लात मारी। भृगु ऋषिने यह बहुत अघटित काम कर दिया। यह कौन-सी परीक्षाकी रीति है?

प्रभु जागे और ऋषिके चरणोंकी सेवा करने लगे। भृगुलताका चिह्न उन्होंने अपने वक्षःस्थलपर धारण किया। निश्चित रूपसे भृगु ऋषिको दण्ड देना ही उचित था किन्तु प्रभुने दण्ड दिया ही नहीं। लक्ष्मीजीने भगवान्‌से कहा—'इस ब्राह्मणको विवेक नहीं है। आप इसे दण्ड दीजिये।' तब भगवान्‌ने उत्तर दिया—'न, न, मुझे इस ब्राह्मणको दण्ड देना ही नहीं है।' लक्ष्मीजीको यह ठीक नहीं लगा। उन्होंने तय किया -मेरे स्वामीकी छातीपर इस ब्राह्मणने लात मारी है। अतः आजसे मुझे किसी ब्राह्मणके घर जाना ही नहीं है। कुछ भी हो, लक्ष्मीजी ब्राह्मणोंकी भले ही उपेक्षा करें, नारायणको तो ब्राह्मण प्रिय ही लगते हैं।

जरा नामक शिकारीने प्रभुके चरणमें बाण मारा। वास्तवमें श्रीकृष्णको कोई भी बाण मार ही नहीं सकता। प्रभुने तो यह लीला की है। श्रीकृष्ण तो आज तक प्रत्यक्ष विराजमान हैं। जहाँ परमात्मा श्रीकृष्णकी प्रेमसे सेवा होती है, स्मरण होता है, वहाँ वे आज भी दर्शन देते हैं।

'जरा' शब्द का अर्थ है वृद्धावस्था। वृद्धावस्था सभी को बाण मारती है किन्तु जरा नामक इस शिकारीका बाण उसीको लगता है, जो भोगी है जबकि श्रीकृष्ण तो महायोगी हैं। योगी को तो जरा नामक शिकारी बाण मार ही नहीं सकता और यदि कभी वह बाण मारे भी तो वह योगीको लगता नहीं। श्रीकृष्ण योगी ही नहीं, योगेश्वर हैं। यत्र योगेश्वरो कृष्णः। शुकदेवजी जैसे महायोगी तक इनके चरणारविन्दोंकी सेवा करते हैं, इनका ध्यान करते हैं, श्रीकृष्ण महायोगेश्वर हैं।

भोग और योग, एक ही स्थानपर टिक ही नहीं सकते। दोनों परस्पर विरोधी हैं। भोगी, योगी नहीं हो सकता तथा योगी, भोगी नहीं बन सकता किन्तु श्रीकृष्णके



जीवनमें दोनों दिखाई देते हैं। श्रीमहाप्रभु वल्लभाचार्यजीका सिद्धान्त है कि परमात्मा विरुद्धधर्माश्रयी हैं। श्रीकृष्ण महायोगी हैं और महाभोगी भी हैं।

द्वारिकामें श्रीद्वारिकानाथ नित्यप्रति यानी बारहो महीने छप्पन भोग आरोगते हैं। आप बेट द्वारिका गये होंगे। वहाँ अनेक रानियोंके द्वारा सेवा होती है। एक दिनमें वहाँ अनेक बार भोग लगता है। वहाँ जाम्बवतीजी भोग-सामग्री लाती हैं, रुक्मिणीजी लाती हैं, श्रीराधाजी लाती हैं, सत्यभामाजी लाती हैं, वैष्णवजन लाते हैं—सारांश यह कि जो कुछ भी प्रभुके सामने आता है, वह सब वे आरोगते हैं।

भगवान् बहुत-सी लीला रचते हैं किन्तु ऐसी लीला वे नहीं करते कि बहुत भोग लगानेसे मुझे अजीर्ण हो गया है।' भगवानको किसी भी दिन अजीर्ण होता ही नहीं। भगवान बहुत-सी लीलाएँ करते हैं किन्तु किसी दिन उनको ज्वर आता ही नहीं। श्रीकृष्ण महायोगी हैं। महायोगी श्रीकृष्णको जरा नामक शिकारी बाण नहीं मार सकता, किन्तु प्रभुने यह लीला की है। जरा नामक शिकारीने उन्हें बाण मारा है। वह शिकारी यह सोचकर घबराया है कि प्रभुको मैंने बाण मारा। प्रभुने उसकी घबराहट देखकर कहा—'तू क्यों घबराता है? यह तो मेरी इच्छा थी। मेरी इच्छासे यह सब हुआ है। मैं तुझे मुक्ति देता हूँ।'

शिकारी थोड़ी मोटी बुद्धिका था। उसने भगवान्से कहा—'महाराज! आप मुझे मुक्ति दे रहे हैं तो फिर मेरे बच्चोंका क्या होगा? मैं तो बहुत गरीब हूँ। आप मुझे तो मुक्ति दे रहे हैं लेकिन मेरे बच्चे क्या खायेंगे।' तब प्रभुने कहा—'तेरे बच्चे मेरी सेवा करेंगे।'

आप जगन्नाथजी गये होंगे। जगन्नाथजीमें भील लोगोंके द्वारा भी सेवा होती है। ये लोग कहते हैं कि हम जरा नामक व्याधके वंशज हैं। शिकारी जराके वंशके बालकोंका पोषण करनेके लिए इन्हें सेवा सौंपी है।

बाण मारनेवाले से, छातीमें लात मारनेवालेसे, जहर देनेवालेसे और गाली देनेवाले-से भी श्रीकृष्ण प्रेम करते हैं। परमात्माको कोई पैसेसे वशमें कर नहीं सकता। परमात्माको



वैष्णव प्रेमसे वशमें करते हैं। पैसेसे परमात्मा मिलते होते तो ये सारे धनी लोग तो ठाकुरजीको भी खरीद लेते। ये लोग तो लाख-दो लाख रुपये भगवान्‌को भेटमें देकर उन्हें अपने घरमें बिठा लेते किन्तु भगवान् क्या पैसेके लिये इनके घरमें कभी विराजेंगे ? भगवान् कहते हैं--'मैं तो लक्ष्मीका पति हूँ। मैंने तुझे बहुत-कुछ दिया है। तू मुझे कुछ अर्पण करता है तो फिर अकड़ क्या दिखता है।'

परमात्मा पैसा नहीं माँगते। कोई भी उन्हें ज्ञान तथा बुद्धिसे प्रसन्न करने में समर्थ नहीं है। ईश्वर सर्वज्ञ है। उनको प्रसन्न करनेके लिये बहुत पैसेकी या बहुत दिखावे की भी जरूरत नहीं हैं। परमात्मा तो प्रेमसे वशमें होते हैं। प्रभुसे तो बस प्रेम करो। वैष्णव प्रेमसे परमात्मा को रिझाते हैं। प्रेमसे तृप्ति होती नहीं। भोगसे तृप्ति होती है।

गोपियाँ तो प्रेमकी मूर्त्ति हैं। प्रेमरूपी गोपिकाएँ परमात्माको प्रेम देती हैं तथा परमात्मा इनको परमानन्दका दान देते हैं। श्रीकृष्णके साथ क्रीड़ा करते-करते गोपियोंमें थोड़ा अभिमान आ गया। उनमें ऐसा भाव जागा कि हम-जैसा जगत्‌में दूसरा कौन है। गोपियाँ अपने-आपको निहारने लगीं। उनकी दृष्टि जगत् पर गई ही नहीं। जगत् तो गोपियोंको तुच्छ प्रतीत होता है। गोपियोंकी दृष्टि संसारके किसी विषय पर भी नहीं गई। फिर भी श्रीकृष्णसे दृष्टि हटाकर गोपियाँ अपने-आपको देखने लगीं। वे विचारने लगीं—हमारा जैसा जगत्‌में कोई नहीं है। हम बहुत श्रेष्ठ हैं। पहले तो ये झुकते ही न थे किन्तु अब तो प्रेमसे क्रीडा करते हैं। हम बहुत सुन्दर हैं। हम बहुत योग्य हैं।

गोपियोंमें अभिमान भी प्रभुने ही उत्पन्न किया है। भागवतके बहुत-से श्लोकोंपर मनन करनेसे ऐसा लगता है कि गोपियोंमें अभिमान आ ही नहीं सकता। गोपियाँ तो शुद्ध हैं, निष्काम हैं तो फिर उनमें अभिमान आवेगा कहाँ से ? वास्तवमें यह अभिमान तो ईश्वरेच्छासे ही प्रकट हुआ है। ठाकुरजीकी लीला करनेकी इच्छा हुई। इसीलिये परमात्माकी स्वजनमोहिका मायाने गोपियोंके मनमें अभिमानका उदय कर दिया।



पूज्य डोंगरेजी महाराजका

महाभारतकी कथामें ऐसा प्रसङ्ग आता है कि भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनके रथमें विराजे हैं। वे सारथी बने हैं और घोड़ोंकी लगाम उन्होंने अपने हाथमें पकड़ी है। उसी समय अर्जुनको विषाद होता है। उस स्थलपर गीताजीकी टीकमें आचार्योंने लिखा है कि अर्जुनके मनमें विषाद उत्पन्न करनेवाले भी श्रीकृष्ण ही हैं। भगवान् श्रीकृष्णके मनमें आया कि जगत्को मुझे बोध देना है। यही विचारकर उन्होंने अर्जुनको निमित्त बनाकर गीताशास्त्रका उपदेश दिया।

भगवान्की माया तीन प्रकारकी है। स्वमोहिका, स्वजनमोहिका तथा विमुख-जनमोहिका।

स्वमोहिका माया—स्वयं श्रीकृष्णको भी मोहित करनेवाली माया है स्वमोहिका। रासमें क्रीडा करते-करते भगवान् अन्तर्द्धान हो गये और गोपियाँ उन्हें खोजने लगीं। तभी मार्गमें श्रीकृष्ण चतुर्भज रूपमें प्रकट हुए। गोपियाँ खोजती-खोजती वहाँ पहुँचीं तो उन्हें चतुर्भुज नारायणके दर्शन हुए। चतुर्भुज-रूपके दर्शनकर उन्हें कुछ सन्तोष तो हुआ किन्तु गोपियोंकी प्रीति तो द्विभुज श्रीकृष्णसे थी। गोपियोंने श्रीराधिकाको यह सब बतलाया तो श्रीराधाने कहा—'चार हाथोंवाले देव तो वैकुण्ठमें विराजते हैं। यहाँ व्रजमें इनका क्या काम? इसके पश्चात् श्रीराधा गोपियोंके साथ वहाँ आयी उनके दर्शनकर श्रीकृष्ण द्विभुज हो गये। ये श्रीराधा ही भगवान्की स्वमोहिका माया हैं।

स्वजन मोहिका माया—श्री यशोदा माँ को यदि यह बोध रहे कि कन्हैया ईश्वर है तो वे अपने लालाको लाड़-प्यार नहीं दे सकतीं। वे तो ऐसा ही मानती हैं कि कन्हैया मेरा लाड़ला बेटा है। यशोदाजीके मनमें वात्सल्य भाव है। उनके मनमें यदि ऐश्वर्य भाव जागे तो वे प्रेम ही नहीं कर सकेंगी। ऐश्वर्य तथा वात्सल्य—इन दोनों भावोंमें परस्पर विरोध है। इस प्रकार स्वजनमोहिका मायाने यशोदाजीके मनमें यह भाव दृढ़ किया कि कन्हैया मेरा बालक है। भगवान्को जब लीला करनी होती है तो वे अपने जीवोंमें स्वजनमोहिका मायाके द्वारा मोह उत्पन्न कर देते हैं।



सामान्य जीवोंको भूलमें डालनेवाली माया ही विमुखजनमोहिका माया है।

गोपियोंमें आज अभिमान उत्पन्न हुआ है। गोपियोंकी दृष्टि जगत्पर तो गयी नहीं किन्तु श्रीकृष्णसे हट गयी है और वे अपनेको देखने लगी हैं। गोपी इस तरह जब अपनेको ही देखने लगीं तो प्रभुको अच्छा नहीं लगा।

माँ यशोदा बालकृष्णको गोदमें लेकर अपने हृदय-रसका (दूधका) पान करा रही हैं। उसी समय चूल्हेपर रखा दूध उफनने लगा। तब माँ लालाको धरतीपर बिठाकर चूल्हेसे दूध उतारने चली गयीं। यशोदाजीकी दृष्टि श्रीकृष्णसे हटकर दूधपर गयी, यह कोई बहुत अच्छी बात तो नहीं किन्तु क्षम्य अवश्य है। नन्दबाबाके घरमें अनेक गायें हैं किन्तु लालाको तो गंगी गायका दूध ही अच्छा लगता है। चुल्हेके ऊपर गंगी गायका दूध ही रखा था। इसीलिए माँने विचार किया--'लालाको तो मैं बादमें सँभाल लूँगी क्योंकि यह दूध उफनकर यदि अग्निमें गिर गया तो पीछे मैं लालाको क्या दूंगी?' यह दूध लालाके लिये ही है, ऐसा विचारकर, सचमुच ऐसा मानकर ही माँ यशोदाने लालाको धरतीपर विराजमान कर दिया और वे दूध चूल्हेसे उतारने चली गयीं। यशोदाजीके वात्सल्य भावमें दृष्टि यदि श्रीकृष्णसे हट गयी और दूधपर चली गई तो यह कोई बहुत खराब बात नहीं हुई।

ग्वाल-बालोंके साथ श्रीकृष्ण भोजन कर रहे हैं। जब बालकोंकी दृष्टि श्रीकृष्णसे हट जाती है और वे बछड़ोंको देखने लगते हैं, तभी ब्रह्माजी आते हैं। बालकोंका श्रीकृष्ण-के प्रति सख्य भाव है। सख्य भावमें भी श्रीकृष्णसे दृष्टि हट जाय तो कोई दोष नहीं। ये तो सखा ही ठहरे।

किन्तु इन गोपियोंका तो श्रीकृष्णके प्रति मधुर प्रेमभाव है। प्रेमभावमें प्रियतमसे दृष्टि हट जाय और किसी दूसरे विषयपर जाय, यह अपराध है। प्रियतमके रहते, और किसी वस्तुको देखकर आँख सुख मानने लगे तो यह भक्तिका व्यभिचार ही माना जाना चाहिये।



पूज्य डोंगरेजी महाराजका

आप घरसे यहाँ कथा सुनने आते हैं तो रास्तेमें आपको कूड़ा-कचरा भी दिखाई दिया होगा। कचरा मनुष्यको दिखाई तो देता है, किन्तु उसकी दृष्टि कचरेपर टिकती नहीं। श्रीकृष्णके बिना सम्पूर्ण जगत् कचरे जैसा ही है। जगत् दिखाई दे, यह इतनी बुरी बात नहीं किन्तु मनमें चाह रखकर यदि जगत्को देखने लगोगे तो आँख और मन बिगड़ जायेंगे। भक्तिमें बहुत बड़ा विघ्न आ जायेगा।

गोपियोंकी दृष्टि जगत्पर तो नहीं गयी किन्तु अपने आपपर चली गयी।

ज्ञानमार्गमें तो ज्ञानी पुरुष द्रष्टाका ही ध्यान करते हैं। ज्ञानमार्गका सिद्धान्त है—तदा द्रष्टुः स्वरूपे अवस्थानम्। दृश्यसे दृष्टि हटाओ और द्रष्टापर दृष्टि स्थिर करो। एक ज्ञानी सन्तसे किसीने पूछा—'ध्यान किसका करें?' तब उन्होंने कहा—'जो दिखाई देता है, उसका ध्यान मत करो। ध्यान करनेवालेका ही ध्यान करो। ध्यान करनेवालेमें आँखों और मनको टिका दो।'

ज्ञानमार्गमें आत्म-स्वरूपमें ही दृष्टि रखनी उचित है किन्तु भक्ति-मार्गमें यह बाधक है। श्रीकृष्ण-प्रेम ज्ञानसे श्रेष्ठ है। ज्ञानोत्तर भक्तिसे ही महापुरुष आनन्दमें तन्मय होते हैं। ज्ञान तो फल है और भक्ति उसकी मिठास है। भक्ति के बिना ज्ञान यदि हो तो वह कच्चे आम जैसा ही है। ज्ञानके पके आममें जो मिठास है, वह प्रेमकी है या कहें कि वह तो भक्तिका स्वरूप ही है।

गोपियोंकी भक्ति, ज्ञानोत्तर भक्ति थी। इसी कारण उनकी दृष्टि जगत्पर तो नहीं गई किन्तु अपने आपको ही वह देखने लगीं। एक महापुरुषने ऐसा भी वर्णन किया है कि गोपियोंमें ऐसा भी अभिमान आया कि श्रीराधा और हम एक जैसे ही हैं। हममें और श्रीराधामें कोई अन्तर नहीं।

रासमें जो आनन्द श्रीकृष्णने श्रीराधाको दिया, वही आनन्द उन्होंने सब गोपियों-को भी दिया। प्रभुने गोपियोंके साथ भी क्रीडा की। 'रासेश्वरी श्रीराधा और हम सब एक-जैसे ही हैं' गोपियोंमें ऐसा सूक्ष्म अभिमान जागा, जो प्रभुको रुचा नहीं।



परमात्मा श्रीकृष्णका ऐसा स्वभाव है कि उनकी शरण में आनेवाला वैष्णव यदि उनकी सन्निधिमें भी जगत्‌के साथ बहुत अधिक प्रेम करे तो उन्हें (श्रीकृष्णको) यह बात रुचती नहीं है। परमात्मा, वैष्णवकी परीक्षा लेते हैं और उससे एक ही प्रश्न पूछते हैं— 'तुम्हारा प्रेम मुझमें अधिक है या मेरे द्वारा रचे गये संसारमें अधिक है।'

गोपियाँ श्रीकृष्णकी ओर उन्मुख होती हुई भी जब अपनेको ही देखने लगीं तब परमात्माको निश्चय हुआ कि मेरी इन्हें बहुत जरूरत नहीं है—

तासां तत् सौभगमदं वीक्ष्यमानं च केशवः ।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥

श्रीराधाको प्रसन्न करनेके लिये तथा गोपियोंका अभिमान दूर करनेके लिये भगवान् अन्तर्द्धान हो गये अन्तर्हित हो गये।

'अन्तर्हित' शब्दका दूसरा अर्थ भी है। एक अर्थ तो यह है कि 'स्वरूपको छिपाकर रखते हैं' तथा दूसरा अर्थ है, 'अन्दरसे कल्याण यानी जो जीवका आन्तरिक हित करते हैं।' श्रीकृष्ण, गोपियों का हित करनेके लिये, गोपियोंको विशेष आनन्दका दान देनेके लिये अन्तर्द्धान हुए हैं। वियोगके विना संयोग के रसका पूरा अनुभव होता नहीं। अत्यधिक मीठा खानेके पश्चात् खट्टा रस परोसा जाता है। बीचमें किसी अन्य रसके रहनेसे बादमें मिठासकी अच्छी रसानुभूति होती है।

प्रभुने विचार किया कि वियोगका थोड़ा दुःख भी होगा तो पीछे संयोगमें अतिशय आनन्द तो प्रकट होगा। वैसे परमानन्द, श्रीकृष्णका ऐसा स्वरूप है कि न तो वह किसी दिन बढ़ता है और न घटता ही है। जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और संहार—इन तीनों अवस्थाओंमें श्रीकृष्णका आनन्द-स्वरूप एक जैसा ही रहता है। इसमें थोड़ी भी फेर-बदल नहीं होती। सोलह हजार रानियाँ जब श्रीकृष्णकी सेवा करती हैं, तब जो आनन्द उन्हें मिलता है, वही आनन्द उन्हें तब प्राप्त होता है, जब सोनेकी द्वारका समुद्रमें डूब जाती है और यादवोंका विनाश तक हो जाता है।



एक भक्तने भगवान्से कहा—'महाराज ! मैं नित्यप्रति आपकी सेवा करता हूँ। आपके दर्शनसे मुझे आनन्द तो आता है किन्तु आपका स्वरूप तो किसी भी दिन बदलता ही नहीं। आप अनेक नये-नये स्वरूप धारण करें तो आनन्दमें वृद्धि हो जाय।'

तब प्रभु बोले—'जाओ, अब तुम्हें मेरा वियोग सहना पड़ेगा।' ऐसा कहकर प्रभु तो अन्तर्द्धान हो गये और भक्तका भगवान्से वियोग हो गया। भक्त प्रभुके वियोगमें व्याकुल हो गया और प्रेमपूर्वक ठाकुरजीका कीर्त्तन करने लगा। जब यह बहुत भटकने लगा तब ठाकुरजीने बड़ी प्रीतिसे उसे दर्शन दिये। उस समय भक्तको बहुत आनन्दकी अनुभूति हुई। इसके बाद भक्तने भगवान्से कहा—'आज आपके दर्शनसे जैसा आनन्द मिला, वैसा तो किसी भी दिन मिला ही नहीं।'

वह आनन्द वियोग-से प्रकट हुआ था। अरे ! भगवान्का आनन्द कभी बढ़ता है अथवा क्या भगवान्का आनन्द कभी घटता भी है ? वास्तवमें ईश्वरकी वृद्धि भी नहीं होती और न उनका क्षय ही होता है। ईश्वरका आनन्द-स्वरूप तो एक-जैसा होता है किन्तु बीचमें थोड़ा वियोग हो तो पीछे संयोगमें विशेष आनन्दका अनुभव होता है। न विना विप्रलम्भेन संयोगः पुष्टिमश्नुते। वियोगके पश्चात् संयोगमें दिव्य रसका अनुभव होता है। श्रीकृष्णको गोपियोंका अन्दरसे हित करना है। गोपियों को विशेष आनन्दका दान उन्हें देना हैं। तभी तो परमात्मा श्रीकृष्ण वियोगकी लीला करते हैं। परमात्मा आनन्दमय हैं और उस आनन्दका अनुभव गोपियोंने किया है। इन गोपियोंको वियोगका थोड़ा अनुभव हो और बादमें संयोगका पूरा आनन्द मिल सके, इसी कारण प्रभु अन्तर्द्धान हुए।

श्रीकृष्ण परमात्मा हैं। वे सबसे प्रेम करते हैं किन्तु श्रीकृष्णमें वैराग्य भी परिपूर्ण है। उनको किसीकी आवश्यकता नहीं। लालाको यदि कोई प्रेमसे माखन-मिश्री दे तो यह कन्हैया नाचने ही लगता है। यह तो बिना बुलाये ही गोपियों के घर जाता है। श्रीकृष्ण प्रेम तो सबसे करते हैं किन्तु किसी भी जगह इनकी थोड़ी-सी भी आसक्ति नहीं। आप भी यदि प्रेम करें किन्तु 'कोई मुझे सुख देगा,' ऐसा भाव रखेंगे तो दुखी होंगे। परमात्मा ने विचार किया



कि गोपियोंको अब मेरी क्या आवश्यकता है ? ये तो अपने आपको देखने लगी हैं, मुझे नहीं देखतीं । ऐसा सोचकर प्रभु अन्तर्द्धान हो गये ।

सखियोंके साथ क्रीडा कर रहे थे श्रीकृष्ण और क्रीडा करते-करते ही वे अन्तर्द्धान हो गये । जब वे गोपियोंको दिखाई न दिये तो वे व्याकुल हो गईं । श्रीकृष्णके वियोगमें उनकी आँखें गीली हो गईं । परमात्माका वियोग गोपियोंसे सहन नहीं हुआ । जब किसीमें सच्चे प्रेमका भाव होता है तो उसे अपने प्रियका वियोग कभी सहन होता ही नहीं ।

आपको जबतक ठाकुरजीका वियोग सहन होता है, श्रीकृष्णके वियोगमें आपका मन संसारमें लगता है, तबतक मानना कि मैं वैष्णव नहीं हूँ, लोग भले ही कहें कि आप वैष्णव हैं । वैष्णव तो वह है जो प्रभुका वियोग सहन न कर सके और उनके वियोगमें भटकने लगे । परमात्माके वियोगमें जिसका मन संसारमें लगता है, वह भक्ति क्या कर पायेगा ? प्रभुके वियोगमें जिसे बहुत दुःख होता है, वही सच्ची भक्ति करता है । 'मैं अपने भगवानसे अलग पड़ा हूँ, अनादिकालसे संसारमें भटक रहा हूँ । अभी तक मुझे श्रीकृष्णका दर्शन मिला नहीं । मुझे श्रीकृष्णसे मिलना है । मुझे प्रभुका आलिंगन करना है'—ऐसा भाव जागे और संसारके सभी सुख तुच्छ प्रतीत होने लगें, तभी भक्तिका आरम्भ होता है ।

भक्ति करना कोई आसान बात नहीं है । लोग ऐसा समझते हैं कि ठाकुरजीका भोग लगाना, आरती उतारना तथा उनका प्रसाद पाना यह सब तो बहुत भक्ति हो गई लेकिन यह पूर्ण भक्ति नहीं है । यह तो भक्तिकी एक प्रक्रिया मात्र है । परमात्माके वियोगमें जिसके प्राण व्याकुल नहीं होते, प्रभुके दर्शन और मिलनकी आतुरताका अनुभव जिसे नहीं होता, वह तो संसारकी भक्ति करता है । परमात्माकी भक्ति तो वह करता ही नहीं । भक्तिका आरम्भ तो तभी मानना चाहिये जब परमात्माके वियोगमें दुःखका अनुभव हो—

अमून्यधन्यानि दिनान्तराणि हरेस्त्वदालोकनमन्तरेण ।
अनाथबन्धो करुणैकसिन्धो हा हन्त हा हन्त कथं नयामि ॥



युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम्।
शून्यायितं जगत्सर्वं श्रीकृष्णविरहेण मे ॥

जीवको जब अनुभव होने लगता है कि मैं अपने भगवानसे अलग जा पड़ा हूँ, मैं अपने प्रभुका अंश हूँ, अब तो मैं अपने भगवानको भूल ही गया हूँ, मुझे परमात्मा कब दर्शन देंगे ? मेरी इतनी उम्र हो गई, मेरा जीवन भी अब पूरा होनेको आया किन्तु प्रभुने मुझे अभी तक दर्शन दिया नहीं। ऐसी व्याकुलताका उदय जब उसमें होने लगता है, तब उसे भक्तिका आनन्द मिलता है।

गोपियाँ श्रीकृष्णके वियोगमें व्याकुल हो गईं और वे प्रभुको खोजने लगीं। यह जीव तो अनादिकालसे भटकता चला आ रहा है। मानव अपनी माँके पेटसे जब जन्म लेता है तो भटकता-भटकता ही जन्म लेता है। जन्म लेनेके क्षणसे मरने तक वह भाग-दौड़ करता रहता है। 'हाय-हाय' करते-करते ही वह मर जाता है। कोई पैसे के लिये भटकता है, कोई स्त्रीके लिए भटकता है, कोई मान-प्रतिष्ठाके लिये भटकता है, किन्तु यह जीव परमात्माके लिये तो भटकता ही नहीं। जो ईश्वरके लिए नहीं भटकता, उसके भटकनेका किसी दिन अन्त आयेगा ही नहीं। यह जीव जब प्रभुके लिये भटकता है, तभी इसके भटकने का अन्त आता है।

गोपियोंको श्रीकृष्णके अतिरिक्त और कुछ दिखाई देता ही नहीं। उनके हृदयमें श्रीकृष्ण-दर्शनकी तीव्र आतुरता है। उनकी यह आतुरता इतनी बड़ी है कि वे वृक्षोंसे पूछती हैं, लताओंसे भी पूछती हैं कि श्रीकृष्ण कहाँ हैं—

पप्रच्छुराकाशवदन्तरं बहिर्भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन्।

एक-एक वृक्ष तथा लतासे गोपियाँ पूछती हैं। जो अन्दर और बाहर—सब कहीं विराज रहे हैं, उन परमात्माका पता गोपियाँ पूछ रही हैं। वृक्षोंसे, लताओंसे, तुलसीजीसे पूछती हैं– हमारे श्यामसुन्दर कहाँ हैं ?



आतुरता जब अधिक बढ़ गयी तो यह भान भी न रहा कि इन वृक्षोंको क्या बोलना आता है ? श्रीकृष्णके वियोगमें गोपियाँ श्रीकृष्णका ही स्मरण करतीं-करतीं तन्मय हो गयीं हैं । गोपियोंका मन श्रीकृष्णका ही हो गया है—

तन्मनस्कान्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः ।
तद्गुणानेव गायन्त्यो नात्मागाराणि सस्मरुः ॥

गोपियाँ श्रीकृष्णका स्मरण करती हैं, श्रीकृष्ण-लीलाका चिन्तन करती हैं, श्रीकृष्णकी बातें करती हैं । श्रीकृष्णका कीर्तन करतीं-करतीं अपनेको, अपने घरको, सम्पूर्ण जगत्‌को ही भूल जाती हैं ।

सभीमें परमात्मा श्रीकृष्णका अनुभव गोपियाँ करती हैं । अतिशय तन्मयतामें गोपियोंको अनेकबार ऐसा प्रतीत होता है कि वे कहने लगती हैं—'अरी सखियो ! मैं ही कृष्ण हूँ । मेरे अन्दर ही श्रीकृष्ण हैं'—

कृष्णोऽहं पश्यत गतिं ललितामिति तन्मनाः ।

श्रीकृष्णका अनुकरण करती-करती सखियाँ भटक रही हैं । उनको उसी बीच श्रीराधाके दर्शन होते हैं । महापुरुषोंने वर्णन किया है कि श्रीराधाको भी अभिमान हुआ है । उन्होंने प्रभुसे कहा—'मुझे कन्धेपर बिठाकर ले चलें ।' ऐसा सुनकर प्रभु अन्तर्द्धान हो गये ।

श्रीराधाको क्या अभिमान होता ? जो श्रीराधा हैं, वही श्रीकृष्ण हैं और जो श्रीकृष्ण हैं, वही श्रीराधा हैं । परमात्माकी जो आह्लादिका शक्ति हैं, वही श्रीराधा हैं । जगत्‌को आनन्द श्रीकृष्ण देते हैं । आनन्दरूप श्रीकृष्णको आनन्द देनेवाली श्रीराधा हैं । जगत्‌के आधार श्रीकृष्ण हैं तथा जगदाधारकी आधार श्रीराधा हैं । 'आधार' शब्दमें यदि आप 'आधार' शब्द और जोड़ दें तो 'राधा, राधा, राधा,' ऐसा उच्चारण निकलेगा श्रीराधाको तो अभिमान क्या हो सकता है किन्तु परमात्माकी यह लीला है ।



पूज्य डोंगरेजी महाराजका

गोपियाँ श्रीकृष्णका वर्णन करतीं, भगवन्नामका कीर्तन करतीं, परमात्माकी एक-एक लीलाका स्मरण करतीं चली जा रही हैं। वहाँ इनको श्रीराधाके दर्शन होते हैं, उन्हें आनन्द प्राप्त होता है। श्रीराधा मन-ही-मन कहती हैं—'मुझे अभिमान हुआ तो प्रभुने मेरा भी त्याग कर दिया।'

रात्रिका समय है। श्रीधाम वृन्दावन है। लीला-निकुंज है। गोपियाँ परमात्मा श्रीकृष्णके पीछे-पीछे फिरती हैं। वे जैसे-जैसे श्रीकृष्णकी खोज करती हैं, वैसे-वैसे ही भगवान् भी अन्दर-ही-अन्दर छिपते चले जाते हैं। गोपियाँ मनमें विचार करती हैं—हमारे श्रीकृष्ण नंगे चरणोंसे वृन्दावनमें भ्रमण करते हैं। वे किसी दिन चरणोंमें पादुकाएँ पहिनते नहीं। रात्रिका समय है, रास्तेमें काँटे, कङ्कड़ होंगे तो नाथके चरणोंमें कष्ट होगा। हम उन्हें जैसे-जैसे खोजती हैं, वैसे-वैसे ही वे अन्दर-ही-अन्दर छिपते जाते हैं। ऐसा न हो कि वनमें बहुत भीतर जाकर कहीं काँटोंसे उनके चरणोंमें पीड़ा होने लगे। सचमुच कहीं ऐसा हुआ तो! अरे! उनके वियोगमें हम भटक भी लेंगी दुःख भी सहन कर लेंगी किन्तु हमारे लिये उन्हें थोड़ा-सा भी कष्ट सहन न करना पड़े। वे आनन्दमें रहें। अब हम लालाकी खोज नहीं करेंगी। सारी रात तो हम जंगलमें बहुत भटक चुकीं किन्तु वे तो जहाँसे अन्तर्द्धान हुए हैं, वहाँ ही मिलेंगे।'

गोपियोंने विचार किया कि जो वस्तु जहाँ खोई जाती है, उसे वहीं खोजो तो जल्दी मिल सकती है। सखियाँ श्रीराधाके साथ यमुना किनारे जहाँ श्रीकृष्णने रासलीला की थी, वहीं आईं।

'गोपी' शब्दका अर्थ है प्रेमको गुप्त रखनेवाली यानी गोपानशीला गोपी। श्रीकृष्णके प्रेमको जो गुप्त रखती हैं, वे गोपी हैं। प्रेमको जाहिर होना अच्छा लगता नहीं। गुलाबकी पंखुड़ीका यदि आप स्पर्श करें तो उसका तेज कम हो जाएगा फिर प्रेम तो गुलाबकी पंखुड़ीसे भी कहीं अधिक कोमल है। ऐसे प्रेमको यदि किसीकी नजर लग जाय तो प्रेमका तेज घटने लगता है। प्रेमको तो गुप्त रहना ही अच्छा लगता है। गोपियोंका प्रेम अतिशय गुप्त है।

गोपीगीत ग्रन्थ



सन्त कहते हैं कि गोपियाँ प्रेमको गुप्त रखें, इसमें क्या आश्चर्य है ! वे तो लालाको भी गुप्त रखती हैं। हाँ, हाँ, श्रीकृष्णको भी ये गोपियाँ छिपा लेती हैं। गोपायन्ति श्रीकृष्णं इति गोपी। अधिक क्या, श्रीकृष्ण तो गुप्त रहनेके लिये ही गोकुलमें आये हैं। मैं ईश्वर हूँ, ऐसा कोई न जाने, इसी भावको लेकर वे गोकुलमें आये हैं। कन्हैया तो बार-बार कहता है—'मैं कोई ईश्वर नहीं हूँ, मैं तो माँ यशोदाका लाला हूँ। नन्दबाबाका लाड़ला बेटा हूँ।' तब गोपियाँ लालासे कहती हैं—'कन्हैया ! तू नन्दबाबाका इतना सयाना बेटा ! नन्दबाबाका बेटा ऐसा थोड़े ही होता है ? तू तो माखन-चोर है।'

इस गोपीको डर लगता है कि कहीं कंसको पता चल जाय कि देवकीका आठवाँ पुत्र ही परमात्मा है और उसने गोकुलमें नन्दबाबाके घरमें जन्म लिया है तो कहीं ऐसा न हो कि कंस यहाँ आकर श्रीकृष्णको मथुरा ले जाय। इसीलिये तो गोपी श्रीकृष्णको केवल अपने हृदयमें छिपा रखती है।

जो श्रीकृष्ण और श्रीकृष्ण-प्रेम—दोनोंको हृदयमें गुप्त रख सके, उसे गोपी कहते हैं। गोपियाँ विचार करती हैं—'हम श्रीकृष्णको जाहिर नहीं करेंगी। जाहिर होनेसे इन्हें मथुरा जाना होगा। अरे ! न तो ये देवकीके हैं, न ये कोई देव ही हैं, ईश्वर भी ये नहीं हैं। ये तो हमारे खास प्रियतम हैं। हमारे लिये ही ये यहाँ आये हैं। श्रीकृष्ण हमारे हैं। ये हमें छोड़कर किसी दिन जायेंगे ही नहीं।'

गोपियोंको ऐसा अनुभव होता है कि ठाकुरजी यहीं कहीं छिपे होंगे और छिपकर हमें देखते होंगे। हम जो भी बातें कर रही हैं, वे उन बातोंको सुन रहे होंगे। किसी गोपीको ऐसा अनुभव होता है कि ठाकुरजी मेरी दायीं ओर हैं। श्रीकृष्णका स्मरण करते-करते किसी गोपीको ऐसा प्रतीत होता है कि ठाकुरजी मेरी बायीं ओर हैं। कोई गोपी ऐसा अनुभव कर रही है कि श्रीकृष्ण मेरे पीछे हैं और लीला-निकुंजमें छिपे हैं। ये हमें छोड़कर जायेंगे ही नहीं। ये तो हमारे हैं, हमारे प्रियतम हैं। हमें किस प्रकार छोड़ सकेंगे ये ? ये तो लीला करते हैं। हमारी बातें भी सुन रहे हैं। ये जब



बाँसुरी बजाते हैं, तब हम पागल हो उठतीं हैं। अब हम इनका गुणगान कर रही हैं तो ये आते क्यों नहीं।

गोपियोंको श्रीकृष्णका वियोग सहन नहीं होता। श्रीकृष्णके वियोगमें उनके प्राण अकुलाते हैं। परमात्माके दर्शनकी आतुरता उनके हृदयमें बहुत तीव्र है। भगवान्‌के लिये सब कुछ छोड़कर वे आई हैं। रात्रिके समय परमात्माने गोपियोंका त्याग किया है। श्रीकृष्णके दर्शनकी आतुरता उनमें खूब बढ़ गयी है। गोपियोंको भय लगता है कि अति दुःखमें कहीं हमारे प्राण निकल गये तो हम क्या कर पायेंगी ? हम प्रियतमका गुणगान ही करती रहें तो ठीक है। हम उनका कुछ ऐसा वर्णन करें कि इस वियोगका दुःख कुछ कम तो हो।

गोपियाँ प्रेमको प्रकट करनेके लिए नहीं बोल रहीं थीं। वे तो प्रेमको गुप्त ही रखना चाहती थीं। वियोगका दुःख कम करनेके लिए ही वे श्रीकृष्ण-गुणगान कर रही थीं। उनके प्राण अटके हुए हैं। उन्हें भय है कि कहीं अति दुःखमें प्राण चले गये तो अनर्थ हो जायगा। गोपियोंको मरनेका थोड़ा भी भय नहीं था। वे जानती हैं कि मरनेके पश्चात् उन्हें प्रभुके चरणों में ही जाना है।

जिनके मनमें विकार है, वासना है उन्हींको मरनेका डर भी रहता है। लेकिन जिनके मनमें विकार नहीं रहते, वासना नहीं होती तथा श्रीकृष्ण-प्रेममें जो तड़पते रहते हैं, उन्हें मरनेका जरा भी डर नहीं होता। वे तो कहते हैं—'मरकर मुझे नित्य सेवामें ही जाना है, अपने भगवान्‌के चरणोंमें जाना है। मौत को कल आना हो तो आज ही आ जाय।' सन्त तो मानते हैं कि मृत्यु श्रीकृष्णसे मिलन कराती है। फिर ये गोपियाँ तो निर्विकार हैं, वासना-हीन हैं। उनका मन अतिशय शुद्ध है। उन्हें मरनेका डर बिल्कुल भी नहीं।

व्रजवासी एक सुन्दर कथा कहते हैं। हुआ यह कि गोकुलमें एक नयी बहू आई। उसे श्रीकृष्णके दर्शनकी लगन लगी थी उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। घरमें उसे श्रीकृष्ण-दर्शनकी कोई चेष्टा सूझती नहीं थी। उसकी सासने एक दिन कहा—आज घरमें



बहुत काम है। इसलिये शामको जब श्रीकृष्ण गायोंको लेकर आवें, तब तुम उनके दर्शन करने नहीं जाना।' गोपीने हाथ जोड़कर अपनी सासने कहा—'आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। आज तो मैं दर्शन करने नहीं जाऊँगी किन्तु इतना कहे देती हूँ कि कल आप मुझे कोई आज्ञा देनेके लिये जीवित देख नहीं सकेंगी।'

सासने कहा—"कल मैं तुझे जीवित देख नहीं सकूँगी। तू कहती क्या है?' गोपी ने कहा—'ठीक कहती हूँ। आज मैं दर्शन करने नहीं जाऊँगी तो मेरे प्राण जरूर चले जायेंगे। फिर आपको कल मुझे कोई आज्ञा देनी हो तो श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल पर जो वनमाला सुशोभित होती है, उसके एक-एक फूलके ऊपर, 'कृष्ण, कृष्ण' का कीर्त्तन करती और मधुर आलाप करती हुई किसी भ्रमरीको देख लेना और उसको अपनी बहू मानकर आप आज्ञा दे देना।'

उस गोपीको मरनेका तो थोड़ा भी भय नहीं था। वह जानती थी कि मरनेके पश्चात् तो मुझे प्रभुकी नित्य सेवामें—नित्य लीलामें जाना ही है। गोपीको निरन्तर भय तो एक ही था कि श्रीकृष्णके वियोगमें मेरे प्राण जायें तो मेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा किन्तु मेरे ठाकुरजीको दुःख होगा क्योंकि किसी भी दिन उन्हें जब पता चलेगा कि मेरी मृत्यु उनके वियोगमें हुई है तो वे बहुत दुःखी होंगे। इसलिये मैं प्राण त्याग नहीं करूँगी। मेरे मरने पर लोग भी निन्दा करेंगे कि पहले तो प्रभुने वंशी बजाकर गोपीको बुलाया, उसे परमानन्द दिया और पीछे वे इतने कठोर हो गये कि उनके वियोगमें गोपीके प्राण ही चले गये। यदि ऐसा हुआ तो श्रीकृष्णके यशको कलङ्क लगेगा। मुझे अपने लालाको कलङ्क नहीं देना है। मुझे मरना नहीं है। मुझे तो श्रीकृष्णके दर्शन करने हैं। श्रीकृष्ण के लिये ही तो मैं जी रही हूँ तथा श्रीकृष्ण के दर्शन करते-करते ही मैं मरूँगी। आज तक मैंने ठाकुरजीको कभी भी सुख नहीं दिया। मैंने उनकी कभी सेवा नहीं की। मुझमें बिल्कुल भी प्रेम नहीं है। इसीलिये तो वे मुझको छोड़ गये हैं। आज उनके वियोगमें, उनका ध्यान-स्मरण करते-करते मैं प्राण छोडूं तो उनको दुःख होगा।



पूज्य डोंगरेजी महाराजका

परमात्माकी कीर्तिको कलङ्क लगेगा। प्रभुकी कीर्त्तिको कलङ्क न लगे, इसलिये मुझे अभी प्राणोंको रखना है। इसीलिये अब मैं श्रीकृष्णका ही वर्णन करूँगी—उनका गुणगान करूँगी।

गुणगान हमेशा प्रभुका ही करें। जगत्का बखान न करें और जगत् की निन्दा भी न करें। इस जगत् में बहुत-से ऐसे हैं, जो बहुत अच्छे नहीं हैं और बहुत-से ऐसे हैं जो खराब नहीं हैं किन्तु जगत् अच्छा है, ऐसा जो समझते हैं, उनका मन बिगड़ता है तथा जगत् खराब है, जो ऐसा मानते हैं, मन उनका भी बिगड़ता है।

मनुष्य जब अकेला बैठता है, तब ज्यादातर जगत्की निन्दा करता है या प्रशंसा करता है। किसीको वह अच्छा कहता है तथा किसीको खराब कहता है। कभी ऐसा भी होता है कि मानव जीभसे तो कुछ नहीं कहता किन्तु मनमें तो ऐसी बातें करता ही है। किन्तु ये गोपियाँ वियोग में श्रीकृष्णका स्मरण करती-करती तन्मय हो गयी हैं। जिससे आपका सच्चा प्रेम है, वही तो आपको बार-बार याद आता है। जब किसीके वियोग में आपके प्राण अकुलाने लगें तो मान लीजिये कि उससे आपका प्रेम है। जिसका प्रभुसे प्रेम है, वह तो उनको भूल ही नहीं सकता। वह लगातार परमात्माका स्मरण करता है।

श्रीमहाप्रभुजीकी भाव-धारा है कि गोपियोंका वियोग, बहिरंग में ही है। अन्तरंग में तो उनका प्रभुसे संयोग ही है। वियोगके भीतर संयोग छिपा है। वियोगमें श्रीकृणका स्मरण करती हुई गोपियाँ अन्दरसे इतनी तन्मय हुई हैं कि उन्हें ऐसा लगता है कि श्रीकृष्ण यहीं हैं। हम जो कुछ बोल रही हैं, उसे श्रीकृष्ण सुन रहे हैं। श्रीकृष्णका हम बखान करें तथा उनकी स्तुति करें तो प्रभु अवश्य पधारेंगे—प्रकट होंगे।

सखियाँ परमात्माकी स्तुति करती हैं। इस स्तुतिको महापुरुष 'गोपीगीत' कहते हैं। यह अत्यन्त दिव्य गीत है। भागवतके लगभग सभी टीकाकर गोपीगीतके वर्णनमें अपनी देहका भान तक भूल गये हैं। श्रीमहाप्रभुजी, श्रीसनातन गोस्वामी, श्रीजीव गोस्वामी, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती, श्री श्रीधर स्वामी,—वृन्दावनमें रहनेवाले ये सब



महापुरुष तथा अन्य बहुत-से महापुरुष गोपीगीतका वर्णन करते-करते प्रेममें पागल हो गये हैं।

गोपियाँ परमात्माको मनाती हैं। वे श्रीकृष्णकी स्तुति करती हैं। श्रीमहाप्रभुजी कहते हैं—गोपियाँ उन्नीस प्रकारकी हैं। नित्यसिद्धा, साधनसिद्धा सात्त्विक-सात्त्विक, सात्त्विक-राजस, सात्त्विक-तामस—ऐसे उन्नीस भेद आचार्यश्रीने बतलाये हैं। अन्य टीकाकार अनेक भेद मानते हैं। वैसे, प्रत्येक श्लोक बोलनेवाली गोपी अलग-अलग है तथा एक श्लोकका दूसरे श्लोकके साथ अधिक सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता। भाव यह है कि ऐसे श्लोकोंमें संगति नहीं मिलती।

संगोगमें तो भाव बदल जाते हैं किन्तु वियोगमें सभी भाव एक जैसे हो जाते हैं। सभीके मनमें यही भावना तीव्र रूपसे रहती है कि किसी प्रकार श्रीकृष्ण प्रकट हों। श्रीकृष्ण-वियोगमें गोपियाँ एक भावसे तथा एक स्वरमें परमात्माका गान करती हैं। इस गोपी-गीतके छन्दको 'कनकमञ्जरी' नाम दिया गया है। इस छन्दका पहला तथा सातवाँ अक्षर एक होता है। जैसे—जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः······इस पंक्तिमें पहला अक्षर 'ज' है तथा सातवाँ अक्षर भी 'ज' है। कुछ आचार्योंने इस छन्दको 'इन्दिरा' नाम दिया है क्योंकि वे आचार्य मानते हैं कि ये सभी गोपियाँ लक्ष्मीरूपा हैं तथा वे परमात्माकी स्तुति कर रहीं हैं—

लक्ष्मी सहस्रलीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिम्।

ऐसे आचार्य कहते हैं कि ये गोपियाँ लक्ष्मीजीकी अंशस्वरूप हैं तथा वे प्रभुकी प्रेमसे स्तुति कर रही हैं। उनकी यह स्तुति ही गोपीगीत है। वास्तवमें हम सभी गोपियाँ ही हैं। जिसके मनमें श्रीकृष्ण-दर्शन की इच्छा है, वह गोपी ही है, चाहे उसका यह शरीर स्त्रीका हो या पुरुषका। महापुरुष शरीरका विचार नहीं करते। 'गोपी' शब्दका अर्थ श्रीशुकदेवजीने किया है कि श्रीकृष्ण-दर्शनकी तीव्र अभिलाषा ही गोपी है। (श्रीकृष्णदर्शन-



लालसा;) सबको गोपीगीतका पाठ गोपी होकर ही करना चाहिये। इसका नित्य पाठ करनेसे मन शुद्ध होता है, प्रभु पाठ करनेवालेपर दया करते हैं।

परमात्माकी स्तुति करते समय गोपियोंने भगवान्‌को सबसे पहले 'दयित' नामसे सम्बोधित किया है—

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते॥

इस श्लोकका भावार्थ इस प्रकार है—हे कृष्ण! तुम्हारे प्राकट्यसे व्रजकी शोभा बढ़ी है। लक्ष्मीजी भी यहीं निवास करती हैं अर्थात् यहींका वे आश्रय लिये हुए हैं। हे प्रिय! हम जो तुम्हारे लिये ही जीवित हैं, तुम्हारी ही तो हैं। ऐसी हम गोपियाँ तुम्हें सम्पूर्ण दिशाओंमें खोजती फिर रही हैं। इसलिये हे दयालु! हमें दर्शन दो।

हे नाथ! आप दयाके स्वरूप हैं। आप जीवमात्रपर दया करते हैं। हम तो आपकी ही हैं। आप प्रेमकी मूर्त्ति हो। निःस्वार्थ भावसे सबसे प्रेम करनेवाले आप हमारे प्रति निष्ठुर बनो, यह उचित नहीं है। नाथ! कृपा करो। देखो तो सही, आपका यह व्रज किस दशामें है।

भगवानका बखान करनेसे पहले गोपियाँ उस स्थलका बखान करती हैं, जहाँ ठाकुरजी विराजते हैं अर्थात् वे प्रभु-धामका—व्रजका बखान करती हैं। 'ते जन्मना ते व्रजः अधिकं जयति'—यह व्रज आपका है। वैसे तो यह व्रज पहलेसे ही सुन्दर है किन्तु जबसे आप यहाँ प्रकट हुए हैं, तबसे तो व्रजकी शोभा बहुत बढ़ी है। अपने व्रजको आप देखें तो! यह कितना सुन्दर है! व्रज अब सबसे अधिक श्रेष्ठ हो गया है।

वैष्णव-सिद्धान्तमें वैकुण्ठको सर्वश्रेष्ठ माना गया है—यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम। वैकुण्ठ प्रभुका धाम है। वहाँ परमात्मा नित्य विराजते हैं। कई आचार्योंने ऐसा माना है कि गोलोकधाम तथा साकेतधाम, वैकुण्ठधामके ही विशेष देश हैं! अक्षर ब्रह्मके एक पादमें तो जगत् है तथा त्रिपादमें भगवान् विराजते हैं। पुरुष सूक्तमें वर्णन आया है—



पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।

परमात्माके धाम त्रिपादविभूतिमें हैं । वहाँ काम, क्रोध, शोक, लोभ आदि बिल्कुल नहीं हैं । वहाँ रजोगुण-तमोगुण नहीं हैं । वहाँ केवल मात्र शुद्ध सत्वगुण है ।

'वैकुण्ठ' शब्दपर थोड़ा विचार करें । विगतकुण्ठा इति विकुण्ठा—जो बुद्धि अत्यन्त शुद्ध है, उसे विकुण्ठा कहते हैं । कुण्ठका अर्थ है कपट । बुद्धिका कपट यानी सकामता । जब तक बुद्धि सकाम है, जब तक वह स्थूल वस्तुका—जड़ वस्तुका चिन्तन करती है, जब तक यह शरीरका चिन्तन करती है, तब तक यह मोटी है, स्थूल है । स्थूल और सकाम बुद्धिके द्वारा परमात्माका अनुभव हो नहीं सकता । सूक्ष्म एवं निष्काम बुद्धिके द्वारा ही महापुरुष परमात्माका साक्षात्कार करते हैं ।

सूर्यका प्रकाश सब कहीं है, फिर भी सूर्यका प्रखर प्रकाश भी अग्नि उत्पन्न नहीं कर सकता, सूर्यका प्रकाश, सूर्यकान्त मणिके द्वारा जब कपासपर पड़ता है, तभी अग्नि उत्पन्न होती है । सूर्यका प्रकाश जिस प्रकार व्यापक है, उसी प्रकार शुद्ध तेजोमय परमात्मा सर्वव्यापक हैं किन्तु सूर्यका प्रकाश जिस प्रकार सूर्यकान्तमणिके द्वारा अग्नि उत्पन्न करता है, उसी प्रकार शुद्ध बुद्धिके द्वारा परमात्मा प्रकट होते हैं ।

विकुण्ठामें यानी शुद्ध बुद्धिमें जो प्रकट होता है, उसे वैकुण्ठ कहते हैं । वैकुण्ठ सबसे श्रेष्ठ है । वहाँ जानेके पश्चात् जीव फिर संसारमें नहीं आता किन्तु ये गोपियाँ तो भगवान्से कहती हैं—'हमारा व्रज तो वैकुण्ठसे भी श्रेष्ठ हो गया है—ते जन्मना ते व्रजः वैकुण्ठादपि अधिकं जयति । वैकुण्ठसे भी अधिक व्रजकी महिमा बढ़ गयी है'—

वृन्दावन वैकुण्ठ दोउ, तोलैं हरि के दास ।
भारी सो धरती रह्यौ, हलको गयौ अकास ॥

वैकुण्ठमें ऐश्वर्य प्रधान है तथा व्रजमें प्रेम प्रधान है । वैकुण्ठमें भगवान नारायण राजाधिराज विराजते हैं, अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंके नायक विराजते हैं, जबकि व्रजमें ईश्वर होनेपर भी श्रीकृष्ण बालक रूप हैं, ग्वाल-बालोंके सखा हैं । भगवान् व्रजवासियोंसे प्रेम



करते हैं। वे व्रज़में ऐश्वर्यको दूर फेंक देते हैं। ऐश्वर्यतो द्वारका-लीलामें मुख्य है किन्तु व्रजकी लीलामें वह गौण है। श्रीकृष्ण, व्रजमें ईश्वर नहीं हैं, व्रजवासियोंके बालक हैं।

बड़ी और प्रौढ़ा गोपियां लालाको गोदमें लेकर खिलाती हैं, हृदयसे लगाती हैं और स्तन-पान कराती हैं। बालक भी लालाके साथ खेलते हैं और कितने ही बालक तो लालाके साथ झगड़ा भी करते हैं। वैकुण्ठमें नारायणके साथ कोई झगड़ सकता है क्या ? गोपियाँ तो लालासे कहती हैं—कन्हैया ! तुझे यदि मेरे घरका माखन खाना हो तो थोड़ा नाच दे। वैकुण्ठमें नारायणसे कोई कह सकता है कि 'तुम नाचो।' वहाँ तो वे राजाधिराज हैं। हाँ तो फिर माखनका लोभी कन्हैया गोपीको प्रसन्न करनेके लिए नाचता है। जो आनन्द व्रजवासियोंको मिला है और जिस आनन्दका दान व्रजवासियोंने परमात्माको दिया है, वह आनन्द वैकुण्ठमें कहाँ ? वैकुण्ठमें तो ऐश्वर्य प्रधान है। वहाँ नारायणका कोई जन्म-महोत्सव नहीं होता। जिनका जन्म ही नहीं तो फिर उसका जन्मोत्सव कैसे हो ? व्रजमें तो नन्द-महोत्सव होता है। एक-एक गोपीके घर परमात्मा खेलते हैं। वैकुण्ठके नारायणको तो भक्त मानते हैं किन्तु व्रजकी लीला तो बिल्कुल पृथक् ही है। व्रजमें तो श्रीकृष्ण व्रजवासियोंको मनाते हैं। यह श्रीकृष्णकी प्रेम-लीला है।

वैकुण्ठमें तो भक्त भगवानके दर्शनके लिये आतुर होते हैं तथा दूरसे ही दर्शनकर पाते हैं। नारायणका वहाँ कोई स्पर्श भी नहीं कर सकता। वैकुण्ठमें ब्रह्माजी जायें तो वे भी ठाकुरजीके चरणोंका स्पर्श नहीं कर सकते। वे भी प्रभु के चरणोंकी पादुकाओंका ही वंदन वहाँ कर पाते हैं। प्रत्यक्ष चरणोंका स्पर्श करनेमें ब्रह्माजीको भी भय लगता है। वैकुण्ठमें परमात्माके चरण लक्ष्मीजीकी गोदमें रहते हैं। ऐसे वैकुण्ठमें ब्रह्माजी जायँ तो वे परमात्माकी चरण-पादुकाओंका ही स्पर्शकर सकते हैं, प्रत्यक्ष चरणोंका स्पर्श वे भी नहीं कर सकते।

जबकि व्रजमें तो कन्हैया गोपियों से कहते हैं—अरी सखी ! मैं तेरे घर आऊँगा। एक-एक गोपीके घर ये जाते हैं। कन्हैया गोपीके घर आते हैं तब भी गोपी लालाकी दृष्टि-सामने नहीं आती। गोपी विचार करती है कि यदि मैं लालाको निहारूँगी तो मेरे काममें कोई-न-कोई गड़बड़ हो जायगी। कन्हैया गोपीके आगे खड़े हैं फिर भी गोपी लालाको देखती



ही नहीं वह तो काम करनेमें तन्मय ही बनी रहती है। 'गोपी मुझे देखे' इस भावसे कन्हैया ठुम ठुम करते हुए चरण धरते चलते हैं किन्तु गोपी ने तो निश्चय किया है कि लालाको निहारूँगी तो फिर मुझसे काम हो नहीं सकेगा। इसलिए मैं लालाको देखूँगी ही नहीं।

'अरी सखी ! तू रूठ गई है क्या ? तू मुझे देखती ही नहीं।' ऐसा कहकर कन्हैया बाँसुरी बजाने लगते हैं। इससे गोपीका मन थोड़ा चंचल तो होने लगता है। लालाको देखनेकी आतुरता भी उसके हृदयमें जागती है। फिर भी मनके ऊपर वह अंकुश लगाती है। कन्हैया कुछ गाने लगते हैं। सोचते हैं कि अब भी मुझे यह देखती नहीं। इसलिये गोपीकी ओर वे कंकड़ी फेंकते हैं।

ऐसी लीला वैकुण्ठमें नहीं होती। यह आनन्द वैकुण्ठमें कहाँ है ! जहाँ ऐश्वर्यकी अधिकता है, वहाँ तो जीवको संकोच होता है। ऐश्वर्यमें प्रेम कहाँ है ? वैकुण्ठके नारायणके साथ तो कोई भी संकोच छोड़कर बोल ही नहीं सकता।

रामानुज सम्प्रदाय में ऐसा मानते हैं कि भगवान् नारायण वैकुण्ठमें विश्राम करते हैं। वहाँ वे अधिकतर अपने नेत्र बन्द ही रखते हैं और इसीलिये बालाजी महाराजके माथेपर जो तिलक लगाया जाता है, वह आखोंतक भी लगता है। भगवान्की आँखें वैकुण्ठमें बन्द रहती हैं। वहाँ वे जल्दी आँखें खोलते ही नहीं। कोई जीव अत्यन्त भक्ति करे और वैकुण्ठ धाममें आवे तो नारायणके चरणोंकी सेवामें लगी लक्ष्मीजी प्रभुके श्रीचरणोंको जोरसे दबाने लगती हैं। इससे, नारायण नेत्रोंको थोड़ा खोलते हैं और पूछते हैं—'क्या है ?' लक्ष्मीजी कहती हैं—'नाथ ! यह जीव आपकी शरणमें आया है।' तब नारायण कहते हैं—'ऐसा है तो इसे वैकुण्ठमें ही रखो।' इतना कहकर नारायण अपने नेत्रोंको बन्द कर लेते हैं।

वैकुण्ठमें ऐश्वर्यकी प्रधानता है। वहाँ लीलाकी प्रधानता कहीं नहीं है। वहाँ नारायण किसीके साथ खेलते नहीं। व्रजमें तो श्रीकृष्ण एक-एक व्रजवासी बालकके साथ खेलते हैं। व्रजमें प्रेमकी लीलाएँ सम्पन्न होती हैं। वैकुण्ठके नारायणसे कोई भी काम



करनेके लिये क्या ऐसा कभी कह सकता है कि नारायण ! लो, इतना काम कर दो किन्तु इधर व्रजमें जब कन्हैया गोपियोंके घर जाते हैं तब कोई भी गोपी लालासे कहती है--लाला ! तुझे हमारे घरका माखन खाना हो तो थोड़ा यह काम करना पड़ेगा। बादमें लालाको काम समझाती हुई कहती है--देखो उधर पटड़ा रखा है। उसे उठाकर यहाँ ले आओ। तीन-चार वर्षका छोटा-सा कन्हैया। उसे माखन खानेकी बड़ी चाह है। इसलिए वह पटड़ा लिए गोपीकी ओर जा रहा है।

पटड़ा बड़ा भारी है और कन्हैया अत्यन्त कोमल है। वैसे तो लालाकी छिगुनी ऊँगलीपर गिरिराज गोवर्द्धन विराजते हैं किन्तु लालामें पटड़ा उठानेकी शक्ति कहाँ है ? ये तो बालक है। कन्हैया धीरे-धीरे पटड़ा तो ले आते हैं किन्तु पटड़ा था वजनदार और इसीलिए वह लालाके हाथसे एकदम छूटकर गिर गया पटड़ा तो गिर गया किन्तु लाला-का पीताम्बर भी खुल गया। अब बालकृष्ण रेंगने लगे। गोपी दौड़ती-दौड़ती आई। लालाको उसने गोदमें उठा लिया और पूछने लगी--'बेटा ! रेंग क्यों रहे हो ?' कन्हैया वैसे ही सरकते-सरकते कहने लगे--'मेरा पीताम्बर खुल गया है। तब गोपी बोली--'लाला ! आओ। मैं तुम्हें पीताम्बर पहना दूँ।'

वेदान्तके ग्रंथोंमें उल्लेख है कि ज्ञानी महापुरुष निरन्तर ब्रह्मचिन्तन भले ही करें किन्तु जबतक वे पांचभौतिक शरीरमें हैं, तबतक उन्हें परमात्माके दर्शन, मायाके थोड़े-बहुत, आवरणके साथ ही होते हैं। ज्ञानी पुरुष उस आवरणको 'लेशाविद्या' कहते हैं। उस स्थितिमें मायाका पर्दा तो खड़ा ही रहता है। दूसरी ओर निरावरण ब्रह्मका दर्शन गोपियाँ ही करती हैं। जहाँ अतिशय प्रेम होता है, वहाँ पर्दा नहीं होता।

गोपी कहती है--कृष्ण ! तुम्हारा प्राकट्य हुआ, इससे हमारे व्रजकी शोभा बढ़ी है--

अत्र इन्दिरा शश्वत् श्रयते वैकुण्ठे तु इन्दिरा आश्रयते।

इन्दिरा शब्दका अर्थ है लक्ष्मी। वैकुण्ठमें लक्ष्मीजी स्वामिनी हैं। सर्वसौन्दर्य, माधुर्य, ऐश्वर्य--सबकी ही अधिष्ठात्री देवी महालक्ष्मी हैं। अनेक दासियाँ उनकी सेवा



करती रहती हैं किन्तु वे ही लक्ष्मीजी व्रजमें श्रीकृष्णके आगमन के पश्चात् ऐश्वर्य छोड़कर, इनकी दासी बनकर सेवामें लगी रहती हैं—रमाक्रीडमभून्नृप: ।

वृन्दावनकी एक-एक निकुञ्जमें, निकुञ्जकी एक-एक लतामें, लताके एक-एक पत्ते, फूल और फलमें—प्रत्येकमें लक्ष्मीजी प्रवेश करती हैं और इसी कारण वृन्दावनकी शोभा इतनी अधिक बढ़ गई है । लक्ष्मीजी इन सबमें इसलिये प्रवेश करती हैं क्योंकि उन्होंने अपने मनमें यह निश्चय किया है कि—'वृन्दावनकी शोभा मैं इतनी बढ़ा दूं कि स्वामीकी इच्छा यहीं रमनेकी हो जाय ।' इसी कारण वृन्दावन अति दिव्य बना है । नन्दबाबाका व्रज लक्ष्मीजीको बहुत प्रिय लगता है । वे कहती हैं--'व्रज प्रिय लागे वैकुण्ठ नहिं जाऊँ ।'

लक्ष्मीजी व्रजमें क्यों आई हैं ? भगवान् नारायणने लक्ष्मीजीको अपने वक्ष:स्थलमें निवास दिया है । जो वस्तु अत्यन्त प्रिय लगती है, मनको अत्यन्त भाती है, संसारके लोग उसे अच्छीसे अच्छी जगह स्थान देते हैं । परमात्माको लक्ष्मीजी अत्यन्त प्रिय हैं, इसीलिये उन्होंने अपनी प्रियको वक्ष:स्थल में रखा है । लक्ष्मीजी भगवान्‌को इसलिए प्रिय लगती हैं कि वे वैष्णवों के मनोरथों को पूर्ण करती हैं, भक्तों का पोषण करती हैं । एक महात्माने अपने लेखमें स्पष्ट किया है कि भगवान् लक्ष्मीजीको वक्ष:स्थल में क्यों स्थान देते हैं । लक्ष्मीजीके बिना क्या भगवान्‌को कुछ अच्छा नहीं लगता ? लक्ष्मीजी न हों तो क्या नारायणको कोई दुःख होता है ? नारायण तो आनन्दरूप हैं । फिर भी भगवान् लक्ष्मीजीको इसलिए साथ रखते हैं कि वे विचारते हैं कि मेरा जो स्मरण करता है, मेरी जो भक्ति करता है तथा जो मेरी सेवा करता है, उसपर लक्ष्मीजी कृपादृष्टि करती हैं और उसे ऐश्वर्यका दान देती हैं ।

जो कोई भगवान्‌की भक्ति करता है, उसके ऊपर लक्ष्मीजीकी दृष्टि पड़ती है । इस जगत् में जितना भी ऐश्वर्य है, सौन्दर्य है, शोभा है, सद्‌गुण है, शक्ति है—उस सबकी



अधिष्ठात्री देवी महालक्ष्मी हैं। इन महालक्ष्मीकी दृष्टि हमारे ऊपर पड़े, ऐसा विचारकर बड़े-बड़े देव तथा ऋषि भी तप करते हैं।

ब्रह्मादयो बहुविधं यदपाङ्गमोक्षकामास्तपः समचरन् भगवत्प्रन्नाः।

भगवान् भी विचार करते हैं कि मेरे वैकुण्ठमें बहुत-से लोग आयेंगे तो भी बढ़ जायेगी। इसीलिये जब कोई बहुत भक्ति करने लगता है तब भगवान् लक्ष्मीजीको आज्ञा देते हैं कि तुम इस भक्तपर अपनी कृपादृष्टि करो। इसके पश्चात् लक्ष्मीजी उस भक्तपर कृपादृष्टि करती हैं। उनके कृपा-कटाक्षसे उस भक्तको बहुत ऐश्वर्य और यक्ष की प्राप्ति होती है। बादमें लक्ष्मीजीके मोह में अधिकतर वह भक्त ग्रस्त हो जाता है तथा भगवान्की भक्तिको छोड़ देता है, प्रभुसे विमुख हो जाता है किन्तु जिन भक्तोंको लक्ष्मीजीका ऐवर्श्य तुच्छ लगता है, लक्ष्मीजीकी कृपा-दृष्टि होनेपर भी जो भक्तिको नहीं छोड़ते, उन्हें नारायण मिलते हैं।

लक्ष्मीजी भगवान्से कहती हैं कि आप मुझे अपने वक्षस्थलमें रखते हैं किन्तु अब इस वक्षःस्थलमें रहना मुझे रुचता नहीं। मुझे तो आपके चरणों में ही रहना है क्योंकि आपके चरणोंकी रजमें अतिशय आनन्द है।

बड़े-बड़े महात्मा और ऋषि-मुनि भी मोक्षको भी तुच्छ समझकर परमात्माके चरणोंमें तन्मय हुए हैं क्योंकि उनके चरणों में अलौकिक व दिव्य आनन्द है। एकबार बालमुकुन्दने विचार किया कि बड़े-बड़े ऋषि, मोक्ष को भी तुच्छ जानकर मेरे चरणोंमें रहना पसन्द करते हैं, वे मेरे चरणोंकी नित्य सेवा करते हैं, इनका ध्यान करते हैं। भला, मेरे इन चरणोंमें ऐसा कौन-सा आनन्द है ? ऐसा विचारकर लालाने दोनों हाथोंसे अपना चरण पकड़ लिया और चरणका अँगूठा मुँहमें रख लिया—

करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम्।

प्रभुके चरणोंमें ऐसी कौन-सी मिठास है कि आज लक्ष्मीजीको भी प्रभुका वक्षः-स्थल छोड़कर चरण-रजमें रहना रुचता है ? प्रभुसे वे कहती हैं—'मुझे अपने चरणोंमें



रखिये।' भगवान् कहते हैं—'मेरे चरणोंमें तुलसीजी हैं, वैष्णव हैं, बहुत-सो भीड़ है, आपको वहाँ दुःख होगा।' लक्ष्मीजी कहती हैं—'भले भीड़ हो किन्तु मुझे तो आपके चरणमें ही रहना है। आपके चरणोंकी रज मुझे बहुत अच्छी लगती है। चरण-रजमें बहुत आनन्द है।' लक्ष्मीजीने विचार किया कि वैकुण्ठमें तो प्रभुके चरणोंकी रज नहीं है। वैकुण्ठ तो शुद्ध सत्वमय भूमि है, वहाँ रजोगुणका लेशमात्र भी नहीं है तो फिर रज कहाँसे होगी? जब कि व्रजकी भूमि तो प्रभुकी चरण-रजसे पावन हुई। व्रज-रज अत्यन्त पावन है। अमृतसे भी अधिक मधुर है।

व्रजरजकी सेवाके लिये, परमात्माके चरणोंकी रजकी उपासना करनेके लिये लक्ष्मीजी वैकुण्ठधाम छोड़कर व्रजमें आई हैं। द्वारकामें प्रभु राजाधिराज हैं। वैकुण्ठमें अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंके नायक हैं। इसीलिए वहाँ किसी भी दिन नंगे चरणोंसे उन्होंने भ्रमण नहीं किया किन्तु व्रजमें तो लाला नंगे चरणोंसे ही गौओंके पीछे-पीछे फिरता है। इसीलिए प्रभुके चरणोंकी रज वैकुण्ठमें नहीं मिलती, केवल व्रजमें ही मिलती है। व्रजरज अत्यन्त पावन है। लक्ष्मीजी कहती हैं—हे नाथ! मैं नित्यप्रति माथेपर व्रजरजका तिलक लगाऊँगी आपके श्रीअंगोंपर व्रजरज मलूँगी। हे प्रभु! इस प्रकार मेरी आँखें शुद्ध होंगी, मेरा मन पवित्र होगा।'

यशोदा मैया लालाको समझाती हैं—बेटा! तू नंगे चरणों फिरता है, इससे मुझे दुःख होता है। मेरा कन्हैया तो बहुत कोमल है। लाला तू गायों के पीछे फिरता है। रास्तेमें काँटें, कंकण और पत्थर रहते हैं, उनसे तेरे चरणोंमें बहुत वेदना होती होगी। इसलिए मेरी इच्छा है कि तू नंगे चरणोंसे मत फिर। चरणोंमें पादुकाएँ पहिनकर जा।

तब लालाने कहा मां! 'मैं सच्चा गोपाल कृष्ण हूँ कि नहीं? मैं तो गायोंकी सेवा करनेके लिए ही तेरे घर आया हूँ।'

रामावतारमें श्रीरामजीने यज्ञ किए, राक्षसोंका विनाश किया। प्रजाको उन्होंने बहुत सुख दिया। उपदेश भी दिया। बहुत कुछ उन्होंने किया किन्तु गायोंकी सेवा वे



नहीं कर सके । घरमें अनेक नौकर-चाकर हैं । राजाधिराज राम गायोंकी सेवा करें तो कैसे करें ?

लालाने माँ यशोदासे कहा—'माँ पूर्वजन्ममें मैं बहुत बड़ा राजा था । मैंने उस जन्ममें बहुत कुछ किया किन्तु गायों की सेवा नहीं की । इस समय तो गायोंकी सेवा करनेके लिए ही तुम्हारे घर आया हूँ । माँ ! गायें कहीं अपने चरणोंमें कुछ पहनती हैं ? जब ये नंगे पैरों चलती हैं तो इनका सेवक कन्हैया पादुकायें पहनकर कैसे चले ? माँ ! मुझे कुछ नहीं पहनना है । मेरी चिन्ता तू मत कर ।'

इस व्रजमें प्रभु नंगे चरणोंसे ही चलते हैं और इसीसे व्रजरज अत्यन्त पावन है । इसी पावन व्रजरजका लाभ लेनेके लिये लक्ष्मीजी भी वैकुण्ठ छोड़कर व्रजमें आई हैं । वैकुण्ठमें ऐश्वर्य है किन्तु व्रज जैसा प्रेम नहीं है । अलौकिक दिव्य प्रेमका आनन्द तो व्रजमें ही है—

इंदिरा अत्र शश्वत् श्रयते ।

नाथ ! कृपा करो । दयित दृश्यताम्—'हमें दर्शन दो ।' दृश्यताम्का अर्थ किया गया है—प्रत्यक्षीभूयताम् । ज्ञानी पुरुष ऐसा मानते हैं कि ईश्वर दृश्य नहीं है, वह तो द्रष्टा है । जो सबका दृष्टा है, उसे कौन देख सकता है ? जो सबको देखता है, जो सबका साक्षी है, उसे कोई देख ही नहीं सकता । ज्ञानमार्गमें भगवान् द्रष्टा हैं किन्तु गोपियोंका प्रेम ऐसा है कि वे कहती हैं—'भगवान् ! आप द्रष्टा न रहें । दृश्य हो जायें ।'

वेदान्त दर्शनमें ईश्वरको दृश्य नहीं माना गया है । वेदान्त कहता है कि ईश्वर दृश्य नहीं है । वह तो—'साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च' ही है । ज्ञानी पुरुष ऐसा मानते हैं कि आँखोंको देखनेकी शक्ति देनेवाला ईश्वर ही है, इसलिए आँखें उसे देख ही नहीं सकतीं । भगवान् तो सबको देखते हैं । जो भी हो, वैष्णव दर्शन मानता है कि भगवान् द्रष्टा भी हैं और दृश्य भी हैं ।



भगवान्‌के आनन्द-स्वरूपका आस्वादन लेनेके लिए गोपी भगवान्‌से कहती है—आप द्रष्टा-रूपसे सब कहीं हो। हमारे अन्दर भी हो किन्तु आपका यह द्रष्टारूप हमें रुचता नहीं। आप दृश्य बनो और मैं द्रष्टा बनूं—

दयित दृश्यताम् दिक्षु तावकाः त्वयि धृतासवः—'हम तो आपके लिए ही जीवित हैं।'

भगवान् कहते हैं—'यदि तुम मेरे लिए ही जी रही हो तो फिर मेरे वियोगमें तुम्हारे प्राण क्यों नहीं निकलते ?'

इस जगत्‌में शुद्ध प्रेम कहीं भी नहीं दिखाई देता। जगत्‌का जो कुछ प्रेम है, वह अधिकतर स्वार्थसे ही परिपूर्ण है। मानव, शुद्ध और निःस्वार्थ भावसे जल्दी प्रेम करता ही नहीं है। शुद्ध भावसे यदि वह प्रेम करेगा तो उसका प्रियसे कभी वियोग होगा ही नहीं और यदि कभी वियोग हुआ भी तो वह जीवित नहीं रह सकेगा। गोपियोंका प्रेम तो शुद्ध है। फिर वे वियोग में कैसे जीवित रह पाती हैं ?

गोपी कहती हैं—'त्वयि धृतासवः त्वाम् विचिन्वते।' हमारे प्राण तो तुम्हारे ही पास हैं। उन्हें लेनेके लिए काल आया है किन्तु वह उन प्राणोंको पकड़ ही नहीं सकता। कारण कि हमारे प्राण तो श्रीकृष्णमें अर्थात् आपमें ही हैं।'

श्रीकृष्ण तो कालके भी काल हैं। भीरपि यद्बिभेति। कालरूपी भय भी जिन श्रीकृष्णसे डरता है, ऐसे श्रीकृष्णमें गोपियोंके प्राण समाए हुए हैं—त्वयि धृतासवः। इस प्रकार इन गोपियोंके प्राण, गोपियोंके शरीरमें नहीं हैं, श्रीकृष्णमें ही हैं। गोपियाँ प्रत्येक श्वासमें श्रीकृष्णका चिन्तन करती हैं। इसीलिए उनके प्राणोंको काल नहीं पकड़ सकता।

गोपी कहती हैं—'हमें आशा है कि आप दर्शन देंगे। आपने हमारे कानमें कहा है कि यह तुम्हारा अन्तिम जन्म है। इस जन्ममें ही तुम कृतार्थ होओगी, ऐसा भी आपने

कहा है। आपने जो यह सब मेरे कानमें कहा है और मुझे आश्वासन दिया है वह मुझे याद है।'

वैष्णव इस आशामें ही जीवित रहते हैं कि 'हमारे भगवान् हमें अवश्य दर्शन देंगे।' किसी न किसी दिन तो वे कृपा करेंगे ही। मैं अधिकारी नहीं हूँ, इसलिए प्रभु मुझसे बोलते नहीं। मेरे भगवान् मुझसे चाहे अभी न बोलें किन्तु मैं ठाकुरजीसे बातें करूंगा। मुझे विश्वास है कि मेरे जीवनके अन्तिम दिन वे मुझे अवश्य ही दर्शन देंगे।' किसी मानवसे ऐसी आशा रखना बहुत दुःखदायी है किन्तु परमात्मासे ऐसी आशा रखनेमें महान् सुख मिलता है।

गोपीको आशा है कि 'प्रभु मुझे मिलेंगे, वे अवश्य ही दर्शन देंगे। उसी आशामें तो मैं जी रही हूँ—त्वयि धृतासवः। मैं तो तुम्हारे लिए ही जी रही हूँ। जो तुम्हारे ही लिए जी रही है, वह तुम्हारे वियोगमें रातके समय इस प्रकार व्याकुल बनी रहे; ऐसा देखना क्या तुम्हें शोभा देता है ?

त्वयि धृतासवः त्वां विचिन्वते इति भवान् दृश्यताम्।

टीकाकारोंने इसके अनेक अर्थ किए हैं। हाँ, तो गोपी भगवान्से कहती है—'मैं आपके वियोगमें आपको खोज रही हूँ। ऐसी मुझको आप देखो तो। मैं आपको ही खोज रही हूँ। और किसीको नहीं खोज रही। मैं तो श्रीकृष्ण ! तुम्हारे ही लिए जी रही हूँ।'

मानवको खबर नहीं है कि इसका जीवन है किसके लिए। यह तो ऐसा मानता है कि 'मैं तो वैष्णव हूँ।' परन्तु वैष्णव तो वे ही हैं जो परमात्माके लिए जी रहे हैं। कोई पैसेके लिए जी रहा है, कोई संसारका सुख भोगनेके लिए जी रहा है, कोई खानेके लिए जी रहा है, किन्तु गोपी तो परमात्माके लिए ही जी रही है। वह कहती है—'मेरा जीवन आपके लिए ही है। मैं सब कहीं आपको ही खोजती रही हूँ—त्वां विचिन्वते। मैं भगवान् को खोजती रही हूँ।'

गोपीगीत ग्रन्थ



इस जगत्में बहुत-से लोग ऐसे हैं, जिन्हें परमेश्वरकी थोड़ी सी भी जरूरत नहीं है। इसीलिये वे परमात्माको खोजते ही नहीं। आजकल लोगोंने पैसेको इतना मूल्य—महत्त्व दिया है जितना कि परमात्माको भी वे देना नहीं चाहते। उन्हें पैसेकी जितनी जरूरत प्रतीत होती है, उतनी प्रभुकी नहीं होती।

यहाँ गोपी कहती है—इस जगत्में बहुत-से लोग ऐसे हैं जो आपको खोजते ही नहीं हैं, जब कि मैं आपको खोजती रही हूँ, आपके पीछे-पीछे फिरती भी रही हूँ फिर भी आप मुझे दर्शन न दो और इस तरह अन्तर्द्धान ही रहे आओ यह आपके लिये उचित नहीं है।'

गोपी परमात्माको मनाती है—'नाथ! आप जगत्को प्रेमका दान देने के लिये आये हो। आपसे जो प्रेम करती है, आपके लिये ही जो जीवित रहती है, आपके लिये जो सर्वस्वका त्याग करती है, ऐसी व्रज-भक्ता भी आपके वियोगमें इस तरह भटके, यह आपको शोभा नहीं देता। प्रेम-मार्गको छिन्न-भिन्न न करो, प्रभु।'

श्रीकृष्ण जगत्में प्रेमकी स्थापना करने तथा जगत् के लोगोंको प्रेम-रसका दान देनेके लिये आये हैं। वे ऐश्वर्यका त्यागकर व्रजमें लीला करनेके लिये आये हैं। वे कहते हैं—'मैं तुम्हारा हूँ।' श्रीकृष्ण, जगतकी उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार करनेवाले ईश्वर हैं, ऐसा समझकर गोपी श्रीकृष्णसे प्रेम नहीं करती किन्तु श्रीकृष्ण हमारे हैं' ऐसा समझकर प्रेम करती है। 'वयं तावकाः—हम आपकी हैं तो फिर हमें छोड़कर जाना आपके लिये उचित नहीं।

भक्ति और प्रेममें एक अन्तर है। भगवान्के अधीन होकर रहना भक्ति है। भगवदिच्छासे यदि कभी सुख-दुःखका प्रसंग आवे, उसे संतोषसे सहन करे और प्रभुकी सेवा व प्रभु-स्मरणमें लीन रहे—ऐसी स्थितिको भक्ति कहते हैं। गोपीकी भक्ति उससे कहीं आगेकी है। गोपी प्रेममें मानती है कि 'श्रीकृष्ण हमारे हैं, वे हमारी इच्छाके अनुकूल व्यवहार करते हैं।' भक्ति-मार्ग में तो भगवान्की इच्छा ही मेरी इच्छा है, ऐसा माना जाता



है किन्तु प्रेममें तो प्रियतम, प्रेमीके अधीन ही रहता है। भक्तिसे प्रेम श्रेष्ठ है। गोपियाँ प्रेम-मूर्त्ति हैं। प्रेमरूपा गोपियाँ ऐसा मानती हैं कि 'हमारी इच्छासे ही प्रभुको चलना चाहिये। हमारी जो इच्छा है, वह हमारे भगवान्‌की इच्छा है। श्रीकृष्ण हमारे हैं।' श्रीकृष्ण ईश्वर हैं और अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंके नायक हैं, ऐसा समझकर गोपियाँ प्रेम नहीं करतीं। श्रीकृष्ण हमारे प्रियतम हैं, हमें इनके लिये जीवित रहना चाहिये। हम जैसा कहें, हमारी जैसी इच्छा हो, वैसे ही प्रभुको लीला करनी चाहिये।'

साधारण भक्तिकी स्थितिमें तो वियोगमें दैन्य आता है किन्तु गोपियोंकी महिमा अपार है। इन गोपियोंकी वियोगावस्था मेंभी इनमें श्रीकृष्णके प्रति दैन्य भाव नहीं आता। 'प्रभु हमारे होकर भी हमें कैसे छोड़ रहे हो ? दयित दृश्यताम्। तुम अब निठुरता छोड़ दो और प्रेमपूर्वक हमारे सामने प्रकट हो जाओ। नाथ ! अब बहुत हो गया। आपके दर्शनके लिये हमारे प्राण तरसते हैं ! नाथ ! कृपा करके हमें दर्शन दो।

यह जीव स्त्रीरूप है। शास्त्रमें लिखा है—स्त्री शब्दका अर्थ होता है, जिसे भय लगे वह स्त्री। भय, स्त्रियोंका धर्म है। इस जगत्‌में पुरुष तो एक श्रीकृष्ण ही हैं। जगतमें दूसरा कोई पुरुष है ही नहीं। श्रीकृष्णके अतिरिक्त सभी स्त्री हैं। महापुरुषोंने वर्णन किया—'पुरुष एक पुरुषोत्तम हैं और सब व्रजनारी हैं। गीताजीके सातवें अध्यायमें पुरुष और प्रकृतिका वर्णन आया है। जीव तो प्रकृति-स्वरूप है प्रकृति स्त्री है, इसीलिये जीव भी स्त्री-रूप है। कालसे यह बहुत घबराता है। पुरुष वही हो सकता है, जिसे भय न हो। श्रीकृष्ण ही एक मात्र पुरुष हैं और वे ही परमात्मा हैं। जीवमात्र, प्रकृतिरूप है और वह परमात्मासे अलग जा पड़ा है। वह जब परमात्माके लिये जीवित रहता है, परमात्माको खोजता है, तब भगवान् उसे दर्शन देते हैं।

अभिमान-रूपी पर्दा आँखोंके ऊपर पड़ा है, इसीलिये भगवान् प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देते। गोपियाँ प्रभुको मनाती हुई कहती हैं—'नाथ ! दर्शन दो। दयित दृश्यताम्। हमें दर्शन दो। तब प्रभुने कहा—दर्शन नहीं दूँगा।

गोपीगीत ग्रन्थ



एक गोपीको लगा कि कन्हैया अगूँठा दिखा रहे हैं। मानो वे कह रहे हों—'मैं जब तुम्हारे पास था, तब तुमने मेरी कदर नहीं की। अब मुझे तुम्हारी बिल्कुल आवश्यकता नहीं है" कन्हैया इतने पर भी आये नहीं, प्रत्यक्ष नहीं हुए तब गोपीने कहा—'नाथ प्रेम-मर्यादाकी रक्षा करनेके लिए प्रकट हो जाओ।'

श्रीगोपीगीतके पहले श्लोकमें प्रभुके धामका वर्णन है तथा दूसरे श्लोकमें श्रीकृष्णके नेत्रोंका वर्णन है—

> शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा।
> सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका वरद निघ्नतो नेह किं वधः ॥२॥

इस दूसरे श्लोकका भावार्थ है कि शरद ऋतुमें सरोवरमें उत्पन्न हुए अत्यन्त सुन्दर कमलके अन्तर्भागकी शोभाको लजानेवाली दृष्टिसे हे प्रियतम! इन अपनी बिना मूल्यकी दासियोंके प्राण हर रहे हो। हे वरदाता! क्या यह वध नहीं है।'

गोपियाँ भगवान्‌से कहती हैं कि नाथ कृपा करो, एक बार दृष्टि (दृशा) हमारी ओर करो। बात यह है कि परमात्मा जिनकी ओर कृपा-दृष्टि करते हैं, उनकी बुद्धिमें ज्ञान स्फुरित होता है। ज्ञान किसी खास प्रयत्नसे नहीं मिलता। प्रयत्न करनेसे, पुस्तकें पढ़नेसे शब्द-ज्ञान बढ़ता है। जगत्‌में ऐसा दिखाई देता है कि जिसका शब्द-ज्ञान बढ़ा हुआ है, उसके भीतर अभिमान भी बढ़ा हुआ ही रहता है। ज्ञानका मतलब यह नहीं है कि दूसरोंको छोटा समझा जाय और अपनेको बड़ा समझा जाय। ज्ञान इसलिये नहीं है। ज्ञानका फल है—सबमें श्रीकृष्णका दर्शन। सबके प्रति भगवद्भाव जागे, हृदय प्रेममें पिघलने लगे—तो यह ज्ञानका लक्षण है। जब ज्ञान प्रकट होता है तब अभिमान मर जाता है। अभिमान बढ़ने लगे तो समझ लेना चाहिये ज्ञान वहाँ नहीं है, केवल ज्ञानकी प्रतीतिमात्र है। ज्ञान तो परमात्मा देते हैं। गीताजीमें प्रभुकी आज्ञा है—मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च। अर्जुनने जब बहुत सयानेपनकी बातें करनी आरम्भ कीं तो प्रभुने कहा—'तू अपना यह सयानापन छोड़ दे। ज्ञान तो मैं देता हूँ। वह मेरी कृपासे मिलता है।'



आप सन्तोंका चरित्र पढ़ें तो मालूम होगा कि वे किसीके घर पढ़नेके लिए नहीं गये। व्रज-भक्तोंको ज्ञान किसने दिया था ? मीराबाई किसके घर वेदान्त पढ़ने गई थीं ? मीराबाईके चरित्र में आता है कि वे गिरिधरगोपालका सुन्दर श्रृंगार करती हैं तथा अपने कमरेका दरवाजा बन्द करके एकान्तमें गोपालजीको रिझाती हैं। गोपालजीको बार-बार प्रेमपूर्वक मनाती हुई कहती हैं—'मुझपर एक बार कृपादृष्टि करो।'

पण्डित लोग तो पुस्तक पढ़कर बोलते हैं और सन्त परमात्माके दर्शन करते-करते बोलते हैं। पण्डितोंके द्वारा बोले गए शब्दोंका असर मनपर बहुत अधिक नहीं पड़ता क्योंकि वे तो पुस्तकोंके पीछे ही पड़े रहते हैं किन्तु जो लोग परमात्मा के पीछे पड़े हैं, जिनका हृदय श्रीकृष्णके प्रेममें सर्वकालमें द्रवीभूत होता रहता है—सुखका प्रसंग आए या दुःखका, कोई सम्मान करे या भरी सभामें कोई अपमान कर दे, हर अवस्थामें जिनका हृदय श्रीकृष्ण-प्रेममें द्रवीभूत ही रहता है, उनपर परमात्मा कृपा-दृष्टि करते हैं।

सुख-सम्पत्तिकी स्थितिमें सम्मान मिलता हो और उस दशामें जो यह मानता हो कि 'मुझपर प्रभुकी कृपा है' वह साधारण वैष्णव है। अतिशय दुःखमें, घोर विपत्तिमें, किसीने असह्य अपमान किया हो, ऐसी स्थितिमें भी जिसका मन शान्त रहे, वह परम वैष्णव है। 'ठाकुरजीकी मेरे ऊपर बहुत कृपा है, मैं भगवान्‌का हूँ'—प्रभुके प्रति शरणागतिका ऐसा भाव रखें। भगवान् सब कुछ कर सकते हैं किन्तु शरणमें आए हुए जीवोंका अमंगल या उनकी उपेक्षा वे परमेश्वर नहीं कर सकते। 'जो मेरा हो गया, उसका तो मैं मंगल ही करता हूँ'—प्रभु ऐसा मानते हैं। इसलिए परमात्मासे रोज प्रार्थना करो—'नाथ मुझपर कृपा-दृष्टि करो।'

आप गोकुल गए होंगे और गोकुलनाथजीके खूब प्रेमसे दर्शन किए होंगे। वहाँ ठाकुरजीकी दृष्टि अधिकतर धरतीकी ओर ही रहती है। आप श्रीनाथजीके दर्शन कीजिये, उनकी दृष्टि भी धरती पर ही है। वे नेत्र ऊँचे करके देखते ही नहीं और ईश्वर जबतक जीवकी ओर दृष्टि न करें तबतक उसकी बुद्धिमें ज्ञान व वैराग्यका स्फुरण होता ही नहीं।



श्रीकृष्णकी एक आंखमें ज्ञान है और दूसरी आंखमें वैराग्य है। भगवान् जिसकी ओर दृष्टि करते हैं, उसे संसारके सभी सुख तुच्छ लगते हैं। परमात्मा जिनपर कृपादृष्टि करते हैं, उनको खूब पैसा भी वे देते हैं—ऐसा भागवतमें कहीं भीं नहीं लिखा है। आज-कल बहुत-से लोग बहुत पैसा मिलनेपर कहते हैं—'ठाकुरजीकी कृपा है।' वास्तवमें पैसा ही परमात्माकी कृपाका फल नहीं है। श्रीकृष्ण जब कृपा करते हैं तब प्रेम देते हैं। इस दूसरे श्लोकमें श्रीकृष्णको 'सुरतनाथ' शब्दसे सम्बोधित किया गया है। 'सुरत' शब्दका अर्थ होता है 'प्रेम'। 'आप मुझे और कुछ न दें। मुझे तो केवल प्रेम दें।'

मानव भक्ति करता है, अपनेको वैष्णव कहलाता है किन्तु प्रभुमें इसका सच्चा प्रेम नहीं है। यह पैसेके बराबर भी परमात्माकी कदर नहीं करता। जब यह प्रभु-सेवाके लिए बैठा हो और इसे खबर मिले कि पोस्टमैन पांच-सात सौ का मनीआर्डर लेकर आ रहा है, तब यह ठाकुरजीकी सेवा छोड़कर पैसे लेने चला जायगा तथा बादमें ऐसा यह व्यक्ति सयानेपनकी बातें करते हुए कहता है—'पैसा भी तो सब भगवान्का ही है न।' ठाकुरजी-को क्या यह बात खोटी नहीं लगेगी ? अरे, तेरे भाग्यका पैसा तुझे मिलना ही है। इसके लिए कहीं जाना क्या ? पैसा प्रारब्धसे मिलता है।

शास्त्र में ऐसा लिखा है कि यदि घरमें ज्यादा पैसा आवे तो मान लो कि अधिक-तर वह पापसे ही आता है। धनको धर्मकी मर्यादामें रखो। धन साध्य नहीं है, साधन है। परमात्मासे प्रेम करो। धन तो अनेक बार अनर्थ भी करता है। कितने ही साधु-महात्मा इसीलिए धनको अनर्थ कहते हैं—अर्थमनर्थं भावय नित्यम्।

पैसेका एक बड़ा दोष है। वह यह कि जिसकी जेबमें बहुत पैसे होते हैं, वह अधिक-तर दूसरोंको तुच्छ ही समझता है। उसे ऐसा लगता है कि 'मैं निश्चित रूपसे बहुत बुद्धिमान हूं' किन्तु होता वह मूर्ख ही है। उसमें बुद्धि थोड़ी भी नहीं होती। पैसेकी गर्मी होती है, इसीलिए ऐसा मानता है कि 'मैं बहुत समझता हूं।' कोई उसके समीप आता है तो उसे प्रेमसे नहीं निहारता। उसे वह कुभावसे ही देखता है। किसी गरीबका



तिरस्कार करनेमें धनीके हृदयमें थोड़ी भी वेदना नहीं होती। शास्त्रमें लिखा है कि पैसा, जहर है। पैसा यदि धर्मसे, नीतिसे आवे तो अमृत है और यदि पापके जरियेसे आता है तो यह अनर्थ करता है। पैसा अधिक आता है तो इससे विकार-वासना भी बढ़ती है। जिस घरमें पैसा अधिक आता है, उस घरके लोग ज्यादातर आलसी हो जाते हैं। उनमें आलस्य बढ़ता है। आलस्य जैसा मनुष्यका और कोई शत्रु नहीं है। पहले तो माताएँ, पुरुष, घरके सब काम करते थे, किन्तु अब इस यन्त्र-युगमें किसीको घरका काम करना अच्छा नहीं लगता। आराम करना अच्छा लगता है। अरे, तुम मनको बहुत आराम दोगे तो यह बहुत बिगड़ जायगा।

आराम मिलनेके बाद क्या भगवान् याद आते हैं ? थोड़ा भी आराम मिलनेके पश्चात् यदि भक्ति बढ़े तो भी आराम करना चल सकता है। आराम करनेसे यदि भगवान्को भुलाया जाता है तो ऐसा आराम तन और मन दोनोंको बिगाड़ देता है।

प्रभुका एक स्वभाव है। उनकी शरणमें आया हुआ जीव जब उनसे भी अधिक जगत्से प्रेम करने लगता है तो परमात्मा श्रीकृष्णको बुरा लगता है। एक सन्त 'अन्याश्रय' का अर्थ करते हुए कहते हैं—'श्रीकृष्णसे अधिक किसी दूसरेसे प्रेम किया जाय तो उसे अन्याश्रय कहते हैं।' जगत् तो परमात्माका स्वरूप है। वन्दन भी सभीका करना है। अरे, किसीका वन्दन करनेसे अन्याश्रय होता है क्या ? श्रीमहाप्रभुजीका शुद्धाद्वैत सिद्धान्त है। इस सिद्धान्तसे सम्पूर्ण विश्व ईश्वरका ही है। इदं हि विश्वं भगवान् इव। किसीका वन्दन करना प्रभुको बुरा नहीं लगता किन्तु श्रीकृष्णसे अधिक किसी और के साथ कोई प्रेम करे तो भगवान्को बुरा लगता है। न लौकिक प्रभु कृष्णः मनुते नैव लौकिकम्।

लोकार्थी चेत् भजेत् कृष्णं क्लिष्टो भवति सर्वथा।
क्लिष्टोऽपि चेत् भजेत् कृष्णं लोको नश्यति सर्वथा॥

'कोई यदि लोकमें आसक्ति रखकर भक्ति करे तो भगवान् इसे दुःख देते हैं किन्तु दुःखी होनेके पश्चात् वह भक्ति करे तो उसका जगत्से सम्बन्ध छूट जाता है और ईश्वर के साथ सम्बन्ध जुड़ जाता है।'



आप वैष्णव हैं। आप अधिक प्रेम जगत्से करते हैं, घरके लोगोंसे करते हैं, पैसेसे करते हैं, कपड़ोंसे करते हैं या परमात्मासे करते हैं? कितने ही लोग तो ऐसे होते हैं कि मन्दिरमें बैठे-बैठे उन्हें बाहर रखे जूतोंकी याद आ जाती है। चप्पलें यदि नई हों तो उनकी भी याद आ जाती है। 'भीड़ बहुत हो रही है, कहीं कोई उठा ले गया तो।' यह जीव वैष्णव कहलाता है परन्तु अन्दरसे वह पूरा वैष्णव नहीं। वैष्णव तो वे हैं जो जगत्से ज्यादा परमात्मासे प्रेम करते हैं। जगत्का तिरस्कार नहीं करना चाहिए परन्तु ईश्वरकी तुलनामें जगत्से अधिक प्रेम भी नहीं करना चाहिए। जगत्के साथ किया गया अधिक प्रेम, जीवको बहुत भटकाता है।

अनादिकालसे यह जीव संसारसे, जगत्के स्त्री-पुरुषोंसे, संसारके जड़ पदार्थोंसे प्रेम करता आया है और दुःखी होता रहा है। इसके दुःखोंका अन्त तो तब होगा जब यह श्रीकृष्णसे प्रेम करेगा, जब यह परमात्मासे कहेगा—'मुझे पैसा मत दो। मुझे प्रेम दो। मैं आपका दर्शन कर रहा हूँ। अब एक बार आँखें ऊँची करके मुझे प्रेम दो।' आँखें जब चार होती हैं तो दर्शन में आनन्द आता है—

नजर बख्शे खुदा तुमको तो सब सूरत खुदा की है।

ईश्वर जिनपर कृपा-दृष्टि रखते हैं, उनको सबमें ईश्वरका दर्शन होता है। यह जीव जबतक जगत्से प्रेम करता है, तबतक भगवान् भी धरतीकी ओर ही अपनी नजर रखते हैं। अपनी आँखें बन्द किये रहते हैं। इस जीवकी ओर दृष्टि नहीं करते और कहते हैं—'तेरा मुझसे क्या प्रेम है? तू मुझे प्रेमसे कहाँ देखता है।'

ठाकुरजीकी आँखोंमें प्रेम भरा है किन्तु मनुष्य तो अधिकतर अपनी आँखोंमें पापको बसाए रहता है। आँखोंमें जो परमात्माको रखे, वही वैष्णव है। अपने ठाकुरजीके स्वरूपको आँखोंसे निकलने मत दो। आँखोंको ऐसी आदत डालो कि दो-चार मिनटके अन्तरसे ही सही पर-ये ठाकुरजीका ही दर्शन करती रहें। प्रेम कोई अलभ्य वस्तु तो नहीं है।



पूज्य डोंगरेजी महाराजका

मनुष्य प्रेम तो करता ही है। जब यह पैसे से प्रेम करता है तब दुनिया इसे लोभी कहती है। कोई स्त्री, पुरुष शरीर-से या पुरुष स्त्री-शरीरसे बहुत प्रेम करता है तो लोक उसे कामी कहता है। कोई व्यक्ति यदि संसारके किसी विषयसे, सन्तानसे, कुटुम्बसे बहुत अधिक मोह रखता है तो लोग कहते हैं—'इसके घरमें बहुत जीव हैं। इसे लड़कोंके भविष्यकी चिन्ता भी सता रही है।'

आपकी चिन्ता तो आपके ठाकुरजीको है। 'मानव प्रेम तो करता है किन्तु यह परमात्मासे प्रेम नहीं करता। जेबमें दो-चार हजार रुपये हों तो मन्दिरमें दर्शन करते-करते आपको रुपये याद आते हैं कि भगवान् ? कितने ही लोग तो ऐसे विवेकी होते हैं कि अपनी जेबपर हाथ-ही फेरते रहते हैं। 'जेबमें रुपये हैं, कहीं कोई जेबकट जेब न काट ले जाय।'—ऐसा खयाल इनके मनमें आता रहता है। यों आप पैसेसे तो प्रेम करते हैं।

प्रेम करना क्या मनुष्यको आता है ? मनुष्य स्त्रीसे प्रेम करता है। स्त्री क्या घरमें सबको बहुत सुख देती है ? अरे किसी समय स्त्री भी दुःखका कारण बन जाती है। पतिके साथ वह कपट करती है, पतिका अपमान करती है। आजकल तो ऐसा समय है कि पत्नी पतिका तिरस्कार भी करती हो तब भी पतिको पत्नी प्रिय लगती है। उसे ऐसा लगता है 'कि यह तो मेरी भक्ति कर रही है। गोकुलकी भोली गायकी तरह यह भोली है।' अरे यह तो सींग मारनेवाली भैंस जैसी है। मानव ! तेरा इसके प्रति मोह खोटा है। स्त्रीका तिरस्कार मत करो। स्त्री, भक्तिमें तुम्हारा साथ दे तो उससे स्नेह भी करो किन्तु स्त्रीकी तुलनामें परमात्मासे ही अधिक स्नेह करो। पैसेसे भी अधिक प्रेम न करो।

भगवान्से सखियाँ कहती हैं—'हममें आपके प्रति बहुत ओछा व सामान्य प्रेम है, तभी आप हमें छोड़कर चले गये हो।' भगवान् जीवको अपना स्वरूप क्यों नहीं जतलाते ? भगवान् जानते हैं कि 'यह जीव भक्तिका नाटक तो कर रहा है किन्तु मुझसे इसका सोलहों आने प्रेम नहीं है।' ऐसा कौन पिता है, जिसकी पुत्रसे मिलनेकी इच्छा न हो। भगवान्



सबके पिता हैं। श्रीकृष्ण सबके पति हैं, सबके स्वामी हैं। वे तो सबको दर्शन देनेके लिये तैयार हैं किन्तु यह जीव दुष्ट है। संसारके विषय इसे दुःख देते हैं, फिर भी वे इसे मीठे लगते हैं। यह उनसे माथा मारता है, भिड़ता रहता है। घरकी बहुत चिन्ता करता है। श्रीमहाप्रभुजीकी आज्ञा है—'चिन्ता कापि न कार्या।'

जिन्होंने प्रभुके प्रति आत्मनिवेदन कर दिया है, जिन्होंने प्रभुका पट्टा गलेमें बांध रक्खा है, जो भगवान्‌के हो गये हैं, उन सबकी चिन्ता भगवान्‌को है। फिर भी यह जीव भगवान्‌का चिन्तन नहीं करता है। और सबकी चिन्ता-ही-चिन्ता करता है।

घरमें ठाकुरजी विराजते हों और फिर भी जो कोई वैष्णव चिन्ता करता रहे तो घरके ठाकुरजीको वह बात बुरी लगती है। ठाकुरजीको ऐसा लगता है कि 'यह वैष्णव तो ऐसा समझ रहा है जैसे मैं हूँ ही नहीं। अरे! मैं जी रहा हूँ और तेरे घरमें ही हूँ।' वैष्णवके मनमें ऐसा दृढ़ भाव हो तो वह किसी दिन चिन्ता करे ही नहीं। 'मेरे पिता घरमें हैं, मेरे पिता सर्वसमर्थ हैं। मैं योग्य नहीं हूँ किन्तु मैं इनका हूँ। मेरी सारी चिन्ता इनको है।'

परमात्मा सच्चिदानंदमय हैं, वे प्रेममय हैं। श्रीकृष्णका स्वरूप, प्रेम-रूप है। वे सभीसे प्रेम करते हैं, जीवमात्रपर उनकी कृपा पूर्णरूपसे बरसती रहती है किन्तु यह जीव अभागा है। यह परमात्माके नामसे भी अधिक प्रेम नहीं करता। प्रभुका चिन्तन भी यह नहीं करता, इसीसे प्रभु इसकी उपेक्षा करते हैं।

गोपियाँ श्रीकृष्णको अपना प्रियतम मानती हैं। 'श्रीकृष्ण हमारे हैं'—ऐसा वे मानती हैं। उनका प्रेम इतना अधिक है कि उनका विश्वास है कि 'हमसे कोई भूल भी हो जायगी तो भी भगवान् हमें छोड़ेंगे नहीं।' गोपियाँ प्रेममार्गकी आचार्या हैं। गोपिकाः गुरवः प्रोक्ताः। श्रीमहाप्रभुजीने गोपियोंके मार्गका उपदेश ही जगत्‌को दिया है। श्रीमहाप्रभुजीने कहा है कि 'मैं तुम्हें कोई स्वतन्त्र बात नहीं बतला रहा। मैं अपने घरसे बनाकर कुछ नहीं कह रहा। व्रजभक्तोंने प्रेमका जो आदर्श, जगत्‌के सामने प्रस्तुत किया है, उसीका



मैं विस्तार कर रहा हूँ। गोपियाँ प्रेमकी आदर्शरूपा हैं, प्रेमकी ध्वजा हैं। उन्हें ऐसा विश्वास है कि हमसे कोई भूल भी होगी तो हमारे कृष्ण हमें छोड़कर जाएँगे नहीं।'

प्रेम परमात्माको परतन्त्र बनाता है। भक्तिमार्गमें भगवान् स्वतन्त्र और भक्ति परतन्त्र होती है, जब कि प्रेममार्गमें भगवान् परतन्त्र होते हैं और प्रेम स्वतन्त्र होता है। गोपियोंका भाव है—'श्रीकृष्ण हमारे हैं और हम उनकी हैं। तावकाः ते।'

श्रीकृष्ण तो स्वरूपको गुप्त रखते हैं। वे परमात्मा हैं, पूर्ण पुरुषोत्तम हैं किन्तु व्रजमें उन्होंने ऐसी लीला दिखाई है कि 'मैं तो तुम जैसा ही ग्वाला हूँ। नन्दबाबाका बालक हूँ।' कन्हैया परमात्मा है, ऐसा ज्ञान हो तो क्या माँ यशोदा लालाके माथेपर हाथ फिराकर लाड़ लड़ा सकती हैं? ऐश्वर्य और वात्सल्यका विरोध है।

ग्रन्थोंमें तो लिखा है कि व्रजकी लीलाओंमें ठाकुरजीने सबको सम्मान दिया है। सब देवोंको भी सम्मान दिया है। श्रीकृष्णको क्या आवश्यकता थी कि सब देवोंको सम्मान देते? श्रीकृष्णके चरणोंका वन्दन तो सभी देव करते हैं। वे सबसे श्रेष्ठ हैं फिर भी उन्होंने ऐश्वर्यको छिपाया है। व्रज चौरासी कोसकी परिक्रमा जिन्होंने की होगी, वे इस बातको जानते होंगे।

माँ यशोदा बालकोंको समझाती हैं—'मैं लालाको तुम्हारे साथ भेज रही हूँ परन्तु तुम मेरे लालाका ध्यान रखना। यह बहुत ऊधमी है। देखो! यमुनाजीमें स्नान करने यह अकेला न चला जाय। किसी पेड़पर न चढ़ जाय। यह बहुत चंचल है। तुम लालाका ध्यान रखना, इसकी सार-सँभाल रखना।'

तब एक बालक माँको समझाता हुआ कहता है—'माँ! तू थोड़ी भी चिन्ता मत कर। मैं तो लालासे तीन वर्ष बड़ा हूँ। इसका मैं बराबर ध्यान रखूँगा। मैं लालाका हाथ पकड़कर चलूँगा। माँ! यह थोड़ा भी ऊधम करेगा तो बादमें मैं इसे धमकाऊँगा, फटकारूँगा।'



यह है व्रजका प्रेम। ईश्वरको कौन धमका सकता है? उनके सामने ब्रह्मादिक देवोंकी भी आँखें ऊँची करनेकी हिम्मत नहीं होती, जबकि ये व्रजवासी बालक लालाको धमकाते हैं।

व्रजका प्रेम अलौकिक है। जब प्रभुने व्योमासुरको मारा तब व्रजवासी बालक व्योमासुरकी गुफाके पास खेल रहे थे और लालासे कह रहे थे—'लाला! तू अन्दर मत जाना। इस गुफामें तो बहुत बड़ा राक्षस रहता है। वह तुझे कहीं मारे न। हम तुझे गुफाके अन्दर नहीं जाने देंगे।' ये बालक लालाको समझा रहे थे। जगत्‌को जो समझाता है, उसे व्रजवासी बालक समझाते हैं। यह प्रेमकी महिमा है।

तब लालाने कहा—'तुम चिन्ता मत करो। यह राक्षस मेरे सखाओंको ले गया है। उनको खोजकर मैं ले आता हूं। मुझे जाने दो।' श्रीकृष्ण गुफाके अन्दर गए और उन्होंने व्योमासुरको मारा। व्योमासुर बालकोंको उठा ले जाता था और उन्हें गुफामें छिपा देता था। प्रभुने छिपे हुए बालकोंको मुक्त किया। बालक घर आये और माँ यशोदासे कहने लगे—'माँ! माँ! कन्हैया तो अब बहुत ऊधमी हो गया है। यह हमारा कहना मानता ही नहीं है। हमने इससे कहा कि गुफामें बहुत बड़ा राक्षस है, तू वहाँ मत जा। फिर भी यह वहाँ गया। यह तो ठाकुरजीकी कृपा थी जो कन्हैया बच गया।'

यशोदाजीको यह सुनकर बड़ा दुःख हुआ। वे सोचने लगीं—'मेरा कन्हैया बहुत कोमल है। यह इस तरह राक्षसों के पास चला जाता है। इसे कोई राक्षस मारे तो····।' लालासे माँने कहा—'बेटा! कलसे मैं तुझे गायें चरानेके लिए नहीं भेजूंगी। तुम लोग वहाँ जाकर ऊधम मचाते हो। मैं तुझे नहीं जाने दूंगी। आज तू गुफामें क्यों गया? राक्षसको तू मार आया पर राक्षस तुझे मारता तो·····?'

लालाने कहा—'माँ! मैंने किसी राक्षसको नहीं मारा। वहाँ एक बुढ़िया माँ बैठी थी। उसने मुझे देखा तो बहुत आनन्दित हुई। उसने मुझे गोदमें लिया, माथे पर हाथ फिराया और जब वह राक्षस मुझे मारने आया, तब उस बुढ़िया माँ ने उस राक्षसको



मार दिया। मैंने तो राक्षस मारा ही नहीं। माँ ! मैं तो तेरा छोटा-सा कन्हैया हूँ न ! मुझमें इतनी शक्ति कहाँ है ? राक्षससे मैं कैसे लड़ सकता हूँ ?'

माँ-ने पूछा—'लाला ! क्या उस बुढ़िया माँ-ने राक्षसको मार दिया ?' लालाने कहा—'हाँ माँ !' तब व्रजवासियोंको यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। लालाने फिर कहा—'माँ ! उस मैयाने मुझसे कहा—"मैं बहुत समयसे यहीं रहती हूँ। मुझे कोई भोजन नहीं देता। मुझे बहुत भूख लगी है।" माँ उस दादी माँ-ने मेरी रक्षा की है। उसको भोजन करानेकी मेरी बड़ी इच्छा है।

यशोदाजीको यह जानकर बहुत अधिक आनन्द हुआ। सोचने लगीं—मेरे लाला-को बुढ़िया माँ-ने बचाया है। इसको मैं क्या दूँ ? इस समय ताजा भोजन-सामग्री कहाँसे बनाऊँ।' तब घरमें जो कुछ भी बासी भोजन था, उसे ही लेकर श्रीकृष्ण दौड़ते हुए गए। उन्होंने शीतला माँको बासी सामग्रीका भोग लगाया।

श्रीकृष्ण सभी देवोंको मान-प्रतिष्ठा देते हैं। किसीका भी वे थोड़ा-सा भी अप-मान नहीं करते। वे ऐश्वर्यको छिपाते हैं। व्रजवासियोंसे वे कहते हैं—'मैं तुम्हारा हूँ।' गोपियोंकी भी ऐसी भावना है कि कन्हैया हमारे हैं। हम जो कहें, वह लालाको करना चाहिए। हमारी कोई भूल भी हो जाय फिर भी ये हमें कैसे छोड़ देंगे ? गोपी श्रीकृष्ण-को मनाती हैं—'तुम्हें ऐसा करना उचित नहीं। घरका व्यक्ति यदि कोई भूल करे तो उसको छोड़ा नहीं जाता। थोड़ी-बहुत सजा ही उसको दी जाती है। तुम हमें सजा दे दो किन्तु हमारा त्याग न करो। महापुरुषोंका ऐसा स्वभाव होता है कि अपने आश्रितका वे कभी भी त्याग नहीं करते।'

दोषाकरोऽपि कुटिलोऽपि कलङ्कितोऽपि,
मित्रावसानसमये विहितोदयोऽपि।
चन्द्रः तथापि गिरीशः शिरसा बिभर्ति,
नात्माश्रितस्य गुणदोषविचारणास्ति ॥

एक बार चन्द्रमा शिवजीकी शरणमें आया। देवाधिदेव शङ्करने उसे मस्तकपर



धारण कर लिया। शिवजीकी शरणमें आनेके पश्चात् चन्द्रमाने बहुत उपद्रव किये। चन्द्रमाके पेटमें दर्द रहता है, उसे कलङ्क लगा है, क्षयरोगसे वह ग्रस्त है। अनेक प्रकारके पाप उसमें हैं—फिर भी शिवजीने उसे आश्रय दिया। नात्माश्रितस्य गुणदोषविचारणास्ति।

गोपी कहती है—'जो आश्रित है, उसका त्याग नहीं करना चाहिए। आश्रितका त्याग तो वध करने जैसे पापके समान है। हमसे भूल हुई है। हममें अभिमान आया और इसी कारण आप अन्तर्द्धान हो गये किन्तु नाथ! अब आप जल्दी प्रकट हो जाइये। हम सब आपको बुला रही हैं और आप इस प्रकार अन्तर्द्धान हो गये हो, यह उचित नहीं है।'

प्रभुने कहा—'मैं क्या तुम्हें बुलाने गया था?'

गोपी कहती है—'हम आपका दर्शन करती रहती हैं, इसलिए हमको ऐसा आभास होता है कि ठाकुरजी हमसेमिलनेके लिए आतुर हैं। दृशा वरद। आपने प्रत्यक्ष होकर हमें वरदान दिया था और कहा था, 'सखियों! तुम हमारी हो।' दृशा सुरत। आपकी सुन्दर आँखोंमें इतनी शक्ति है कि हमको इन आँखोंने बिना मूल्यकी दासी (दृशा अशुल्कदासिकाः) बना लिया है। हम तुमसे कुछ नहीं लेना चाहतीं। हमें वेतनकी अपेक्षा नहीं है। किसी सुखको भोगनेकी भी इच्छा नहीं है। आपने अपनी आँखोंके द्वारा ही हमें अपनी दासी बना लिया है।'

आँखें जब चार होती हैं तब मन बन्धनमें आता है। श्रीकृष्ण और गोपियोंकी जब चार आँखें हुईं तब गोपियोंका मन बँध गया। गोपियोंको अब सब कुछ तुच्छ लगता है। संसारका सुख अब उन्हें बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। 'हे नाथ! आपकी आँखोंने हमको दासी बनाया है। आपकी आँखें तो मनको चुरानेवाली हैं।'

श्रीकृष्णकी आँखें जीवमात्रका आकर्षण करनेके लिये ही तो हैं। उपनिषदोंमें ऐसा वर्णन आता है कि आँखोंके बिना भी श्रीकृष्ण सबको देख सकते हैं। उनकी आँखें जगत्को



देखनेके लिए नहीं हैं। जगत् तो उनका ही बनाया हुआ है। परमात्माको जगत्में देखने लायक कुछ लगता ही नहीं। श्रीकृष्ण अपनी आँखें बन्द रखें तब भी सबको देख सकते हैं।

ग्रन्थोंमें ऐसा लिखा है—अपाणिपादो जवनोग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः। अचक्षुः पश्यति—श्रीकृष्ण आँखोंके बिना ही देख सकते हैं, कानोंके बिना ही सुन सकते हैं, हाथ-पैरोंके बिना भी वे चल सकते हैं। जगत्को देखनेके लिये प्रभुने अपनी आँखें नहीं रखी हैं। भगवान् आँखोंके द्वारा सुन भी सकते हैं।

हमारी आँखों और ठाकुरजीकी आँखोंमें बड़ा अन्तर है। मनुष्योंकी आँखोंमें साठ पैंसठ वर्षकी अवस्था होनेपर मोतियाबिन्द उतर आता है। डाक्टरकी सेवा-पूजा भी करनी पड़ती है। डाक्टर कहता है—'अभी मोतियाबिन्द ठीक-ठीक पका नहीं। मनुष्यकी आँखों और श्रीकृष्णकी आँखोंमें बड़ा अन्तर है। आज हजारों वर्ष बीतनेके पश्चात् भी श्रीकृष्णकी आँखें बिल्कुल बिगड़ती नहीं। उनकी आँखें इतनी दिव्य हैं कि उन्हें ऐनककी दरकार नहीं होती।

भगवानकी सब लीलाएँ अलौकिक हैं। श्रीकृष्णकी आँखें जीवमात्रको अपनी ओर खींचनेके लिये हैं। जीवकी स्वाभाविक प्रवृत्ति संसारके विषयोंमें रमती है। ब्रह्माजीने एक बड़ी भूल की है कि उन्होंने इन्द्रियोंको बहिर्मुखी बनाया है। इन्द्रियाँ बाहरकी ओर देखती हैं। अन्तरमें विराजे हुए अन्तर्यामी श्रीकृष्णमें ये स्थिर रूपसे टिकती ही नहीं। थोड़ा विचार करें। आँखोंका धनी कौन है? आँखें तो गोपियाँ हैं, परमात्मा श्रीकृष्ण इनके पति हैं। आँखोंका पति दूसरा कोई हो ही नहीं सकता। कभी आप शंका करें कि महाराज! आप तो कहते हैं कि आँखोंके पति श्रीकृष्ण हैं परन्तु हमारे ध्यानमें यह बात जमती नहीं। हमें तो ऐसा लगता है कि जहाँ कोई सुन्दर रूप दिखाई देता है, वहीं आँखें चली जाती हैं। तब रूपको ही आँखोंका पति होना चाहिये। शब्द जहाँ सुनाई पड़ते हैं, वहीं कान जाते हैं। इसीलिये कानोंका पति शब्दको होना चाहिये। यथार्थमें सामान्य लोग



ऐसा ही समझते हैं किन्तु यह कल्पना ठीक नहीं है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्ध - ये पाँचों विषय, इन्द्रियोंके सच्चे पति नहीं हैं। ये तो जबर्दस्ती पति बने चले आते हैं।

आपका रोजका अनुभव है कि जब कोई अति सुन्दर रूप आँखोंको दिखाई देता है तो आपको रातको नींद नहीं आती। आखें रूपसे हट जाती हैं तब आपको नींद आती है। कानोंको जब सुन्दर शब्द सुनाई देते हैं तो भी नींद नहीं आती। मतलब यह कि ये पाँचों विषय इन्द्रियोंके पति नहीं हैं। इन्द्रियाँ जब विषयोंको छोड़ देतीं है तब अन्दर विराजे हुए चेतन परमात्मा श्रीकृष्णके साथ सो जाती हैं। इन्द्रियोंका लय संसारके विषयोंमें होता ही नहीं वरन् परमात्मामें ही होता है। यह रोजका अनुभव है। इससे सिद्ध होता है कि इन्द्रियोंके पति शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध तो हो ही नहीं सकते। परमात्मा ही इनके पति हैं। सच्चे पतिको जानती नहीं, इसीलिये इन्द्रियाँ संसारमें रमती हैं। आँखोंके पति श्रीकृष्ण हैं। प्रभुकी आँखें जीवोंको अपनी ओर खींचनेके लिए हैं। भगवान्‌का सर्वाङ्ग सुन्दर है। आँखें अति सुन्दर हैं।

शास्त्रमें ऐसा लिखा है कि काम सुन्दर नहीं है। काम कोयलेकी तरह काला है। श्रीकृष्ण तो काले नहीं हैं। वे तो श्याम हैं। काम जिसका स्पर्श करता है, वह सुन्दर हो ही नहीं सकता। आप प्रेम तो करते हैं किन्तु शान्तिसे विचार कर देखें कि सकामसे प्रेम करते हैं कि निष्कामसे ? आप सकामसे प्रेम करेंगे तो वह प्रेम आपको वासनाओंका गुलाम बना देगा। सकामसे जो प्रेम करता है, उसके मनमें काम प्रवेश करता है। जो निष्कामसे प्रेम करता है, उसका ही मन शुद्ध रहता है।

श्रीकृष्ण निष्काम हैं। श्रीकृष्णका नाम ही है 'अच्युत'। भागवतमें अनेक प्रसंगोंमें यह नाम आया है। शुकदेवजीने रासलीलाके प्रसंगोंमें भी अनेक बार इस शब्दका उच्चारण किया है—

'आत्मनि अवरुद्धसौरतः आत्मारामः अच्युतः।' श्रीकृष्ण अच्युत हैं।

जो वैष्णव विष्णुसहस्रनामका पाठ करते होंगे, वे जानते होंगे कि विष्णुसहस्रनाम पर श्रीशंकराचार्य महाराजका भाष्य है। श्रीशंकर स्वामी विष्णुसहस्रनामका पाठ करते-



करते रास्तेमें चलते थे। उनके चरित्रमें ऐसा उल्लेख है। वे श्रीकृष्णके अनन्य भक्त थे। श्रीकृष्णमें उनकी अतिशय प्रीति थी। बद्रीनारायणके मार्गमें गुप्तकाशी नामक स्थान पड़ता है। वहाँ गंगा-किनारे एक बड़ा पेड़ है। वहाँके ब्राह्मण कहते हैं कि श्रीशंकराचार्य स्वामीने उस स्थानपर बैठकर विष्णुसहस्रनामपर भाष्य लिखा था। यह उनका पहला ग्रन्थ था। उस भाष्यमें श्रीशंकराचार्य स्वामी कहते हैं कि विष्णुसहस्रनामका बार-बार जप करो—

गेयं गीतानामसहस्रं, ध्येयं श्रीपतिरूपमजस्रम्।
नेयं सज्जनसंगे चित्तं, देयं दीनजनाय च वित्तम्॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं, गोविन्दं भज मूढमते॥

इस भाष्यमें 'अच्युत' शब्दका अर्थ किया गया है— न च्यवते नापि च्यविष्यते इति अच्युतः। काम जिनका स्पर्श करता है, वे ही अपने स्वरूपसे नीचे गिर जाते हैं। काम पतन करता है। जो कामके स्पर्शका अनुभव करते हैं, वे च्युत हैं। शास्त्रमें तो ऐसा लिखा है कि काम-सुखका कभी भी भोग न करे। फिर भी जिसके मनमें काम आवे, आँखोंमें काम आवे, वह जीव च्युत होता है, उसका पतन होता है। काम जिस क्षण हृदयका स्पर्श करता है, उसी क्षण शक्तिका नाश हो जाता है। कामका जहाँ स्पर्श है, वहाँ सौन्दर्य नहीं है। सौन्दर्यवान् तो वह है, जिसका स्पर्श काम नहीं करता।

आँखोंके पति श्रीकृष्ण हैं। आँखोंका विवाह परमात्मासे करो। लोग मन्दिरमें एक-दो बार प्रभुका दर्शन करनेके पश्चात् यह सोचकर सन्तुष्ट होते हैं कि पड़ोसके लोग तो दर्शन करने बिल्कुल जाते ही नहीं। मैं तो मन्दिरमें दो बार दर्शन करने जाता हूँ। भगवान् तब विचारते हैं—'अरे! तुझे भान ही नहीं है। तू तो मेरे दर्शनोंके लिये दो बार आता है, किन्तु क्या तुझे खबर है कि मैं तो चौबीसों घन्टे तेरा ही दर्शन करता रहता हूँ।' ईश्वर जीवको चौबीसों घण्टे देखता है।

आँखें तो दीपक हैं। आप आँखरूपी दीपकके प्रकाशमें किसे देखते हैं? क्या आप श्रीकृष्णको देखते हैं? आप अपनी आँखें किसे देते हैं? आप जगत्को अपनी आँखें किस



भावसे सौंपते हैं ? भक्तिमार्गमें आंखें ही मुख्य हैं । आंखोंके सुधरनेके पश्चात् ही भक्तिका ठीक-ठीक आरम्भ होता है । जिनको स्त्रीमें सौन्दर्य दिखाई देता है व जिन्हें पुरुषोंमें सौन्दर्य दिखाई देता है, वे भगवान्‌की भक्ति क्या करेंगे ? अरे, ऐसे लोग तो संसारकी ही भक्ति करते हैं ।

आप अपने मनको बार-बार समझाइये कि श्रीकृष्णकी आंखें अति सुन्दर हैं । इतनी सुन्दर कि उनका वर्णन शब्दोंसे वास्तविक रूपमें नहीं हो सकता । घरमें ठाकुरजीका सुन्दर श्रृंगार कीजिये और भगवान्‌की आंखोंसे अपनी आंखें मिलाकर अष्टाक्षर महामन्त्रका जप कीजिये । भगवान्‌से विनती कीजिये कि 'मुझे आप दृष्टि दें ।' टकटकी लगाकर भगवान्‌के दर्शन कीजिये । प्रभुके स्वरूपको हृदयमें उतारिए । बादमें आंखें बन्दकर, 'अपने हृदय-कमलमें ही प्रभु विराजे हैं,' ऐसी भावना रखकर परमात्माका ध्यान करो । जीवमात्रकी प्रवृत्ति संसारके विषयोंमें ही है । ये विषय इस जीवको भटकाते हैं, दुःख देते हैं, फिर भी ये इस जीवको मीठे लगते हैं । इसका मोह छूटता ही नहीं ।

भगवान् किसी समय प्रेम-भरी दृष्टिसे जीवको आकर्षित करते हैं और किसी समय मानवके जीवनमें दुःखके प्रसंग जब सामने आते हैं, तब भगवान् उसे अपनी ओर खींचते हैं । जीवके कल्याणके लिए ही भगवान् जीवके सामने दुःखोंको खड़ा करते हैं । कितने ही लोग ऐसा समझते हैं कि 'मैं वैष्णव हूं, सेवा करता हूं, प्रभु-स्मरण करता हूं, गरीबका सम्मान करता हूं । इसीलिए किसी दिन मुझे ज्वर नहीं आता, मेरा शरीर अस्वस्थ नहीं होता और कोई दुःख मेरे सामने नहीं आता ।'

यह जीव जगत्‌में आया है । वह पाप और पुण्य—दोनोंको ही लेकर आया है । शान्तिसे विचार करें तो ध्यानमें आवेगा कि भगवान् जिनके घर प्रकट हुए, उन वसुदेव-देवकीका जीवन कितना दुःखमय रहा । उनको कितने ही दुःख सहन करने पड़े फिर भी उन दुःखोंमें भी उनका प्रभुमें दृढ़ विश्वास रहा । उनके दुःखोंकी तुलनामें हमारे जीवनमें तो कोई दुःख हैं ही नहीं । प्रभु बहुत दयालु हैं । हमारे जितने पाप हैं, उतनी सजा वे हमें देते



नहीं। वे तो हमें सुधरनेके लिए ही थोड़ी सजा देते हैं। इस जीवको जबतक वे सजा नहीं देते, तबतक इसका जीवन सुधरता नहीं। क्या पुस्तकें पढ़नेसे जीवन सुधरता है? आजकल ज्ञान तो बहुत बढ़ गया है। हाई स्कूलों और कालेजोंमें खूब पढ़ाई होती है किन्तु पढ़नेवालों-का जीवन सुधर रहा हो, ऐसा दिखाई नहीं देता।

साधारण मानव ज्ञानसे नहीं सुधरता। जब इसपर मार पड़ती है, तभी वह सुधरता है। अनेक बार ऐसा होता है कि अति दुःखमें शान्तिसे बैठकर परमात्माका स्मरण किया जाय तो मानवकी बुद्धि में ज्ञानका स्फुरण होता है। ऐसा स्फुरण अनेक ग्रन्थोंके पढ़नेसे भी नहीं होता। दुःखमें ज्ञान आता है। साधारण मानवको अत्यन्त सुखमें ज्ञानकी प्रतीति होती ही नहीं। बहुत सुख मिले, यह अच्छी बात नहीं है। कितने ही लोग ऐसा सोचते हैं कि 'मैं सब तरहसे सुखी होऊँ। भगवान् मुझे पूर्ण अनुकूलता दें तो बादमें मैं ठाकुरजीकी सेवा घरमें पधराऊँ और भक्ति करूँ। घरमें जबतक अड़चनें आयेंगी तबतक भक्ति कैसे होगी?'

अरे, संसारमें जो आया है, उसके सामने रोज कोई-न-कोई अड़चन तो रहेगी ही। संसार-समुद्रमें तरंगोंकी तरह प्रतिकूल प्रसंग तो नित्य आयेंगे। किसीकी समुद्र-स्नानकी इच्छा हो और वह विचार करे कि जलके शान्त होनेपर मैं समुद्रमें स्नान करूँगा तो यह असम्भव बात ही मानी जाएगी। समुद्र किसी दिन शान्त होनेवाला नहीं है। जीवनमें एक अड़चन दूर होगी तो दूसरी आकर खड़ी हो जायगी। दोनों अड़चनें हट जायेंगी तो तीसरी अड़चन आ जाएगी।

आपके जीवनमें ऐसे प्रसंग आयेंगे—जिस मनुष्यसे आप अत्यन्त प्रेम करते हैं, जिस जीवमें आप अत्यन्त विश्वास करते हैं, वही किसी दिन आपसे आँखें फेर लेगा। प्रारब्धके हिसाबसे जीवका स्वभाव भी बदल जाता है। आपका और उसका लेनदेनका सम्बन्ध पूरा होनेके पश्चात् वह जो कुछ करेगा, वह आपको अच्छा नहीं लगेगा। उसके प्रति आपकी अरुचि हो जायगी। जिसके बारेमें आप बहुत आशावान् रहे कि 'यह जीव मेरे



उपयोगमें आयेगा, यह मेरा काम करेगा, मेरे साथ रहेगा, मेरे बारेमें अच्छा ही अच्छा बोलेगा'—ऐसा वह आपका स्नेही, किसी सामान्य कारणसे ही आपका शत्रु जैसा हो जायेगा। शास्त्रोंमें लिखा है कि जो मित्र नहीं है, वह शत्रु हो जाय तो कोई बात नहीं किन्तु मित्र ही यदि शत्रु बन जाय तो वह बहुत दुःख देता है।

दुःखसे पापका नाश होता है, साथ ही यह निश्चय हो जाता है कि 'इस संसारके सभी जीव स्वार्थी हैं। आजतक अनेक लोगोंके लिए मैंने शरीरको घिसा, उन्हें प्रसन्न रखनेकी चेष्टा की किन्तु जब मुझपर दुःख आया तब किसीने मेरी ओर देखा तक नहीं।' अनेक बार तो कृपा करके भगवान् ही दुःख देते हैं। दुःखको प्रभुका प्रसाद ही मानना चाहिए। दुःखमें सावधान रहना चाहिए कि कहीं प्रभुमें कुभाव न हो जाय, मन न बिगड़ जाय। साधारण मनुष्यके हृदयमें दुःखकी अवस्थामें श्रीकृष्णके प्रति अनेक बार कुभाव आ जाता है। वह सोचता है -'प्रभुने यह क्या किया ?' इस प्रकार प्रभुके प्रति अविश्वास आनेपर भक्तिका नाश हो जाता है। कुछ भी हो, ऐसे दुःखके प्रसंगमें भी भगवान्में दृढ़ विश्वास रखो।

गोपियोंका विश्वास तो हिमालय जैसा अविचल है, वे मानती हैं—'जो होना हो सो हो जाय, श्रीकृष्ण हमारे हैं। श्रीकृष्ण भले ही हमें वियोगका दुःख दें किन्तु उनकी हमपर बड़ी कृपा है।'

यह साधारण नियम है कि दास्यभावमें दैन्यका उदय होता है। दास्य भावकी भक्ति होती है, तब दैन्य जल्दी आता है किन्तु गोपियोंका तो मधुर भाव है और माँ यशोदाका वात्सल्य भाव है। श्रीकृष्णकी सेवा करते-करते माँ यशोदाके हृदयमें दैन्य भाव आता है। अरे ! किसी समय तो माँ लालाको धमकाती है। भागवतमें ऐसा वर्णन आता है कि यशोदा माँ जब धमकाती हैं तब श्रीकृष्णमें दैन्यभाव आता है। दीनदयालु दीनानाथ स्वयं दीन बन जाते हैं। यशोदा माँका प्रेमभाव—वात्सल्यभाव ऐसा है जिन्हें सारा जगत् मानता है, जो जगत्के स्वामी हैं, उन्हें माँ धमकाती है और तब लालाको डर लगता है।



एक बार लालाने मिट्टी खाई तब दाऊजीने माँ यशोदासे कह दिया। माँको बहुत दुःख हुआ। वे कहने लगीं—'कन्हैया मक्खन खाय तब तो ठीक है किन्तु इस तरह मिट्टी खाता रहा और इसके पेटमें रोग हो गया तो।' माँको खूब गुस्सा आया और वे लालाको धमकाने लगीं-'तू अब मिट्टी भी खाने लग गया। तुझे कुछ होश नहीं है। आज मैं तुझे सजा दूंगी।' माँने हाथमें छड़ी ले ली। शुकदेवजी महाराजकी वाणी भी इस कथाको कहते-कहते रुक गई। वे तो दर्शन करते-करते कथा कहते हैं। कथा कैसी अद्भुत है। जो कालके भी काल हैं, काल जिनसे डरता है, उन्हें माँ यशोदा धमका रही हैं—'लाला! मैं तुझे पीटूंगी। तुझे सजा दूंगी। तूने मिट्टी कैसे खायी ?'

तब कन्हैया इतने अधिक घबराये कि उनकी आँखोंसे आँसू टपकने लगे। माँसे उन्होंने कहा—'माँ! मैं ठीक कह रहा हूँ, मैंने मिट्टी नहीं खायी।' लालाको अब माँसे डर लग रहा है—

भीष्माद्वातः पवते भीष्मादुरेति सूर्यः।
भीष्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पंचमः॥

सूर्य जिनके भयसे प्रकाश करते हैं, वायु जिनके भयसे बहती है, मृत्यु जिनके भयसे भाग-दौड़ करती है, वे स्वयं परमात्मा यशोदा माँके आगे थर-थर काँप रहे हैं।

जितना आनन्द प्रभुने व्रजवासियोंको दिया है, उतना आनन्द वैकुण्ठमें भी कहाँ किसको दिया है ? व्रजमें ऐश्वर्य गौण है और प्रेम प्रधान है। 'कन्हैया मेरा बालक है। यह मिट्टी खायेगा तो मुझे इसे शिक्षा देनी ही होगी।' माँ यशोदाको कन्हैयाकी बड़ी चिन्ता है। वैसे वात्सल्य भावमें कभी भी दैन्य नहीं आता किन्तु कभी ऐसा भी होता है कि ठाकुरजी प्रत्यक्ष रूपसे दैन्य प्रकट कर रहे होते हैं।

सख्यभावमें भी दैन्य नहीं आता। सख्यभावमें तो मित्रोंके साथ समान स्नेह-भाव है। ग्वाल-बाल तो लालाके साथ झगड़ा भी करते हैं—'कन्हैया तेरी गायें हमारे खेतमें आती



हैं और बहुत नुकसान करती हैं। तू अपनी गायोंको यहाँ से ले जा।' लालासे बालक ऐसा भी कहते हैं।

गोपियोंका तो मधुर भाव है। वात्सल्यभाव और सख्यभावकी तरह मधुर भावमें भी जल्दी दैन्य नहीं आता। गोपियोंके चरणोंका आश्रय लीजिये। गोपियोंके नेत्रोंके साथ नेत्र तथा उनके मनके साथ मन मिलायेंगे तो गोपी-हृदयका मधुर भाव आपके हृदयमें भी आ जायेगा।

संसारके लोग विषयोंका भोग करते हैं। यह देखकर यह जीव अधिकतर ऐसा सोचता है कि 'धनी लोग कैसा सुख भोग रहे हैं?' ये धनी लोग जैसा सुख भोग रहे हैं, वैसे सुखका भोग तो पशु-पक्षी भी करते हैं। ऐसा सुख तो आपने अनेक जन्मोंमें भोगा है किन्तु आपको शान्ति कहाँ मिली? किसी धनी या किसी विलासी गृहस्थको अपनी आँखोंके आगे आदर्शके रूपमें मत रखिये किन्तु विरक्त साधुओं तथा विरक्ता गोपियोंका आदर्श हमेशा अपनी आँखोंके सामने रखिये। गोपियोंमें परिपूर्ण वैराग्य है और इसीलिये उन्हें सारा जगत् तुच्छ लगता है। श्रीकृष्णसे जो प्रेम करता है, वह उन्हें विशुद्ध प्रेमभावकी तरंगमें बहकर 'चोर' भी कह सकता है। 'नाथ! आपने हमारे सर्वस्वको चुका लिया है'—

अपहरित मनो मे कोप्ययं कृष्णचौरः
प्रणतदुरितचौरः पूतनाप्राणचौरः।
वलयवसनचौरः बालगोपाङ्गनानाम्
नयनहृदयचौरः पश्यतां सज्जनानाम्॥

वेद भी भगवान्की स्तुति करते-करते कहते हैं—तस्कराणां पतये नमः। आप चोरोंके सरदार हैं। वैसे ही गोपियाँ भी चाहे जो कुछ कहें किन्तु जब आपके हृदयमें गोप-भाव स्थिर रूपसे आ जाय, तभी आप गोपियोंकी तरह बोलेंगे तो चलेगा किन्तु कोई साधारण मनुष्य लालाको 'माखनचोर' कहे तो कन्हैयाको बुरा लगेगा। वे कहेंगे—'मैं चोर नहीं हूँ। तू चोर है, तेरा बाप चोर है, तेरा दादा चोर है। घरमें किस तरहसे कौड़ी-कौड़ी



जमा करके तूने बँगले बनाये हैं, वह सब मैं जानता हूँ तू कैसा है, वह सब मैं जानता हूँ। चोर तो तू है, मैं तो मालिक हूँ।'

जगत्‌में जो कुछ है, उसके मालिक श्रीकृष्ण हैं। 'श्रीकृष्ण चोर हैं' ऐसा कहनेका अधिकार तो गोपियोंको ही है। हमें ऐसा नहीं बोलना चाहिये। गोपियाँ भगवान्‌से कहती हैं—'आपकी आँखें भी चोरी करती हैं। प्रणतदुरितचौरः—जो आपकी वन्दना करता है, उसके पापोंको भी आप चुरा लेते हैं। पूतनाप्राणचौरः—पूतनाके प्राणोंकी चोरी भी आपने ही की है। वलयवसनचौरः बालगोपाङ्गनानाम्—वासनारूपी वस्त्रोंकी चोरी करके हमें निर्वसना बनाया है। नयनहृदयचौरः पश्यतां सज्जनानाम्—आपके जो दर्शन करता है, उसकी आँखों और मनकी चोरी आप करते हो। सत्पुरुष बार-बार आपके दर्शन करते हैं और आप उनके मनको अपनी ओर खींच लेते हो। नाथ! आप आँखोंसे चोरी कर लेते हो। आप चोरी करते हो, इसमें तो कोई आश्चर्य है ही नहीं, आपकी तो आँखें भी चोरी करती हैं।'

लालाने पूछा—'मेरी आँखें किस तरह चोरी करती हैं?' तब गोपियोंने लालाकी आँखोंका वर्णन किया—'आपकी आँखें कैसी हैं! शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदर-श्रीमुषा दृशा—शरद् ऋतुमें सरोवरमें प्रकट हुए अति सुन्दर कमलकी शोभाको चुराने-वाली आपकी आँखें हैं।'

ठाकुरजीके प्रत्येक अंगको कमलसे उपमा दी जाती है जैसे चरणकमल, करकमल, मुखकमल, नेत्रकमल, नाभिकमल इत्यादि। कमल अत्यन्त शीतल पात्र है।

'चोर भी चोरी करता है तो थोड़ा सावधान रहता है। किसी साधुके यहाँ वह चोरी नहीं करता, पुण्यतीर्थमें वह चोरी नहीं करता किन्तु आपकी आखें तो साधुओंके यहाँ, पुण्यतीर्थमें तथा पवित्रकालमें भी चोरी करतीं हैं। शरदुदाशये—शरद् ऋतुमें कार्तिक मास आता है। यह बहुत पवित्र मास है। आपकी आँखें तो कार्तिक मासमें अर्थात् ऐसे



पवित्र समयमें भी चोरी करती हैं। अधिक क्या, साधु जैसे कमलकी शोभाको भी ये आँखें चुरा लेती हैं।'

कमल साधु है। साधु वह है जो दूसरोंको सुख देता है। सुख भोगनेके लिये जो तैयार रहता है, वह सन्त नहीं है। कमल दूसरोंको सुगन्ध देता है, स्वयं कभी सुगन्ध ग्रहण नहीं करता। सरोवर में प्रकट हुए कमलकी शोभा दिव्य होती है। श्री अर्थात् शोभा। श्रीमुषा दृशा—कितने ही टीकाकारोंने 'श्री' शब्दका अर्थ 'लक्ष्मीजी' किया है।

'लक्ष्मीजीकी भी चोरी आपने की है, साथ ही लक्ष्मीजीके अलौकिक सौन्दर्यकी भी चोरी आपने की है। जगत्‌में जितना भी सौन्दर्य है, वह सब श्रीलक्ष्मीजीके सौन्दर्यका एक अल्प अंश ही है। श्रीलक्ष्मीजी अति सुन्दर हैं। इन लक्ष्मीजी तथा इनकी श्री अर्थात् इनके अलौकिक सौन्दर्य को, इनकी शोभाको चुरानेवाली आपकी आँखें हैं।

आपने आँखोंके द्वारा ही हमें बुलाया, आँखोंके द्वारा ही आपने हमें वरदान दिया। इन आँखोंके द्वारा ही आपने हमें अपनी दासी बनाया। भगवान्! हम आपके लिए सब कुछ छोड़कर आईं हैं और अब आप हमारा त्याग करके अन्तर्द्धान हो गए हो, यह उचित नहीं है। नाथ! ऐसा मत करो। आप तो दयालु हो। दयित दृश्यताम्—दयामय! दर्शन दो!

श्रीधर स्वामीने लिखा है कि गोपीगीतके उन्नीसों श्लोकोंके अर्थात् गोपीगीतके प्रत्येक श्लोकके साथ 'दयित दृश्यताम्' शब्द जोड़ने चाहिए।

गोपियाँ कहती हैं– हमें दर्शन दो। हम आपके लिए ही जी रही हैं। आपका वियोग हमसे सहन होता नहीं और अब आप हमें वियोगमें मारोगे तो हमें मारनेका पाप आपको लगेगा। नेह किं वधः। जिन श्रीकृष्णकी सेवा और उनके स्मरणमात्रसे पाप दूर हो जाते हैं, उन स्वयं श्रीकृष्णसे गोपियाँ कहती हैं—'आपको पाप लगेगा।' गोपियाँ ही लालासे ऐसा कह सकती हैं। हमें ऐसा नहीं कहना चाहिए।



पूज्य डोंगरेजी महाराजका

गोपी कहती है—'जो चोरी करता है, उसे दूसरोंकी हिंसा करनेमें भी क्या संकोच होगा ? इह दयावधः किं न वधः ? आप अपनी आँखोंसे हमारा वध कर रहे हो । अब हम न घरकी रहीं न संसारकी । हम आपके लिये सब कुछ छोड़कर आयीं हैं और अब आप हमारा त्याग कर रहे हैं । यह आपको शोभा नहीं देता ।'

आज श्रीकृष्णके वियोगमें गोपियाँ बहुत दुःखी हैं । उनका वियोग इन गोपियोंसे सहन नहीं हो रहा है । श्रीकृष्ण-दर्शनके लिये उनके प्राण तरस रहे हैं । उनका हृदय बहुत जल रहा है । शास्त्रमें लिखा है कि श्रीकृष्णका वियोग ही अग्नि है और वह वियोग-की अग्नि जब हृदयको जलाती है, गलाती है तब हृदय शुद्ध होता है । स्वर्णकी शुद्धि अग्निमें होती है । सोनेका कोई भी शक्ल देनी हो तो पहले उसे अग्निमें तपाना पड़ता है । उसी प्रकार प्रभुके दर्शन और मिलनसे पहले परमात्माके विरहकी अग्निमें हृदयको तपाकर शुद्ध करना पड़ता है ।

जिनको संयोगमें सुख मिलता है, उन्हें वियोगका दुःख भी सहना पड़ता है ऐसा नियम है । आपको सुख कहाँसे मिलता है ? जिनको पैसेमें, स्त्रीमें, कपड़ोंमें सुख मिलता है, वे इन सबके वियोगमें तड़पेंगे भी । संसारके किसी भी विषयमें जिनको सुखका भास होता है, वे सच्चे वैष्णव नहीं हैं । वैष्णव वे हैं जो श्रीकृष्णकी सेवामें, उनके स्मरणमें सुख प्राप्त करते हैं । श्रीकृष्णकी सेवा और उनके स्मरणमें सुख मिलेगा तभी तो श्रीकृष्णका वियोग हृदयको जलायेगा ।

गोपियोंका शुद्ध, मधुर प्रेमभाव है । इस भावको कितने ही आचार्य श्रृंगार कहते हैं किन्तु 'श्रृंगार' शब्द सन्तोंको बहुत रुचता नहीं । यह शब्द लौकिक श्रृंगारके लिये भी व्यवहारमें आता है । गोपियोंका श्रृंगार—उनका काम-भाव, काम नहीं हैं । यह तो निष्काम प्रेम है । गोपियोंके प्रेमको 'काम' कहकर पुकारा जाय, यह ठीक नहीं है । किसी स्त्री या पुरुषमें वासना हो तो उसे काम कहा जाता है । गोपियोंका भाव तो पुरुषोत्तम श्रीकृष्णमें है, इसलिए इसे 'काम' नहीं कहना चाहिए ।



कितने ही आचार्योंने अपनी टीकाओंमें भेदोंका उल्लेख किया है । लौकिक श्रृंगार एवं अलौकिक श्रृंगारको उन्होंने अलग-अलग माना है किन्तु कितने ही दूसरे आचार्योंने लिखा है कि गोपियोंके श्रृंगारको, उनके प्रेमको 'काम' शब्दसे सम्बोधित किया जाय, यह ठीक नहीं है । प्रेमैव गोपरामाणां काममित्यगमत् प्रथाम् । कुछ लोगोंने गोपियोंके प्रेमको 'काम' कहकर थोड़ी गड़बड़ की है । गोपियाँ तो वास्तवमें निष्काम हैं । वे परमात्मा यानी निष्काम श्रीकृष्णसे प्रेम करती हैं । सकामसे वे प्रेम करती ही नहीं ।

गोपियोंको आज श्रीकृष्णके वियोगमें बहुत दुःख हो रहा है । प्रभुके स्मरणमें वे तन्मय हो गयीं हैं । प्रेमका एक लक्षण है । आपको जब निराशा होती है, तब आपका मन कहाँ जाता है ? निवृत्ति के समय आप क्या करते हैं ? कितने ही लोग तो ऐसे होते हैं कि जहाँ थोड़ा भी निवृत्तिका अनुभव हुआ कि वे जगत्की बहुत अधिक चर्चा करने लगते हैं । निवृत्तिके समय यदि कोई जगत्का चिन्तन करे तो समझना चाहिये कि इसका प्रेम जगत्में ही है और यदि वह परमात्माका चिन्तन करे तो मानना चाहिए उसका परमात्मासे प्रेम है ।

गोपियाँ श्रीकृष्णके वियोगमें व्याकुल हैं । अतिशय व्याकुलतामें एक गोपीके हृदयमें क्रोधका भाव आ गया तथा उसने भगवान्को दोष लगाया कि 'आप चोरी करते हो । आप हमारा वध कर रहे हो ।' परन्तु इतना बोलनेके पश्चात् तुरन्त उसे बड़ा दुःख हुआ कि 'मैं ठाकुरजीसे बातें कर रही हूँ, साथ ही इस रीतिसे दोष भी लगा रही हूँ, यह तो मेरे लिए उचित नहीं है । इस तरह दोष लगाना तो बिल्कुल उचित नहीं है ।'

गोपी परमात्माके उपकारका स्मरण करती है । वह विचारती है—'कृष्ण ! आपके हमारे ऊपर बहुत उपकार हैं । आपने आज तक हमारी अनेक बार रक्षा की है—

विषजलाप्ययात् व्यालराक्षसात् वर्षमारुताद् वैद्युतानलात् ।
वृषमयात्मजात् विश्वतोभयात् ऋषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ॥३॥

—'हे श्रेष्ठतम् ! नागके द्वारा दूषित जहरीले पानीसे, अघासुरसे, वर्षा-तूफानसे,



बिजली तथा दावाग्निसे, वृषभासुरसे तथा और दूसरे सब प्रकारके भयोंसे आपने बार-बार हमारी रक्षा की है।'

इस श्लोकमें ठाकुरजीको गोपियोंने 'ऋषभ' संबोधन दिया है। ऋषभका अर्थ है श्रेष्ठ। गोपी कहती है—'आप सर्वसद्‌गुणसम्पन्न हैं। आप सबसे श्रेष्ठ हैं। जब-जब व्रजपर कोई विपत्ति आयी, तब-तब आपने ही हमारी रक्षा की है।'

इस श्लोकका आरम्भ 'विष' शब्दसे हुआ है। संसारमें जो आता है, उसे पहले तो विष ही मिलता है। अधिक क्या कहें ? भगवान् श्रीकृष्ण जब जगत्‌में पधारे तब भी पूतनाने पहले उन्हें जहर ही दिया। माखन-मिश्री तो उन्हें बादमें मिली है। आरम्भ तो विषसे ही हुआ। भागवतमें अनेक स्तुतियाँ आती हैं तथा उन स्तुतियोंके प्रकरणमें जहाँ-जहाँ प्रभुके उपकारका स्मरण आता है वहाँ आरम्भ 'विष' शब्दसे ही हुआ है। कुन्तीजी स्तुति करती हैं, तब वे भी कहती हैं—'भीमको जब जहर दिया गया, तब आपने ही रक्षा की थी—विषान्महाग्नेः पुरुषाददर्शनात्।'

'कालियनागके जहरसे यमुनाजीका जल बिगड़ गया था तथा उस विषमय जलके पीनेसे व्रजवासी जन, गायें, बछड़े इत्यादि प्राणहीन हो गये थे तब आपने कृपादृष्टिसे सभीको प्राण-दान दिया था।'

कालियनाग कौन है ? कालियनागका विष क्या है ? श्रीमहाप्रभुजीकी एक कारिका है—कालियः इन्द्रियाण्याहुः विषयास्तद्विषं स्मृतम्। इन्द्रियाँ ही कालियनाग हैं और उनके फणोंमें जो जहर है, वह विषयासक्ति है। इन्द्रियों और विषयोंका सम्बन्ध होनेके पश्चात् विषयोंमें आसक्ति हो जाती है तथा विषय सुख देनेवाले हैं, ऐसी कल्पना ही विषका रूप ले लेती है।

साधकके लिये विषयासक्ति ही मरण है। कितने ही लोगोंको ठाकुरजीकी सेवा करते-करते, माला फेरते-फेरते, 'गर्म पानी, की याद आ जाती है। चाय पीनेकी आदत हो और प्रातःकाल ही चाय न मिले तो बादमें हर घड़ी चायकी याद आ जाती है। कितनोंको



सेवा करते-करते सुंघनीकी याद आ जाती है। कितनी ही माताएँ मन्दिरमें भी सुंघनीकी डिबिया साथ ले जाती हैं तथा बड़ी उदारतापूर्वक पास बैठी हुई किसी बहिनको भी सुंघनी देती हैं यह कहकर कि 'ले लो! इससे सर्दीका असर खत्म हो जायेगा।' अरे! नाकमें सुंघनी डालनेके बाद छींकना और खखारना भी तो पड़ता है। तुम ठाकुरजीके सम्मुख बैठे हो, यह बात कैसे भूल जाते हो? प्रभुको थोड़ा भी कष्ट पहुँचे, ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिये। शास्त्रमें लिखा है कि तम्बाकूमें कलियुग बैठा है। संसारके किसी भी जड़ पदार्थमें आसक्तिका होना वैष्णवके लिये मृत्यु जैसा है। श्रीकृष्णके अतिरिक्त किसी भी विषयमें आसक्ति रहती है तो पतन होता है।

कालियनाग जबसे यमुनाजीमें आया तबसे उसने यमुनाजीके जलको भी दूषित कर दिया था। श्रीयमुनाजीका स्वरूप भक्ति महारानीका ही स्वरूप है। भक्तिमार्गमें विलासी लोग आते हैं तो भक्ति-मार्गको छिन्न-भिन्न कर डालते हैं। भक्तिमार्गकी स्थापना करनेके लिये जितने भी आचार्य जगत्‌में आये हैं, उन सभीमें वैराग्य, ज्ञान तथा भक्ति परिपूर्ण रूपसे रही है तथा इसी कारण वे भक्ति सम्प्रदायोंकी स्थापना कर सके हैं। बादमें लोग भक्तिके लक्ष्यसे भटक गये यानी लक्ष्यको वे भूल गये। भक्तिका अर्थ है भगवान्‌में अनुरागका होना। धीरे-धीरे ऐसा हुआ कि शरीर तथा इन्द्रियोंके सुखसे अनुराग होने लगा। शरीरका सुख—इन्द्रियोंका सुख जिन्हें बहुत मीठा लगता है, वे ठीक प्रकारसे भक्ति कर ही नहीं सकते।

कितने ही लोग तो भक्तिका बहाना करके इन्द्रियोंको लाड़ लड़ाते हैं। श्रीगोकुलनाथजीका दर्शन करने आप मन्दिरमें जाते हैं। वहाँ कोई भी स्त्री जाय अथवा पुरुष जाय, उसे दूसरोंका चेहरा देखनेकी क्या जरूरत है? आँखोंमें कालियनागका जहर इतना भर गया है कि आँखें श्रीकृष्णका दर्शन करने के लिये बहुत आतुर नहीं हैं, हाँ, वे संसारके विषयोंकी ओर अवश्य दौड़ती हैं।



पूज्य डोंगरेजी महाराजका

श्रीकृष्णको छोड़कर किसी भी मनुष्यकी ओर आँखें आसक्तिपूर्वक जाती हैं तो मान लीजिये कि आँखोंमें कालियनागका जहर है। श्रीकृष्ण-कथाके अतिरिक्त कुछ और सुननेमें यदि आपको रस मिलता है तो मान लेना कि कानोंमें कालियनागका जहर है। अनेक बार ऐसा होता है कि कोई अनजान व्यक्ति भी बातें कर रहा हो तो लोग झट कान देकर उसकी बातें सुनने लगते हैं। अरे ! आपको वह सब सुननेकी क्या आवश्यकता है ? आप तो कथा सुननेके लिये आये हैं, भगवान्‌के लिये आए हैं।

इन्द्रियोंका विषयोंसे सयोग हो जाय, उनमें इन्द्रियोंकी आसक्ति हो जाय तो वह आसक्ति, जहर ही होती है तथा वासनारूपी उस जहरसे भगवान् रक्षा करते हैं। भगवान्‌ने बार-बार कहा है—"मेरी इन्द्रियोंमें वासना-रूपी विष आता ही नहीं ' एक-एक इन्द्रियका सम्बन्ध आप प्रभुसे जोड़ेंगे तो भक्तिमें आनन्द आवेगा।

गोपी कहती है—'कालियनागसे आपने हमारी रक्षा की है'—विषजलाप्ययात् व्यालराक्षसात्—व्यालराक्षस अर्थात् अजगरके रूपमें आये हुए राक्षस अघासुरसे आपने हमारी रक्षा की है। अघासुर—अघ+ असु+ र। 'अघ' अर्थात् पाप, 'असु' अर्थात् प्राण तथा 'र' अर्थात् रमना। जिनका मन पापमें रमता है, पाप करनेमें जिन्हें सुखका भास होता है, उन्हें अघासुर कहते हैं।

इन्द्रियोंके विषय दुःख देते हैं, फिर भी मनुष्यकी उन्हें छोड़नेकी इच्छा नहीं होती। उन विषयोंमें उसे सुखकी प्रतीति होती है। भगवान्‌से रोज प्रार्थना करो। गोपीगीतमें की ऐसी प्रार्थना के श्लोक जीवमात्रके लिये उपयोगी हैं। भगवान्‌से कहो—'मुझे पाप करनेकी कुटेवसे बचाइये। पापोंसे मुझे छुड़ाइये।'

एकान्तमें अपने ठाकुरजीके सामने पापोंको कबूल कीजिए। मनुष्य यदि पापोंको कबूल नहीं करता तो भगवान् इसको महापाप जैसा गिनते हैं। पाप पहले आँखोंमें आता हैं। बादमें मन और वाणीमें आता है तथा अन्तमें व्यवहारमें या वर्तनमें आता है। एक



बार आनेके बाद यह घर कर लेता है। हृदय-सिंहासन तो परमात्माके लिये है। वहाँ पापके लिये कोई जगह नहीं होती।

गोपी आगे कहती है—'राजा इन्द्रको यह विचारकर क्रोध आया कि ये व्रजवासी मेरी पूजा नहीं करते किन्तु श्रीकृष्णकी पूजा करते हैं। अतः इनके ऊपर मूसलाधार वर्षा वा अतिवृष्टि की जाय, तब ये अपने आप ही हमारी पूजा-आराधना करेंगे।'

भक्तिमें जो-जो विघ्न आते हैं, भगवान् उनका विनाश करते हैं। भक्तिमें इन्द्रियां तथा संसारके विषय ही विघ्न उपस्थित करते हैं। इतना ही नहीं, कभी-कभी तो स्वर्गके देव भी बाधा उत्पन्न कर देते हैं। इसीलिए उपनिषद्के आरम्भमें शान्ति पाठ करना पड़ता है—

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

सब देवोंकी वन्दना करके प्रार्थना की जाती है कि 'हमारे ध्यान, भक्ति और सत्संगमें कभी भी कोई विघ्न न आये।'

कोई जीव बहुत अधिक भक्ति करता है तो स्वर्गके देवताओंको भी अच्छा नहीं लगता। वे ऐसा मानते हैं कि 'यह जीव बहुत भक्ति करेगा तो हमारे सिरपर पैर रख-कर प्रभुके धाममें जायगा।' आपमें-से यदि कोई सामान्य मनुष्य, बहुत कमाई करके बहुत बड़ा बँगला खड़ा कर ले तो आपका हृदय शीतल होता है या जलता है?

इन्द्रके हृदयमें भी मत्सर आता है। गोवर्द्धन-लीलामें राजा इन्द्रने विघ्न डाला। ज्ञान और भक्तिको जो बढ़ाते हैं, उनका नाम है गोवर्द्धन। ज्ञान और भक्तिको बढ़ानेवाली लीला ही गोवर्द्धन लीला है। ज्ञान और भक्तिको बढ़ानेका प्रयत्न यदि कोई करता है



तब राजा इन्द्र वासनाओंकी वर्षा करने लगते हैं। एक-एक इन्द्रियके अधिष्ठाता देव हैं। कोई बहुत भक्ति करता है तो इन्द्रादि देवोंको अच्छा नहीं लगता।

इन्द्र कोई साधारण जीव तो नहीं हैं। वे महान् हैं, स्वर्गके राजा हैं, देवोंके अधिपति हैं फिर भी वे व्रजवासियोंका विरोध करते हैं। उनका यह विरोध ठाकुरजीको भला नहीं लगा। प्रभुने राजा इन्द्रको दण्ड दिया। भक्तिमें कोई विघ्न करने आये तो भगवान्‌की प्रार्थना करो। विनियोगो भक्तियोगप्रतिबन्धविनाशने अर्थात् मेरी भक्तिमें कोई विघ्न न करे और मेरी भक्ति क्षण-क्षण बढ़ती रहे।

अनेक बार भक्तिमें विघ्न सुखके रूपमें भी आते हैं। किसी-किसी समय प्रभु भी ऐसी लीला करते हैं कि वैष्णवकी भक्तिमें विघ्न पैदा करनेवाले सुखोंको वे दूर कर देते हैं और वैष्णवको बहुत दुःख देते हैं। उसके पापोंपर विचार करके भगवान् निश्चय करते हैं कि यह वैष्णव एक ही जन्ममें मेरे द्वारा सभी पापोंका फल जब भोग लेगा तब मैं इसे अपने धाममें ले जाऊँगा। तब इसे मैं परमानन्द दूँगा।' प्रभु उस वैष्णवके पापोंको जलानेके लिये तथा उनकी भक्तिके विघ्नोंको टालनेके लिये, बहुत दुःख भी देते हैं।

एक वैष्णव दम्पती थे। वे दोनों ही घरमें रहते थे। और कोई तीसरा सदस्य वहाँ नहीं था। दिन-रात वे ठाकुरजीकी सेवा तथा स्मरणमें लीन रहते, ठाकुरजीकी मंगलमयी लीलाओंका चिन्तन करते और उनका मन गोकुलमें ही रहता। दिन-रात अपने मनको वे भक्ति-रसमें सराबोर रखते थे। प्रभु को भी वहाँ आनन्द मिलता था। ठाकुरजी उनके घरमें आनन्दसे विराजते थे।

हुआ यह कि दस-पन्द्रह वर्ष प्रभु-सेवा करनेके पश्चात् उनके घरमें एक बालकने जन्म लिया। बालकका जन्म होनेसे पति-पत्नी बहुत प्रसन्न हुए। सोचने लगे कि 'ठाकुरजीने बड़ी कृपा की।' किन्तु बालकमें उनका स्नेह इतना अधिक बढ़ गया कि अब वे रात-दिन बालकका ही चिन्तन करने लगे, उसका लालन-पालन करने लगे। बालक तोतली वाणी बोलने लगा। माँ-बापको बहुत प्रसन्नता हुई। अब वे बालकको खिलानेमें लगे



रहते । एक क्षणके लिये भी उसे छोड़ते नहीं थे । धीरे-धीरे भक्तिके जो नियम-साधन थे, वे छूटने लगे । अनेक बार उनकी अन्तरात्मासे आवाज भी आती—'इस बालकका जन्म होनेके बाद पहले जैसा भक्ति-भाव नहीं रहा । यह बात ठीक नहीं है ।' किन्तु बादमें उन्होंने मनको समझाना आरम्भ किया—'इस बालकमें भी तो भगवान् हैं न । इसकी सेवा तो भगवान्की ही सेवा है ।'

मनमें अनेक प्रकारकी वासनाएं भरी रहती हैं । जीव, ईश्वरसे विमुख रहा आवे, ऐसा प्रयत्न मन करता है । मन, जीवको खोटी सलाह देता है कि मानो कि बालकमें भी भगवान् हैं । बालकमें भगवद्भाव रखना तो अच्छी बात है, बुरी बात नहीं, किन्तु बालककी सेवामें भगवान्को बिल्कुल भूल जायँ, भक्ति-भावको भुला दें तथा बालकमें ही मनको लगातार फँसाये रहें—तो यह सब भगवान्को कैसे अच्छा लगेगा ? प्रभुने विचार किया—'इस तरह तो इस भक्तका पतन ही हो जायगा । अब मैं इसे पुत्रका सुख अधिक नहीं दूंगा । मुझे तो अब इसके घरमें आनन्द ही आनन्द भर देना है ।'

संसारके सम्पूर्ण सुख तभी तक रहते हैं जबतक उनसे जीवका संयोग रहता है । वियोगमें तो दुःख ही है । प्रभुने ऐसी लीला की कि उस बालकको धरतीसे उठा लिया । पहले तो पति-पत्नीको दुःख हुआ किन्तु बादमें भगवत्कृपासे उनका भगवद्भाव दृढ़ हो गया । वे सोचने लगे —'न, न, प्रभुने जो कुछ किया है, वह अच्छा ही किया है । आज तक कितने ही बालकोंको हमने गोदमें खिलाया होगा । यह जीव अनेक बार पति बना, पत्नी बना, पुत्र बना तथा अनेक बार पिता भी बना । वे जो बालक इसने गोदमें खिलाये थे, वे सब कहाँ गये ? वे सारे सम्बन्ध कहाँ छूट गये ? हमारा जो परमेश्वरसे सम्बन्ध है, वही सच्चा है ।' तब प्रभुने इन पति-पत्नीको अलौकिक आनन्द प्रदान किया । उन्होंने नित्य लीलाकी सेवामें इन दोनोंको बुला लिया । प्रभु विघ्नहर्त्ता हैं, प्रभु रक्षणकर्त्ता हैं ।

गोपी आगे कहती है—'आपने हमारा बार-बार रक्षण किया है । वैद्यु तानलात् दावाग्नि जब प्रकट हुई, तब आपने हमारी रक्षा की । वृषमयात्मजात्--वृषभासुर अनेक बार हम व्रजवासियोंको त्रास देने लगा, तब आपने उसे भी दण्ड दिया ।'



पूज्य डोंगरेजी महाराजका

भगवान्को व्रज बहुत प्रिय लगता है। व्रजवासियोंसे कोई कटु शब्द बोले, उन्हें कोई त्रास दे तो वह प्रभुसे थोड़ा भी सहन नहीं होता। प्रभु ऐसा मानते हैं कि व्रज तो मेरा है।

गोपी कहती है—'व्रज आपका है, हम आपकी हैं। आजतक आपने अनेक बार हमारी रक्षा की है तो आज ही हमारी उपेक्षा आप कैसे कर रहे हैं? अघासुर, बकासुर, वृषभासुर इत्यादि असुरोंसे आपने हमें बचाया है और अब भी एक बहुत बड़ा असुर हमें त्रास दे रहा है। वह है—श्रीकृष्ण-विरहासुर। श्रीकृष्णका वियोग ही एक बड़ा राक्षस है और वह हमें बहुत पीड़ा दे रहा है। हमसे वह पीड़ा सहन नहीं होती।

कालियनागके जहरसे हमारा मरण हो जाता तो लोग कालियनागको दोष देते। अघासुर, बकासुरने हमको मारा होता तो उनके माथेपर कलंक लगता किन्तु आज तो आप ही हमें अपने वियोगमें मारोगे तो वह दोष भी आपको ही लगेगा। आज तक आपने हमारी रक्षा की तो क्या इस प्रकार वियोगमें भटकानेके लिए ही की थी? ऐसे वियोगसे हमें पीड़ित करनेकी आपकी इच्छा थी तो फिर इससे तो अच्छा था कि कालियनागके जहरसे हमारा नाश हो जाता।

आपने उस समय तो हमारी रक्षा की और अब उपेक्षा कर रहे हो। इससे तो ऐसा भाव निकलता है कि आजतक हमने आपकी कोई सेवा नहीं की, इससे रुष्ट होकर आप हमें छोड़ गये हो।'

गोपियाँ मानती हैं कि हमारे प्रेममें बहुत न्यूनता है और इसी कारण श्रीकृष्ण हमें छोड़ गये हैं। आगे गोपी कहती है—'आजतक हमने आपकी कोई सेवा नहीं की, आपको थोड़ा भी सुख नहीं दिया, फिर भी आपने हमारी रक्षा की। अब आज आपके वियोगमें पीड़ित होकर, आपको अपयश देकर हम शरीर त्याग करें, ऐसी हमारी इच्छा नहीं है। वैसे आपके वियोगमें आपका स्मरण करती हुई शरीर छोड़ेंगी तो हमारी तो सद्गति ही होगी। मरणसे तो हमें थोड़ा भी भय नहीं लगता।'



वैष्णवको मरणका थोड़ा भी भय नहीं होता । जिनके मनमें विकार-वासनाएँ घर किये बैठी हैं, उनको अपना घर छोड़नेमें अकुलाहट होती है किन्तु जिन्होंने मान रखा है कि 'हमारा घर तो श्रीकृष्णके चरणोंमें है, हमारा घर तो गोकुलमें है, हमें तो ठाकुरजीकी नित्य सेवामें जाना है,' उन्हें मृत्युसे कोई भय नहीं होता । भागवतमें एक स्थानपर कहा गया है कि श्रीकृष्णके चरणोंका नाम ही मोक्ष है ।

गोपी कहती है—'मरणसे मुझे थोड़ा भी डर नहीं लगता किन्तु इस प्रकार मरनेसे तो अपयश आपके सिरपर आ जायगा । आपको अपयश देकर हमें नहीं मरना है । नाथ ! अब प्रकट होइये—दयित दृश्यताम्—मुझे दर्शन दीजिये ।'

भगवान् गोपियोंसे कहते हैं—'सखियो ! तुम कह रही हो कि जब-जब विपत्ति आई, तब-तब मैंने तुम्हारी रक्षा की किन्तु ऐसा नहीं है । मैंने कोई रक्षा नहीं की । व्रज-वासी तो परमात्मा नारायणके भक्त हैं । उन्हीं नारायण परमात्माने तुम्हारी रक्षा की है । मैं तुम्हारी रक्षा कैसे कर सकता हूँ ? मैं तो माँ यशोदाका बालक हूँ ।'

लाला स्वरूप छिपाते हैं । व्रजमें जब जोरकी बारिश हुई और लोग घबराने लगे तब लालाने नन्दबाबासे कहा—'बाबा ! सब लोगोंसे श्रीगोवर्द्धननाथका वन्दन कराइये । उन्होंने मुझे स्वप्नमें दर्शन दिये हैं । उन्होंने मुझसे कहा हैं कि कृष्ण ! अपनी सारी शक्ति मैं तुम्हें दे रहा हूँ और तुम्हरी उँगलीपर मैं फूल जैसा हल्का होकर टिका रहूँगा । इसलिये बाबा ! आप सब श्रीगोवर्द्धननाथको प्रणाम करें । इनका जयजयकार करें । इनको उठानेकी शक्ति मुझमें तो नहीं है । मैं तो आपका बालक हूँ ।'

आज वही लाला गोपियोंसे कह रहे है—'आपकी रक्षा मैं कैसे कर सकता हूँ ? मैं तो माँ यशोदाका लाला हूँ ।'

अब गोपियोंमें ज्ञानका स्फुरण हुआ । वे कहने लगीं -'न, न कृष्ण ! ऐसा नहीं है ।



हमने तो ज्ञानपूर्वक तुमसे प्रेम किया है। तुम माँ यशोदाके बालक नहीं हो। न तुम नन्दबाबाके ही पुत्र हो। तुम तो स्वयं परमात्मा हो।'

न खलु गोपिकानन्दनो भवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान्सात्वतां कुले ॥४॥

भावार्थ– निश्चत रूपसे आप किसी गोपिका अर्थात् यशोदाके पुत्र नहीं हैं किन्तु आप तो सम्पूर्ण शरीरधारियोंकी अन्तरात्माके द्रष्टा हो। हे सखे ! ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे विश्वके रक्षणके लिये आप यादव-कुलमें प्रकट हुए हो।

आज गोपियोंको निश्चय हुआ कि श्रीकृष्ण यशोदाजीके लाल नहीं हैं। ये तो भगवान् हैं, परमात्मा हैं। महापुरुषोंने श्रीकृष्णके तीन स्वरूप बतलाये हैं। व्रज-प्रेमी सन्त श्रीकृष्णको इस भावसे भजते हैं कि वे यशोदाजीके लाल हैं। अन्य भक्त लोग इस भावसे प्रभुकी आराधना करते हैं कि वैकुण्ठके नारायण ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे जगत्‌में प्रकट हुए हैं तथा ज्ञानी पुरुष इनका ध्यान इस भावसे करते हैं कि सबके अन्तरमें विराजे हुए सर्वव्यापी अन्तर्यामी परब्रह्मका स्वरूप ही इनका स्वरूप है।

संतोंको भागवतका एक श्लोक बहुत प्रिय है—

इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या दास्यं गतानां परदैवतेन।
मायाश्रितानां नरदारकेण साकं विजह्रुः कृतपुण्यपुञ्जाः ॥

भावार्थ—भगवान् श्रीकृष्ण ज्ञानी सन्तोंके लिये ब्रह्मानन्दके मूर्तिमन्त अनुभव हैं। दास्यभावसे युक्त भक्तोंके लिये वे आराध्यदेव, परम ऐश्वर्यशाली परमेश्वर हैं एवं मायामें फँसे लोगोंकी दृष्टिमें वे केवल मनुष्यके बालक हैं। ऐसे भगवान्‌के साथ महापुण्यशाली ग्वाल-बाल तरह-तरहसे खेलते फिरते हैं।

ज्ञानी पुरुष श्रीधाम वृन्दावनमें व्रजवासी बालकोंके साथ खेलते हुए लालाका जब मनसे दर्शन-चिन्तन करते हैं, ध्यान करते हैं तथा श्रीकृष्ण-लीलाका दर्शन करते हैं, तब



उनको ऐसा लगता है कि 'उपनिषद्में जिन परब्रह्मका वर्णन आता है, वे ब्रह्मानन्द-स्वरूप श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं। बड़े-बड़े योगी भी जिन ब्रह्मका ध्यान करते हैं, जिस परमात्माके लिये वे देहका त्याग करते हैं तथा जिनके लिए शरीरमें रहते हुए भी शरीरसे अलग रहते हैं, वे परमात्मा यही श्रीकृष्ण हैं। श्रीकृष्ण भगवान् नहीं हैं, यशोदाजीके लाल नहीं हैं किन्तु परिपूर्ण आनन्द-परब्रह्म ही इस वृन्दावनमें बालसखाओंके साथ खेल रहा है। हमारा ब्रह्म खेलता है।'

ये व्रजवासी बहुत भाग्यशाली हैं। वे अन्य किसी जीवके साथ नहीं खेलते किन्तु परमात्माके साथ खेलते हैं। यह जीव वैसे तो अनादि कालसे खेलता आ रहा है किन्तु यह जड़ पदार्थोंके साथ खेलता रहा है, इसीलिए यह दुःखी होता है। यह जीव अनेक जन्मोंसे अनेक जीवोंके साथ खेलता रहा है किन्तु इसे शान्ति मिली नहीं। जब यह परमात्माके साथ खेलता है, तभी इसे शान्ति मिलती है।

आप आजसे ही ऐसी इच्छा रखना आरम्भ करें कि 'अब तो मुझे ठाकुरजीके साथ ही खेलना है।' आप ऐसा दृढ़ संकल्प करें कि 'अब मेरा जन्म जब कभी हो तो वह गोकुलमें ही हो। जब मेरे श्रीकृष्ण प्रत्यक्ष प्रकट हों तब किसी व्रजवासीके घर बालक-रूपमें मेरा जन्म हो। मैं लालाका सखा बनूँ, लालाकी सखी बनूं, नन्द बाबाके घरका सेवक बनूं।' जब आप ऐसी इच्छा रखेंगे तब भगवान् आपकी इच्छाकी पूर्ति भी अवश्य करेंगे।

भक्त मानते हैं कि श्रीकृष्ण वैकुण्ठके महाविष्णु हैं। क्षीरसागरके किनारे ब्रह्मादि देवता आये और उन्होंने भगवानसे प्रार्थना की कि 'जगतका रक्षण करनेके लिये आप पधारें।' इसीलिये वे प्रभु श्रीकृष्ण-रूपमें प्रकट हुए। विखनसार्थितो विश्वगुप्तये। विखन अर्थात् ब्रह्माजी। विशेषेन खनति वेदार्थं इति विखनः। तेन विखनसा—ब्रह्मणा अर्थितः। जैसी ब्रह्माजीने प्रार्थना की थी—विश्वगुप्तये—विश्वके रक्षणके लिये।



टीकाकारोंने 'न खलु' शब्द, प्रत्येक शब्दावलिके साथ लगाकर बड़ा रसमय अर्थ किया है। गोपिकानन्दनः न खलु। अखिलदेहिनाम् अन्तरात्मदृक् न खलु। विश्वगुप्तये विखनसार्थितः न खलु। गोपी भगवान्से कहती है—'आप गोपिकानन्दन भी नहीं हैं। आप अंतर्यामी भी नहीं हैं तथा जगत्का रक्षण करनेवाले विष्णु भगवान् भी नहीं है।'

'आप माँ यशोदाके लाल नहीं हैं। यशोदाजी तो बहुत भोली हैं, अत्यन्त ममतामयी हैं। किसीकी आँखोंमें आँसू आते हैं तो उनको थोड़ा भी सहन नहीं होता। आप तो हमें वियोगमें आकुल किए दे रहे हैं। आप यशोदाजीके लाल नहीं हैं। किसी भी गोपिकाके बालक आप नहीं हैं। गोपिकानन्दन आप नहीं हैं—गोपिकानन्दनः न खलु भवान्। आप हमारी जातिके ही नहीं हैं। नहीं तो क्या जातिकी स्त्रियोंको आधी रातके समय इस प्रकार भटकाकर, दुःखीकर आप स्वरूपको छिपा सकते थे? यह तो वैसी स्थितिमें आपसे हो ही नहीं सकता था।'

तब श्रीकृष्णने कहा—'मैं यशोदाजीका लाल नहीं हूँ। मैं तो सभीके अन्तरमें विराजनेवाला अन्तर्यामी नारायण हूँ।'

गोपी कहती है—'न, न, लोग भले ही ऐसा कहते हों किन्तु हमें निश्चय हो गया है कि आप सर्वान्तर्यामी नारायण भी नहीं हैं। अखिलदेहिनाम् अन्तरात्मदृक इति न खलु। आप प्राणीमात्रके हृदयमें अन्तर्यामी रूपसे विराजे हुए ईश्वर भी नहीं हो।'

श्रीकृष्णने पूछा—'तुम ऐसा किस प्रकार कहती हो?'

गोपी कहती है—'आप अन्तर्यामी नारायण होते तो हमारी उपेक्षा कर ही नहीं पाते। आप सभीके हृदयमें विराजते होते, हमारे अन्दर भी यदि आप विराजमान होते तो आप इस बातको अच्छी तरह जान लेते कि हमारे हृदयमें आपके दर्शनके लिए कितनी आतुरता है और आपके वियोगमें हमें कितना दुःख हो रहा है। साथ ही आप हमें इस प्रकार छोड़कर भी न जाते। वास्तवमें आप कुछ नहीं जानते। आप अन्तर्यामी नहीं हैं।'



लोग भले ही ऐसा मानते हों कि श्रीकृष्ण सर्वांतर्यामी हैं किन्तु गोपी भगवान्‌से स्वजनकी तरह प्रेमसे बातें कर रही है। गोपीके बिना ऐसी बातें भगवान्‌को कोई नहीं सुना सकता। ठाकुरजीको भी इन बातोंको सुनकर आनन्द आता है। वे सोचते हैं— "वैकुण्ठमें तो 'महाराजाधिराज' तथा 'महिमामय परमात्माकी जय हो' कहकर सब मेरा बखान करते हैं। मुझे ऐसे शब्द कि 'आप ईश्वर नहीं हो,' कोई नहीं सुनाता।"

प्रभुने गोपियोंसे कहा—'मैं अन्तर्यामी नारायण नहीं हूँ तो फिर वैकुण्ठका महाविष्णु हूँ, जिससे ब्रह्मादि देवताओंने जगत्‌का रक्षण करनेके लिए अवतार लेनेकी प्रार्थना की थी।'

गोपीने कहा—'न खलु। आपकी यह बात गलत है। जो घरका रक्षण नहीं कर पाता वह जगत्‌का रक्षण क्या करेगा? विश्वपालनाय अवतीर्णस्य तव भक्तोपेक्षा अनुचिता। आप जगत्‌का रक्षण करनेके लिये आये हो, ऐसा कोई मानता हो तो गलत है। आप विष्णु भगवान् भी नहीं हैं।'

'महापुरुषोंने आपके तीन स्वरूपोंका वर्णन किया है किन्तु आज आप जो लीला कर रहे हैं, वह इन स्वरूपोंमें-से किसी भी स्वरूपके अनुरूप नहीं है। न तो आप गोपिकानन्दन हैं, न अन्तर्यामी नारायण और न ही विष्णु भगवान्।'

प्रभुने पूछा—'अरी सखियो! तो तुम मुझे क्या समझती हो? मैं कौन हूँ?

गोपीने कहा—'सः खे उदेयिवान् सात्वतां कुले।

'ख'शब्दका अर्थ होता है आकाश। उपनिषद्‌में 'सः' शब्दका अर्थ किया गया है परब्रह्म। श्रीकृष्णका और आकाशका रंग एक समान है। इसीलिये गोपियाँ व्यंग्यमें भगवान्‌से कहती हैं—'आप तो आकाशसे ही नीचे धरतीपर उतरे हो अर्थात् इस धरतीपर टपके हो। नाथ! हम आपका क्या वर्णन करें? दयित दृश्यताम्—दयामय! दर्शन दो।'

परमात्मा श्रीकृष्णकी लीलाका रहस्य समझना बहुत ही कठिन है। उनकी लीलायें बहुत अटपटी हैं। वे प्रकट हुए हैं मथुराके कारागृहमें, पालनेमें झूले हैं गोकुलमें, खेले हैं



पूज्य डोंगरेजी महाराजका

वृन्दावनमें, बड़े हुए हैं मथुरामें तथा उन्होंने राज्य किया है द्वारकामें। हम जैसे साधारण मनुष्योंकी तो बात ही क्या, ब्रह्मादि देवता भी श्रीकृष्ण-लीलासे विमोहित हुए हैं। श्रीकृष्णकी कृपासे ही उनकी लीलाओंका रहस्य ध्यानमें आता है। इसके अतिरिक्त अन्य किसी उपायसे उनकी लीलायें ध्यानमें नहीं आतीं। इस रहस्यको समझनेके लिए गोपियों-के चरणोंका आश्रय लो। ऐसा भाव रखो कि 'मैं गोपियोंका दास हूँ। मुझ जैसा जीव प्रत्यक्ष श्रीकृष्णकी सेवा करनेके योग्य कहाँ है ? मेरा मन शुद्ध नहीं, मेरा तन शुद्ध नहीं, मेरी आँख शुद्ध नहीं। क्या ठाकुरजी मेरे हाथोंकी सेवा स्वीकार करेंगे ? श्रीकृष्णकी सेवा तो गोपियाँ ही कर सकती हैं। मैं गोपियोंका दास हूँ।'

गोपियोंकी जो भक्ति करता है, उसे ही थोड़े-बहुत प्रेमकी प्राप्ति होती है। गोपियाँ प्रेमकी मूर्तियाँ हैं। 'गोपी' शब्दका अर्थ होता है--गाःपान्ति इति गोप्यः। गाः इन्द्रियाणि पान्ति--जो सभी इन्द्रियोंको संसारके विषयोंसे हटाकर प्रभुके मार्गमें दग्ध कर डालती हैं, जो एक-एक इन्द्रियको भक्ति-रसमें सराबोर रखती हैं। गोपियोंका प्रेम-मार्ग अत्यन्त दिव्य है। पूर्ण संयम हो तभी कहीं उसका रहस्य ध्यानमें आता है। जो व्यक्ति इंद्रियोंका दास है, संसारके किसी भी लौकिक सुखमें फँसा हुआ है, वह गोपियोंका स्वरूप समझ ही नहीं सकता। साधारण मनुष्यका स्वभाव ऐसा है कि वह जैसा होता है, उसी भावसे जगत्‌को देखता है।

गोपियोंका प्रेम-मार्ग सर्वोच्च है। थोड़ा विचार आप करें तो ध्यानमें आयेगा कि गोपियोंका वर्णन कर कौन रहा है ? परमहंसशिरोमणि श्रीशुकदेवजी महाराज उनका बखान कर रहे हैं। वे संन्यासी महापुरुषोंके आचार्य हैं, परिपूर्ण वैरागी हैं, उनकी आँखोंमें ऐसा भाव नहीं है कि यह स्त्री है या पुरुष है। जिनकी कमरमें लपेटनेको रस्सी या पट्टी तक नहीं तो फिर उसके पास लँगोटी कहाँसे होगी ! शुकदेवजीके दर्शनमात्रसे दर्शकजन निष्काम हो जाते हैं। लौकिक दृष्टिसे भी यदि कोई विचार करे तो पता लगेगा कि गोपियोंमें-से भी कितनी ही गोपियाँ विवाहिता हैं। तो ऐसी गृहस्थाश्रमी गोपियोंका

गोपीगीत ग्रन्थ



बखान संन्यासी महापुरुषोंके आचार्य श्रीशुकदेवजी महाराज, गङ्गाके किनारेपर कथा सुननेके लिये विराजमान बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंके सामनेकर रहे हैं। गोपी-प्रेमको महिमा-का वर्णन उन्होंने सन्त-समाजमें किया है।

गोपी वह है जो प्रत्येक इन्द्रियका विवाह, प्रभुके साथ करती है, जो प्रत्येक इन्द्रिय से भगवान्‌की भक्ति करती है तथा जिसकी आँखोंमें कृष्ण हैं, जिसके कानोंमें कृष्ण हैं, जिसके मुखमें कृष्ण हैं, जिसके मनमें कृष्ण हैं। गोपियाँ ही परमात्माके मंगलमय स्वरूपको समझ सकती हैं। गोपियोंके चरणोंका आश्रय जो लेता है, गोपियाँ तथा व्रज-भक्त जिस जीवपर कृपा करते हैं, उसीको श्रीकृष्ण-प्रेमकी प्राप्ति होती है। जो गोपियोंको उपासना करता है, वही श्रीकृष्णके स्वरूपको समझ सकता है।

गोपी भगवानको मनाती हुई कहती है—'अन्तर्हित तो निराकार ब्रह्म रहता है। स्वरूपको छिपानेका काम भी निराकार ब्रह्मका ही है। कृष्ण! आप तो नराकार परमात्मा हो। जगत्‌को आकर्षित करनेके लिए आप आये हो तो फिर स्वरूपको कैसे छिपा रहे हो?'

निराकार ब्रह्म तो है ही ऐसा किन्तु हमारे लिये उसका बहुत उपयोग नहीं है। लकड़ीमें अग्नि है किन्तु यदि किसीको बहुत सर्दी लग रही हो और वह लकड़ीका स्पर्श करे तो क्या लकड़ीमें बसनेवाली अग्नि उसे कुछ गर्मी पहुँचायेगी? लकड़ीमें अग्नि है, यह बात जानने-समझने की है। लकड़ीके अणु-परमाणुमें अग्नि है, दूधके एक-एक बिन्दुमें मक्खन है किन्तु वह सब निराकार है। निराकार ईश्वर सर्वव्यापी है, वह किसीको दिखाई नहीं देता। निराकार ब्रह्म न तो अनुग्रह करता है और न निग्रह। अनुग्रह और निग्रह तो साकार ब्रह्म श्रीकृष्ण ही कर सकते हैं। वह्निवत् प्रकटस्वात्मा वह्निवत् प्रविशेत् यदि। किन्तु वह निराकार परमात्मा

कंस और पूतनाके हृदयमें निराकार ब्रह्म तो है किन्तु वह निराकार परमात्मा कंसको कहाँ मारता है? पूतनाको कहाँ मारता है? कंस और पूतनाको मारनेवाले तो साकार श्रीकृष्ण हैं। निराकार ब्रह्मके अन्दर रहते हुए भी जीव बहुत दुःखी है, बहुत



अज्ञानी है। श्रीकृष्ण ही दुःख दूर करते हैं, अज्ञान दूर करते हैं, कंसका निग्रह करते हैं तथा पूतनापर अनुग्रह भी करते हैं।

निराकार ब्रह्म सबके अन्तरमें विराजते हैं, ऐसा समझकर व्यवहार किया जाय तो मन नहीं बिगड़ेगा किन्तु निराकार ब्रह्मसे हमको कोई विशेष लाभ नहीं। किसीके पेटमें तकलीफ हो तो अन्दर रहनेवाले ब्रह्मको उसपर दया नहीं आयेगी। श्रीकृष्ण को दया आयेगी। वे दयालु हैं।

निराकार ब्रह्म दीपक जैसा है। दीपक प्रकाश देता है किन्तु यदि कोई दीपकके प्रकाशमें ताला तोड़कर चोरी करने लगे तो क्या दीपकको बुरा लगेगा ? दीपक कहेगा—'भले ही कोई चोरी करे, मुझे क्या मतलब ?' दीपक तो चोरी करनेवालेको भी प्रकाश देता है। उसका न तो कोई शत्रु है और न कोई मित्र। वह कहता है 'मेरा जगतसे कोई वैर नहीं और कोई प्रेम भी नहीं। मैं तो केवल प्रकाश देता हूँ।'

निराकार निर्विकार ब्रह्म परमात्मा सबके अन्तरमें विराजे हुए हैं। वे प्रकाशमय हैं और अपने रूपको छिपाते हैं। आँखोंसे वे दिखाई नहीं देते परन्तु बुद्धिग्राह्य हैं। ठीक वैसे ही जैसे दूधमें रमा हुआ मक्खन आँखों से तो दिखाई नहीं देता किन्तु बुद्धिसे ही दिखाई देता है। दूधमें मक्खन दिखाई नहीं देता। दूधमें कोई हाथ डाले तो उसमें-से मक्खन नहीं निकलेगा। दूध पीनेसे भी मक्खनका स्वाद उसमें-से नहीं आयेगा फिर भी दूधमें मक्खन है, यह बात सच है। दूधको जमाकर दही बनाया जाय और मन्थन किया जाय तो मक्खन निकलता है। पानीका कोई मन्थन करे तो उसमें-से मक्खन नहीं निकल सकेगा।

निराकार ब्रह्म सर्वव्यापक है। वह किसीको आकर्षित नहीं करता। न तो वह किसीको मारता है और न तारता ही है। मारना और तारना—ये लीलायें तो श्रीकृष्ण-की हैं।

गोपियाँ श्रीकृष्णको मना रही हैं—'स्वरूपको छिपाये रखना तो निराकार ईश्वर-का स्वभाव है। आप तो जगतको आकर्षित करनेके लिए आये हो। जगत्को प्रेमका मार्ग



दिखानेके लिये आये हो। आप स्वरूपको इस प्रकार छिपाये रखो, यह आपको शोभा नहीं देता।'

श्रीमहाप्रभुजीकी व्याख्या है कि श्रीकृष्ण तो सखियोंके मण्डलमें ही हैं। वे गोपियों-को छोड़कर कहीं गये ही नहीं। व्रजकी यह नित्य लीला है। श्रीकृष्ण भले ही द्वारकामें लीला करें या वैकुण्ठमें पधारें किन्तु व्रजकी यह लीला नित्य-निरन्तर चलती रहती है। व्रजकी लीलाका तो अन्त आता ही नहीं।

गोपीको अनेक बार ऐसा लगता है कि 'मेरे हृदयमें विराजे हुए श्रीकृष्ण मुझे सामने-से देख रहे हैं। उनके मुखपर मन्द-मन्द मुस्कराहट है। मैं जो बोल रही हूँ, वह सब लाला सुन रहे हैं।' यह गोपी लालाको खिझाती है, मनाती है, उनपर दोष लगाती है, गुस्सा करती है, स्तुति करती है, विनती करती है। लालाको आनन्द आ रहा है। वे सोच रहे हैं 'यह गोपी कितनी सुन्दर वाणी बोल रही है।'

प्रभुने कहा – 'अरी सखियो! तुम तो बहुत ही मधुर वाणी बोल रही हो। तुम्हारी बातें सुनकर मुझे बहुत आनन्द आता है।'

कोई विद्वान् ब्राह्मण जोर-जोरसे वेद-मन्त्र बोले तो उससे लालाको बहुत आनन्द नहीं मिलता किन्तु जब गोपियाँ लालासे प्रेमसे बातें करती हैं तब परमात्मा खड़े रहकर उन बातोंको सुनते हैं और कहते हैं—'तुम्हारी बातोंसे मुझे बहुत आनन्द मिलता है। अब तुम्हारी क्या इच्छा है? तुम जो माँगोगी, वह मैं तुम्हें दूंगा।

तब गोपियोंको बहुत ही आनन्दका अनुभव हुआ। वे श्रीगोपीगीतके पाँचवें, छठे, सातवें और आठवें—इन चार श्लोकोंमें माँग करती हैं। पाँचवें श्लोकमें गोपियाँ भगवान्से कहती हैं—'अपना हाथ हमारे मस्तकपर रखिये।' छठे श्लोकमें कहती हैं—'हमें दर्शन दीजिये।' सातवें श्लोकमें माँग करती हैं—'अपने चरणोंको हमारे हृदयपर पधराइये।' आठवें श्लोकमें कहती हैं—'अधरामृतका दान दीजिये।' गोपियोंकी ये चार माँगें हैं।



विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते चरणमीयुषां संसृतेर्भयात् ।
करसरोरुहं कान्त कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥५॥

भावार्थ—हे वृष्णिकुलमें श्रेष्ठ ! हे कान्त ! संसारके भयसे आपके चरणोंकी शरण-में आनेवालोंको अभय देनेवाले, जनोंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले तथा लक्ष्मीजीका पाणिग्रहण करनेवाले अपने करकमल हमारे मस्तकपर पधराइये ।

वेदान्तकी परिभाषामें 'नेति-नेति' शब्द आते हैं। वेदान्ती लोग ब्रह्मका वर्णन नेति-नेति शब्दोंसे करते हैं। श्रीकृष्ण तो साकार ब्रह्म हैं—इति इति इति । गोपियाँ अनेक बार परमात्माकी इस रीतिसे स्तुति करती हैं। वे परमात्माको मनाती हैं तथा उनसे माँग करती हैं।

प्रेमसे तृप्ति नहीं होती, भोगसे होती है। भोगमें बार-बार अतृप्तिका भी अनुभव होता है, यह बात अलग है किन्तु भोगको भोगनेके पश्चात् तो तृप्ति होती ही है। अनेक बार तो विषयोंसे अरुचि भी हो जाती है। किसीको श्रीखण्ड बहुत अच्छा लगता हो और उसे भूख भी लगी हो तब उसे श्रीखण्ड खिलाइये दो-चार कटोरी तक तो उसे आनन्द आयेगा किन्तु, धीरे-धीरे जैसे ही उसकी भूख शान्त होती जायेगी, वैसे-वैसे ही श्रीखण्डका आनन्द भी कम होता जायगा और जब पेट अच्छी तरह भर जायेगा तो श्रीखण्ड परोसने-वालेसे वह कहेगा—'अरे भई ! अब मेरी श्रीखण्ड खानेकी बिल्कुल इच्छा नहीं है। श्रीखण्डको यहाँसे ले जाओ।' उस समय कहीं घरका वह परोसनेवाला व्यक्ति कहे कि यदि आपकी इच्छा नहीं है तो भिखारीको बुलाकर यह श्रीखण्ड उसे दे दें तो खानेवाला व्यक्ति कहेगा—'न, न, भिखारीको मत देना, ढँककर रख दो। मैं रातको फिर खा लूँगा। श्रीखण्ड खानेके पश्चात् तो बदहजमी होती है, अरुचि होती है। भोगसे तृप्ति होती है किन्तु प्रेमसे तृप्ति कभी नहीं होती।

पाँचवें श्लोकमें गोपियोंने परमात्माको दो सम्बोधन दिये हैं—वृष्णिधुर्य तथा कान्त ! वृष्णिधुर्य—वर्षति कामान् इति वृष्णि । वृष्णिसु धुर्यः—श्रेष्ठः सत्संबुद्धौ हे वृष्णि-



धुर्य । कामनाओं-इच्छाओंको पूरा करनेवाले हैं वृष्णि और उन वृष्णियोंमें जो श्रेष्ठ हैं वे हैं वृष्णिधुर्य । इस प्रकार गोपियाँ श्रीकृष्णसे कहती हैं 'आप वृष्णिधुर्य हैं अर्थात् आप अत्यन्त उदार हैं ।'

श्रीकृष्ण अत्यन्त उदार हैं । अन्य देव कुछ भी देनेमें थोड़ा सोचते-विचारते हैं । उन्हें यह सोचकर संकोच होता है कि यदि हमने कुछ दिया और हमीको कुछ कमी पड़ गई तो क्या होगा ? वे कुछ देते भी हैं तो थोड़े संकोचसे देते हैं । श्रीकृष्ण जब देते हैं तब उन्हें थोड़ा भी संकोच नहीं होता । स्मरतः पादकमलं आत्मानं अपि यच्छति । श्रीकृष्णसे जो लोग प्रेम करते हैं, उन्हें तो वे द्वारकानाथ भी बना देते हैं ।

सुदामाजी श्रीकृष्णसे प्रेम करते हैं । उन्हें श्रीकृष्ण द्वारकानाथ बना देते हैं । द्वारकानाथ श्रीकृष्ण सुदामाजीको अपने सिंहासनपर बिठाते हैं तथा स्वयं उनके साथ नहीं बैठते । सुदामाजीके चरणोंमें वे बैठते हैं । जगत्में आजतक कोई ऐसा हुआ नहीं तथा भविष्यमें होगा भी नहीं । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते । श्रीकृष्ण परिपूर्ण हैं । वे जब जिसको देते हैं तब इन्हें ऐसा भय नहीं लगता कि 'मैं इसको बहुत दे रहा हूँ, कहीं मेरे घरमें कमी पड़ गयी तो !' ग्रन्थोंमें ऐसा लिखा है कि श्रीकृष्णने सुदामाजीसे एक मुट्ठी चावल लेकर उन्हें द्वारकाकी सम्पत्ति दे दी । श्रीकृष्ण पूर्ण पुष्टि-पुरुषोत्तम हैं ।

सुदामाजीको द्वारकाकी सम्पत्ति मिली तो यमराजसे सहा नहीं गया । तब वे अपने सारे बही-खाते लेकर आये । भगवान्को बही-खाते अर्पित किये । प्रणाम करके बोले - 'महाराज ! अब आपको मेरी आवश्यकता नहीं रही । आपका बनाया हुआ नियम है कि हरएकको कर्मके हिसाबसे फल दिया जाय । अब वह नियम तो रहा नहीं । आप ही कायदेको तोड़ते हैं । आपसे कोई क्या कह सकता है ? आप परमेश्वर हैं । आप किसी भी सामान्य जीवको अत्यन्त सम्पत्ति देते हैं तो कर्मकी मर्यादा छिन्न-भिन्न होती है । इस सुदामाने ऐसा कोई पुण्य तो किया ही नहीं था । इस ब्राह्मणके भाग्यमें तो दारिद्र्य-



का योग है। आपने इसे इतनी अधिक सम्पत्ति दे दी। इतनी सम्पत्ति तो इन्द्रके दरबारमें भी नहीं है।'

सुदामाजीका ऐश्वर्य देखकर यमराजजीको कुछ अच्छा नहीं लगा। वे प्रभुको कर्मकी मर्यादा समझाने लगे। प्रभुसे उन्होंने कहा -'आप उदार हैं किन्तु इस प्रकार कर्मकी मर्यादाका लोप होता है। सुदामा ब्राह्मणने ऐसा कोई पुण्य नहीं किया है।'

प्रभुने कहा—'भाई! तुमने बातको ठीक-ठीक नहीं समझा है। सुदामाने मुझे एक मुट्ठी चावल अर्पित किये हैं, मैंने उनका भोग लगाया है। जो मेरा भोग लगाता है, उसे जगतके सम्पूर्ण जीवोंको भोजन करानेका पुण्य प्राप्त होता है।'

जो श्रीकृष्णको प्रसन्न करता है, वह जगतको प्रसन्न करता है। जो श्रीकृष्णका भोग लगाता है, वह जगतको भोजन कराता है। सुदामाजीके एक मुट्ठी चावलका भोग लगाकर द्वारकानाथ तृप्त हो गये। ग्रन्थोंमें तो लिखा है कि श्रीकृष्ण सुदामाजीसे सामग्री माँगते थे। उन्होंने कहा -'मेरी भाभीने कुछ भेजा हो तो तुम मुझे दो। रुक्मिणीजीको यह बात बहुत बुरी लगी। वे सोचने लगीं—'आज इनको बड़ी भूख लगी है? छप्पन भोग आरोगकर बैठे हैं और अब इस ब्राह्मणसे कह रहे हैं कि मुझे खानेको दो।'

प्रभु इस बातको जानकर रुक्मिणीजीसे बोले—'रुक्मिणी! तुम अब कुछ कहना नहीं। मैं जबसे अपनी माँ यशोदाको छोड़कर यहाँ आया हूँ, तभीसे भूखा रहा हूँ। मेरी माँ मुझे स्नेहसे जिमाती थी तथा गोपियोंके हाथसे मैं भोजन-सामग्री आरोगता था।'

परमात्माको प्रेमकी भूख लगी है। वे शुद्ध प्रेम माँगते हैं। इस जीवसे वे और कुछ नहीं माँगते, प्रेम ही माँगते हैं। हाँ तो रुक्मिणीजीको आश्चर्य हुआ कि 'मैं नित्यप्रति द्वारकानाथकी सेवा करती हूँ किन्तु आज तो श्रीकृष्ण किसी और रूपमें ही दिखाई दे रहे हैं।'

सुदामाजीके एक मुट्ठी चावलोंका भोग लगाकर द्वारकानाथ श्रीकृष्णने सुदामाजी-को द्वारकानाथ बना दिया। ऐसा उदार जगत्में दूसरा कौन है?

गोपीगीत ग्रन्थ



गोपियोंने श्रीकृष्णको दूसरा सम्बोधन दिया है—कान्त । कस्य अन्तः यस्मिन् इति कान्तः तत् संबुद्धौ हे कान्त । क—सुखम्; सुखस्य अन्तः यस्मिन् इति कान्त । जिसमें संसार-सुखकी समाप्ति हो जाती है, वह कान्त है । कान्तः—परमसुन्दरकान्तिः यस्यास्तीति कान्तः । चमड़ीका सौन्दर्य, सौन्दर्य नहीं है । तेजाबके चार छींटे ही यदि पड़ जायें तो इस सौन्दर्यका नाश हो जाता है ।

श्रीकृष्ण आनन्द-स्वरूप हैं । निरवधि आनन्द ही श्रीकृष्णका स्वरूप है । गोपियाँ श्रीकृष्णके स्वरूपको ठीक-ठीक जानकर ही प्रेम करती हैं । संसारका ऐसा नियम है कि जो यहाँ सुख भोगता है, उसको इच्छासे या अनिच्छासे दुःख भी भोगना पड़ता है किन्तु जो आनन्दका अनुभव करता है, वह कभी भी दुःखी नहीं होता । श्रीकृष्ण सुख नहीं देते । वे आनन्द देते हैं क्योंकि वे आनन्द-स्वरूप हैं । उपनिषद्में वर्णन आया है—आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात् । आनन्दात् एव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । आनन्देनैव जातानि जीवन्ति । आनन्द ही श्रीकृष्ण है ।

जिसे किसी सुखकी अपेक्षा होती है, वह किसी स्त्री या पुरुषके समीप जाता है । जिसे सुख नहीं बल्कि आनन्द ही चाहिये वह पति या पत्नीका मनसे त्याग करके परमात्माके चरणोंमें जाता है ।

गोपियाँ दो सम्बोधन प्रभुको देती हैं—'आप अत्यन्त उदार हो, आप आनन्द-रूप हो । कृपा करो । अपना वरद हस्त हमारे मस्तकपर रखो । शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ।'

थोड़ा विचार करेंगे तो ध्यानमें आयेगा कि गोपी एक नहीं, अनेक हैं । तब व्याकरणके नियमके हिसाबसे बोलना चाहिये—शिरस्सु । शिरसिका अर्थ है एक माथा—एकवचनका अर्थ इस शब्दसे निकलता है । गोपियोंके मस्तक तो अनेक हैं फिर भी वे एक ही मस्तकपर हाथ रखनेकी प्रार्थना परमात्मासे कर रही हैं ।

श्रीशुकदेवजी महाराज कहते हैं कि अनेक मस्तकोंके होते हुए भी सभी गोपियोंकी बुद्धि तो एक-जैसी ही है । इसीलिये शिरके बहुबचनका प्रयोग नहीं किया गया—एकवचनका



ही प्रयोग किया गया है। गोपियोंकी बुद्धि परमात्मासे बँधी है, मिली है। वियोगमें गोपियों-की बुद्धि एकरूप हुई है। संयोगमें तो किसी समय भाव बदल भी जाता है किन्तु वियोगमें सबका भाव एक ही है, इसीलिये गोपियोंके लिये बहुवचनका प्रयोग नहीं किया गया, एकवचनका ही प्रयोग किया गया है। जैसे--'नाथ ! कृपा करो। माथेपर हाथ रखो।'

'मस्तकपर हाथ रखो' इस वाक्यका अर्थ है कि मस्तकके भीतर स्थित जो हमारी बुद्धि है, वह आपको अर्पित है, आप इसे स्वीकार करो।

भगवान्‌का हाथ जब मस्तकपर आता है, तभी बुद्धि सुधरती है। बहुत यात्रायें करनेसे या बहुत दान करनेसे बुद्धि नहीं सुधरती। आजकल ये श्रीमन्त लोग समझते हैं कि अधिक धन जमा होनेपर तो बादमें सरकारको ही बहुत-कुछ अर्पित करना पड़ेगा। ऐसा समझकर ही अब वे धन कृष्णार्पण करने लगे हैं। बात ठीक है किन्तु दान देनेसे, पैसेसे बड़े-बड़े उपकार करनेसे, धर्मशालायें बनानेसे या प्राचीन स्थलोंका जीर्णोद्धार करवानेसे भी बुद्धि नहीं सुधरती। यज्ञ करनेसे भी बुद्धि नहीं सुधरती। कोई महान् पुरुष माथेपर हाथ रखें, तभी बुद्धि सुधरती है। सद्‌गुरु जब कृपा करते हैं, तब वे सद्‌शिष्यके माथेपर हाथ रखते हैं।

गोपियोंके पति श्रीकृष्ण हैं तथा उनके सद्‌गुरु भी वे ही हैं। सद्‌गुरुका काम आवरण भंग करना है। रासलीलासे पहले चीर हरणका प्रसंग आया है। सद्‌गुरु कृपा करके मायाका पर्दा हटाते हैं। जप, तप, सत्कर्म आदिके द्वारा मन तथा इन्द्रियोंमें रहनेवाले कामका विनाश करके सद्‌गुरुके चरणोंमें जीवको जाना होता है। कोई निष्काम महापुरुष माथेपर हाथ पधरावें, तभी बुद्धिमें-से काम हटता है।

भगवान्‌का हाथ चारों पुरुषार्थका देनेवाला है। इसीसे गोपी उनके हाथको चार विशेषण प्रदान करती हैं। विरचिताभयम् श्रीकरग्रहम् कामदम् तथा करसरोरुहम्। विरचिताभयम् यानी धर्म-पुरुषार्थको सिद्ध करनेकी शक्ति श्रीकृष्णके हाथमें है। श्रीकरग्रहम्--भगवान्‌का हाथ धन देता है या अर्थ देता है। कामदम्--अर्थात् प्रभुका वरद हस्त कामकी सम्पूर्ति भी करता है तथा करसरोरुहम्--यानी मोक्ष-पुरुषार्थ भी भगवान् देते हैं। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष--इन चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धि श्रीकृष्ण देते हैं।



आप लालाकी नित्य प्रार्थना करें, उन्हें मनाते हुए कहें—'नाथ ! मेरी और कोई इच्छा नहीं है । मैं आपसे थोड़ा श्रम भी नहीं करवाना चाहता । मैं आपकी शरणमें आया हूँ । कृपा करो । मेरे माथेपर हाथ रखो, जिससे मेरी बुद्धि सुधरे ।'

बुद्धिका भोजन है ज्ञान, मनका भोजन है भक्ति एवं तनका भोजन है कर्म । कर्म, भक्ति तथा ज्ञान—इन तीनोंका समन्वय इस श्लोकमें किया गया है । कर्मसे चित्त-शुद्धि होती है, भक्तिसे मन एकाग्र होता है तथा प्रभुके द्वारा मस्तकपर हाथ रखनेके पश्चात् बुद्धिके द्वारा सबमें श्रीकृष्णका दर्शन होता है ।

भगवानके हाथको कमलसे उपमा दी गई है—'हे कान्त! हे प्यारे! आपने लक्ष्मीजी का हाथ इसीलिए पकड़ा है कि जिससे आप भक्तोंकी इच्छा परिपूर्ण कर सकें।'

हाँ ! तो फिर गोपी कहती है—'संसृतेर्भयात् ते चरणमीयुषाम् । संसारके भयसे भयभीत हुए जो लोग आपके चरणोंमें आते हैं, उन्हें आप निर्भय बनाते हैं। उनके माथेपर हाथ रखकर आप उन्हें कृतार्थ करते हैं ।'

इस संसारमें जिधर देखें उधर भय ही भय है। बड़े-बड़े राजाओंको भी कालका भय तो लगता ही है । कालका भय वैसे सभीको है । अरे ! राजा तो क्या, देवता भी कालसे घबराते हैं । श्रीकृष्ण कालके भी काल हैं । काल उनका दास है । जो लोग श्रीकृष्णके चरणोंमें आते हैं तथा जिनके माथेपर श्रीकृष्ण हाथ पधराते हैं, उन्हें कालसे भय नहीं लगता ।

इस संसारमें दो दुःख बहुत बड़े हैं—एक तो जन्म-मरणका दुःख तथा दूसरा संयोग-वियोगका दुःख । संसारमें आप आनन्दकी खोज करने जायेंगे तो किसी भी जगह वह मिलेगा नहीं । आनन्द तो श्रीकृष्णके चरणोंमें ही है ।

संसार सुख देता है तथा दुःख भी देता है । जन्म तथा मरणका दुःख भयंकर होता है । माँके पेटसे जीव बाहर आता है तब अत्यन्त तड़पता है । अन्तकालमें भी वह बहुत



व्याकुल होता है। इसका एक कारण है—अन्तकालमें इसको अधिकतर अपने सम्पूर्ण पाप याद आते हैं। किसीको अन्तकालमें याद आए कि 'एक वार मैं द्वारका गया था। मैंने द्वारकानाथके बड़े प्रेमसे दर्शन किए थे, उनके चरणोंमें तुलसीजी समर्पित की थीं'—तो ऐसे जीवका मरण मंगलमय हो जाता है। किन्तु अन्तकालमें पुण्यका स्मरण होता नहीं, जीवको अधिकतर पाप ही याद आते हैं। इसी कारण जीव बहुत घबराता है।

फिर जिस मकानमें आप दस-बीस वर्ष रह चुके हों, उस मकानको छोड़नेपर भी जी अकुलाता है। तब इस शरीर-रूपी मकानसे तो आपका अनेक वर्षोंका सम्बन्ध है। इसी कारण इसको छोड़नेपर अत्यन्त व्याकुलताका अनुभव होता है।

आजसे ही आप किसी सुन्दर मकानके बारेमें तय कर लें कि 'मुझे तो वहाँ जाना है। मुझे तो व्रजमें ही जन्म लेना है। मुझे श्रीकृष्णकी सेवामें जाना है। मुझे अब पति बनना नहीं, पत्नी बनना नहीं। मैंने इस संसारका खूब अनुभव कर लिया है।' सोचिये तो संसारमें आनन्द कहाँ है?

संसारमें जन्म-मरणका भयंकर दुःख हैं। दूसरा दुःख है संयोग-वियोगका। आज जो लोग आपके साथ हैं, उनका संयोग क्या कायम रहनेवाला है? संयोग तो वियोगके लिए ही होता है। संसारका अर्थ ही यह है कि जो क्षण-क्षणमें बदलता हो वही संसार है। संयोगमें जितना सुख होता है, उससे हजार गुना दुःख वियोगमें होता है।

एक दैवी जीव था। जन्ममें ही उसे प्रभुका रंग लगा था। घरमें बेशुमार सम्पत्ति थी। सारी सम्पत्तिका त्यागकर वह वृन्दावन चला गया। वहाँ वह श्रीराधा-कृष्णकी निरन्तर उपासना करता रहा। प्रभुकी सेवा और उनके स्मरणमें वह देह-भान भी भूल गया। पूर्ण इन्द्रिय-संयम रखकर वह अनवरत भक्ति करता रहा। उसके मुखपर अत्यन्त तेज झलकने लगा।

एक बार वृन्दावनमें भ्रमण करते-करते एक राजा तथा उनकी रानी आईं। उस समय वे प्रभुभक्त सन्त वृक्षके नीचे बैठे थे। वे प्रभुकी मानसी सेवामें तल्लीन थे।



वे अपने परमात्माको मनसे रिझाकर प्रसन्न करनेमें लगे थे। अवस्था उनकी लगभग चौबीस-पच्चीस वर्ष की थी। मुखपर दिव्य सौन्दर्यका आलोक बिराजमान था। रानीको उन सन्तके दर्शनकर आश्चर्य हुआ। सोचने लगीं—'इतनी सुन्दर मानव-देह! युवावस्था है इसकी और नंगी काया लिये बैठा है। इसका सुन्दर शरीर मलिन-जर्जर होता जा रहा है। जवानीको लुटाए दे रहा है। इसकी बजाय यदि यह संसारके सुख भोगे तो बेचारा कितना सुखी हो जाय। इसका यह यौवन और सौन्दर्य कितना सार्थक हो सकेगा तब।'

राजा भी उन सन्तसे बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने उनसे अत्यन्त आग्रह करते हुए निवेदन किया—'मेरे राजमहलमें पधारें। संसारके सुखोंसे आप बिल्कुल बेखबर हैं। मेरी इच्छा है कि आप संसार के सुख भोगें। आजसे आप मेरे भाई हुए।'

बहुत आग्रह करके राजा सन्तको राजमहलमें ले आये। उनको स्नान कराया तथा सुन्दर नये-नये वस्त्र पहिनाये। बहुत सुन्दर भोजन उन्हें कराया। सन्त तो पहुँचे हुए थे, उनके हृदयपर भक्तिका पक्का रंग चढ़ा था। पागलोंकी तरह वे रहते थे। राजा उन्हें फिर समझाने लगे—'आप संसारमें आये हैं किन्तु आपने कोई सुख तो भोगा ही नहीं। आपको तो कुछ भान ही नहीं। आप यहीं सुखसे रहें।'

महात्माने कहा—'जो संसारमें सुख भोगते हैं, उनको दुःख होता है कि नहीं।' राजा बोले—'न,न, आपको कोई दुःख नहीं होगा। रानीजीकी बहिनसे आपका विवाह कर दिया जायगा। अपना आधा राज्य आपको दूंगा। फिर आपको क्या दुःख होगा?'

महात्माने पूछा—'आप विवाहकी बात कर रहे हैं। विवाहके बाद तो बच्चे भी होंगे। उनका क्या होगा?' राजा बोले—'इसकी चिन्ता आप बिल्कुल न करें। आपको आधा राज्य मिल जायगा, फिर कैसी चिन्ता? फिर भी यदि आप चिन्तित रहेंगे तो बच्चोंके पालन-पोषणकी जिम्मेदारी मेरी रही। फिर तो कोई बात ही नहीं। आपका स्वरूप देखकर मुझे बड़ा आनन्द हो रहा है। संसारमें आये हो तो सुख भोगो। आपको कोई दुःख नहीं होगा। मैं सारी व्यवस्था कर दूंगा।'



महात्मा बोले—'आप सारी व्यवस्था तो कर देंगे, सुख भी देंगें किन्तु सन्तान होनेके बाद यदि जीवित न रही तो ? सन्तानके न रहनेपर उनके चले जानेका दुःख आपको होगा कि मुझको ?'

राजाको कहना पड़ा—'यह दुःख तो मुझे नहीं होगा । यह तो आपको ही होगा,' महात्मा बोले—'मुझे ऐसा सुख नहीं चाहिये । वृन्दावनमें श्रीराधारानीकी सेवा करता रहा हूँ, उसीमें लीन रहना चाहूँगा । मेरे लिये वही उचित है ।' यह कहकर महात्मा राजमहल-को छोड़कर चले गये ।

इसलिये गोपी प्रभुसे कहती है—'जो सुख भोगता है, उसे इच्छासे या अनिच्छासे दुःख भी भोगना पड़ता है किन्तु संसारसे घबराया हुआ जीव यदि आपके चरणोंमें आ जाय तो आप उसके माथेपर अपना वरद हस्त रखकर उसे जन्म-मरणके त्राससे छुटकारा दिला देते हैं । नाथ ! अपना वरद हस्त हमारे माथेपर रखिये । हमें दर्शन दीजिये । दयित दृश्यताम् ।

प्रभुने कहा—'तुम वरद हस्त माथेपर पधरानेकी बात कहती हो तो फिर तुम सब बैठ जाओ । मैं पीछेसे जाकर एक-एक के माथेपर हाथ पधराता जाऊँगा ।' गोपी बोली—'नहीं, ऐसे नहीं चलेगा ।

व्रजजनार्तिहन् वीर योषितां निजजनस्मयध्वंसनस्मित ।
भज सखे भवत्किङ्करीःस्म नो जलरुहाननं चारु दर्शय ॥६॥

भावार्थ—हे व्रजवासियोंकी पीड़ा हरनेवाले । हे स्त्री-वीर ! अपनी मुस्कराहटसे निज भक्तोंके गर्वका नाश करनेवाले ! हे सखे ! हम आपकी दासी हैं, ऐसा मानकर अपना मनोहर मुख-कमल हमें दिखाओ ।

गोपी प्रभुसे कहती है—'आप पीछेसे आकर हमारे माथेपर हाथ पधराते जायँ, ऐसी हमारी इच्छा नहीं है । नाथ ! आप बहुत चतुर हैं । हम तो गाँवमें रहनेवाली गँवारिन गोपियाँ



हैं। आप हमसे कपटकर रहे हो, यह ठीक नहीं है। आप हमारे सामने आइये। जलरुहाननं चारु दर्शय—हमारे सम्मुख आकर अपना सुन्दर मुखारविन्द हमें दिखाइये तथा बादमें हमारे माथेपर अपना हाथ पधराइये।'

प्रभुने कहा—'अरी सखियो। तुम मुझे बुला रही हो। मुझे आना तो है किन्तु अभी अन्य भक्तोंके काम करनेके लिए जा रहा हूँ। बादमें मैं तुम्हारे पास आऊँगा।'

तब गोपियोंने कहा—'अन्य भक्तोंके काम बादमें सम्पन्न कीजियेगा। हमारा कार्य आप पहले कीजिये। आप हमारे हैं और हम आपकी हैं। आप व्रजजनार्तिहन् हैं। व्रज-जनोंके दुःखोंको दूर करनेके लिये आप प्रकट हुए हैं।'

शास्त्र ज्ञान देता है कि ईश्वर सर्वेश्वर है। सर्वव्यापक भी वह है और सबके अन्तरमें विराजमान है। गोपी कहती है—'ब्रह्म सर्वेश्वर है उसकी हमें बहुत आवश्यकता नहीं है। गोपीजनवल्लभ श्रीकृष्ण ही हमें चाहिए।' इस प्रकार गोपियोंका प्रेम सर्वव्यापक ईश्वरसे है, ऐसी बात नहीं है। गोपियाँ मनमें समझती हैं कि जो यह मानता है कि 'मैं सबसे प्रेम करता हूँ' वह किसीसे प्रेम नहीं करता। प्रेम तो एक ही जगह होता है। सबका उद्धार करनेके लिये श्रीकृष्णका अवतार हुआ है, ऐसा गोपियाँ नहीं मानतीं। वे मानती हैं कि श्रीकृष्ण हमारे लिए ही प्रकट हुए हैं।

उद्धवजी गोपियोंको समझानेके लिए गये तब एक गोपीने कहा उद्धव! श्रीकृष्ण भले ही मथुरा तथा द्वारका चले गये, भले ही उन्होंने हमारा त्याग कर दिया किन्तु रहेंगे वे हमारे ही। तुम लालासे इतना कह देना कि तुम्हारी सेवा चाहे सत्यभामा करें, जाम्बवती करें या कुब्जा करें—चाहे जो करें किन्तु लोग तुम्हें गोपीजनवल्लभ ही कहेंगे। तुम्हें कोई भी आसानीसे सत्यभामावल्लभ, जाम्बवतीवल्लभ या कुब्जावल्लभ नहीं कहेगा।'

श्रीकृष्ण गोपीजनवल्लभ हैं। गोपियाँ कहती हैं—कृष्ण! तुम हमारे हो। हमारे लिए प्रकट हुए हो।' गोपियाँ भगवानपर अपना अधिकार मानती हैं। कहती हैं—'अन्य भक्तोंका कल्याण करनेके लिए पीछे जाना, पहले हमारा कल्याण करनेके लिये आओ।'



पूज्य डोंगरेजी महाराजका

श्रीकृष्ण, व्रज-भक्तोंका उद्धार करनेके लिए प्रकट हुए हैं। प्रश्न आ सकता है कि व्रज-भक्तसे क्या तात्पर्य ? जिनका जन्म गोकुल या वृन्दावनमें हुआ है, क्या वे ही व्रज-भक्त हैं ? शान्तिसे थोड़ा विचार करेंगे तो ध्यानमें आयेगा कि हम सब भी व्रज-भक्त ही हैं। जो वैष्णव हैं, वे मनसे तो गोकुल या वृन्दावनमें ही रहते हैं। आपका शरीर कहाँ है, परमात्मा यह नहीं देखते। आपका मन कहाँ है, यही वे देखते हैं। कितने ही लोग शरीरसे तो मन्दिरमें होते हैं किन्तु मनसे और किसी जगह होते हैं। इस तरह तो मन्दिर-में आना-जाना निरर्थक ही है।

व्रज-भक्तका अर्थ होता है निःसाधक भक्त। 'निःसाधक' शब्दका अर्थ ऐसा नहीं है कि जो सभी साधनोंका त्याग कर दे, वह निःसाधक है। किसी भी विशेष प्रकारका साधन करे, वह भी निःसाधन नहीं है। निःसाधन उसे कहते हैं, जहाँ सब प्रकारके साधन किये जायें, फिर भी साधनका अभिमान न हो। कोई भी साधन नहीं करना है, ऐसा निःसाधन भक्तिमार्गका अर्थ नहीं है किन्तु केवल साधनसे ही कोई परमात्माको प्रसन्न नहीं कर पाया है। श्रीकृष्ण साधन-साध्य नहीं हैं, वे तो समर्पणसाध्य हैं।

न हि साधनसम्पत्त्या हरिस्तुष्यति कस्यचित्।
भक्तानां दैन्यमेवैकं हरितोषणसाधनम् ॥

साधन-सम्पत्तिसे हरि प्रसन्न नहीं होते। भगवानको प्रसन्न करनेके लिये भक्तोंके पास एकमात्र साधन दैन्य ही है। आप अपने अन्तरपर दृष्टि डालेंगे तो आपके ध्यानमें आयेगा कि मेरे पाप तो पहाड़ जैसे हैं। फिर आप साधन कितने ही क्यों न करते हों ? पापोंकी तुलनामें साधन किस गिनतीमें आते हैं ? पूर्वजन्मोंके पापोंकी बात कोई छोड़ भी दे किन्तु क्या किसीने यह भी सोचा है कि अपने वर्तमान जीवनमें उसने कितने पाप किये हैं ? आँखोंसे उसने कितने पाप किये हैं, जीभसे कितने किये हैं तथा मनसे कितने पाप किये हैं ?



अरे ! शास्त्र तो अत्यन्त ही सूक्ष्म हैं । सूर्योदय होनेसे पहले स्नान न किया जाय तो बहुत बड़ा पाप माना जाता है । बहुत-से लोग वैसे तो सुबह जल्दी स्नान कर लेते हैं किन्तु यदि रविवार हो या अन्य कोई अवकाशका दिन हो तब वे सात-आठ बजे तो उठते हैं । वे ऐसा समझते हैं कि आज तो छुट्टीका दिन है । उनको और सबको यह बात समझनी चाहिये कि सूर्योदयसे पहले स्नान न करना पाप है । इसे साधारण पाप नहीं मानना चाहिये । पाप, रोग, अग्नि, शत्रु और ऋण—ये साधारण नहीं होते । साधारण पाप भी किसी समय बहुत बड़ा अनर्थ कर डालता है । पापको जो व्यक्ति साधारण मानता है, वह भक्ति नहीं कर सकता । मानव अपने जीवनमें बहुत-से पाप करता है । उसके हाथोंसे पुण्य तो बहुत ही कम होते हैं तथा वह थोड़ी भक्ति भी यदि करता है तो वह भक्ति भी अभिमानमें बह जाती है ।

साधन अच्छी चीज है किन्तु साधनका अभिमान बहुत खराब है । साधन करनेके पश्चात् अभिमान मर जाय और दैन्य आवे तो मानना चाहिये कि साधन सफल है और भक्ति भी सफला है । अनेक बार मानव दुःखमें दीन बन जाता है किन्तु ऐसे व्तक्तिको जब बहुत सुख प्राप्त हो जाता है तब उसे अभिमान भी हो जाता है । दुःखमें जो दैन्य आता है वह सच्चा दैन्य नहीं है । सुखमें जो दैन्य आता है वही सच्चा दैन्य है दैन्य भक्तिका सिंहासन है ।

बहुत-से लोग अपरस (अस्पृश्यता) का पालन बहुत अधिक करते हैं किन्तु उन्हें यह भान नहीं रहता कि अपरस है किसलिए । अपरस तो वास्तवमें मनको पवित्र रखनेके लिये है । मर्यादा रखने और अपरसका अत्यन्त पालन करनेपर भी आपका मन बिगड़ा हुआ ही रहा आवे तथा आपका हृदय पत्थर-जैसा ही कठोर बना रहे तो ऐसी मर्यादाका क्या उपयोग है ? बहुत-से लोग अपरसका पालन करते हैं किन्तु यदि उनसे कोई थोड़ा-सा भी भिड़ जाय तो उन्हें एकदम क्रोध आ जाता है । अरे ! ऐसा अपरस किस कामका ? अपरस तो मनको कोमल बनानेके लिए होता है, क्रोधादि विकारोंका नाश करनेके लिए अपरस होता है ।



पूज्य डोंगरेजी महाराजका

साधन आप खूब कीजिए किन्तु बार-बार अपने मनकी ओर दृष्टि डालते रहिये। सोचते रहिए–'मेरा मन कैसा है? मेरे मनमें मैं-पन बढ़ रहा है या मर रहा है।' साधन करनेके पश्चात् मैं-पन मरे तो समझ लीजिये कि साधन सफल है। साधन करनेके पश्चात् मैं-पन बढ़े तथा किसी जीवके प्रति मनमें कुभाव आवे–किसी जीवका थोड़ा भी तिरस्कार आप करते रहें तो मान लीजिए कि ठाकुरजीको आपकी ऐसी सेवा नहीं अच्छी लग रही है।

अनेक बार ऐसा होता है कि भक्ति करनेवाला समझने लगता है कि अन्य लोगोंकी तुलनामें मैं बहुत अच्छा हूँ। संसारमें बहुत-से लोग बहिर्मुख हैं, दुष्ट हैं परन्तु मैं तो बहुत भक्ति करता हूँ। मैं श्रेष्ठ हूँ। असलमें ऐसा सोचना उचित नहीं। किसीको हल्का समझनेके लिए भक्ति नहीं की जाती। 'मैं श्रेष्ठ हूँ'—ऐसा समझनेके लिए भी भक्ति नहीं है। साधन खूब कीजिये किन्तु ऐसा मानकर चलिए कि 'मेरे हाथोंसे कुछ अच्छा तो हुआ ही नहीं। मैंने तो कुछ किया ही नहीं।

गोपियाँ खूब ध्यान करती हैं, लालाकी खूब सेवा करती हैं। अपने श्रीकृष्णका वे लगातार स्मरण करती हैं तथा अपनी प्रत्येक इन्द्रियसे भक्तिरसका पान करती हैं फिर भी वे मानती हैं कि 'हमसे कुछ भी अच्छा हुआ ही नहीं। हमें कुछ आता ही नहीं।'

साधन करनेके पश्चात् अभिमान बढ़े तो मान लीजिये कि हमारी भक्तिमें कोई भूल रह गई है। अभिमानसे हृदय पत्थरसे भी कठोर होता है तथा विकार-वासनाओंको लादे-लादे वह टेढ़ा भी हो जाता है। जिसका हृदय टेढ़ा है तथा कठोर है, उसके हृदयमें परमात्मा नहीं आते। कारण यह है कि श्रीकृष्ण अत्यन्त कोमल हैं कठोर, टेढ़े और संकुचित हृदयसे वे दूर रहते हैं। परमात्माका हृदयमें प्रवेश कराना हो तो हृदयको विशाल और कोमल बनाइये। कोमल और विशाल हृदयमें रमना परमात्माको रुचता है। श्रीकृष्ण-प्रेम हृदयको विशाल बनाता है, कोमल बनाता है। श्रीकृष्ण-प्रेमी भक्त, परमात्माका स्मरण करते-करते सभीमें प्रभुका दर्शन करता है। उसका हृदय अत्यन्त विशाल हो जाता है।



जिसका हृदय विशाल है, वह क्रोध नहीं करता तथा अधिकतर दूसरोंके दोष भी उसकी दृष्टिमें नहीं आते और यदि कभी दोष दिखाई भी देते हैं तो उसे दोषी व्यक्तिसे घृणा नहीं होती। वह जीव किसीका भी तिरस्कार नहीं करता। जिसका हृदय विशाल होता है, उसे अभिमान कभी छूता ही नहीं। जब हृदय संकुचित होता है तभी उसमें अभिमान भी आता है। इसलिये नित्यप्रति अपने भीतर दृष्टि डालते रहिये। दस-पाँच क्षणोंके अन्तरपर अपने आपेको टटोलते रहिए। साधारण मानव, बाहरकी ओर तो देखता है किन्तु अपने भीतर दृष्टि डालता नहीं। जबतक मनुष्य संसारसे बहुत प्रेम करता है तबतक वह बहिर्मुख ही रहता है और उसकी दृष्टि बाहरकी ओर ही रहती चली आती है।

श्रीकृष्ण-प्रेमका जब उदय होता है तब दृष्टि अन्दरकी ओर खुलती है यानी अन्तर्दृष्टि जाग्रत हो जाती है। भक्ति यदि ठीक-ठीक हो तो मानव, अन्तर्मुखी हो जाता है। अनेक बार मनुष्य भक्ति करता है किन्तु उसे भक्तिमें आनन्द नहीं आता। भक्तिमें आनन्द न आए तो मान लीजिए कि 'हमारी भक्तिमें—सेवामें कोई भूल रह गई है। हमसे भक्ति ठीक-ठीक नहीं हो रही।'

गोपियाँ तो श्रीकृष्ण-प्रेम स्वरूपा ही हैं। उनका हृदय विशाल है, सरल है तथा कोमल है। उनके हृदयमें श्रीकृष्ण विराजे हुए हैं। उनकी दृष्टि, हृदयके अन्दर विराजे हुए प्रियतम कृष्णकी ओर लगी रहती है और इसीलिये श्रीकृष्ण-भक्तिमें उन्हें खूब आनन्द आता है। गोपियाँ निःसाधन भक्त हैं। उनके हृदयमें परमात्माका स्वरूप स्थित है। साधनका अभिमान उनके हृदयका स्पर्श नहीं करता। इसी कारण वे भगवान्से कहती हैं—'प्रभो! आपके जो दूसरे भक्त हैं, वे तो किसी-न-किसी साधनके सहारे जीवित रहते हैं परन्तु हमारे पास तो किसी भी साधनका आधार नहीं है। हम तो आपके सहारे ही जीवित रहती हैं। इसलिए अन्य भक्तोंके कार्य आप बादमें सँभालिए हमारा काम आप पहले कीजिए अर्थात् हमारी इच्छाको आप पहले पूरी कीजिये।' गोपियोंकी ऐसी निष्ठा है कि श्रीकृष्ण हमारे होकर भी हमें छोड़कर अन्य जगह जायँ, यह हमें कैसे अच्छा



लग सकता है? हम श्रीकृष्णकी हैं, श्रीकृष्ण हमारे हैं। वे श्यामसुन्दर व्रजजनार्तिहन् हैं।'

गोपियोंने श्रीकृष्णको जो दूसरा सम्बोधन दिया है, वह है—योषिताम् वीर। श्रीकृष्ण, स्त्री-वीर हैं। जगत्‌में अधिकतर लोग स्त्री-वीर होते हैं। बहुत-लोग ऐसा नियम अपनाते हैं कि स्त्रीका स्पर्श वे नहीं करेंगे तथा स्त्रीको वे देखेंगे भी नहीं। वैसे आरम्भमें साधकोंके लिये यह नियम भी आवश्यक है किन्तु श्रीकृष्ण तो साधक नहीं हैं। वे साध्य हैं, ईश्वर हैं। परमात्मा हैं। वे स्त्रियोंसे घबराते नहीं। स्त्रियोंमें वे वीर हैं। स्त्रियोंके समाजमें रहनेपर भी वे पूर्ण निर्विकारी हैं।

द्वारका-लीलामें शुकदेवजी महाराजने वर्णन किया है—पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनङ्ग-बाणैर्यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न शेकुः। द्वारकामें सुन्दर राजमहल हैं, सोनेके पलंग हैं। द्वारकानाथ उन पलंगोंपर शयन करते हैं। वहाँ रुक्मिणीजी उनके चरणोंकी सेवा करती हैं, सत्यभामाजी ताम्बूल यानी पान लाती हैं। ये रानियाँ अत्यन्त सुन्दर हैं। दिव्य शृंगार किये हुए वे रहती हैं। वहाँ और भी दूसरी सुन्दर रानियाँ अपने हाव-भाव तथा कटाक्षोंसे श्रीकृष्णको अपने वशमें करनेका प्रयत्न करती रहती हैं। उस समय कामदेव, श्रीकृष्णको बाण मारता है। प्रभुने पहले कामदेवसे कहा ही था—'बेटा! तेरी जब इच्छा हो तब आ जाना।' तो इसीलिये आज कामदेव युद्ध करनेके लिये आया है। रानियोंका सौन्दर्य और शृंगार देखकर कामदेवका मन भी चंचल हो गया है। द्वारकाकी रानियाँ कोई साधारण रानियाँ तो हैं नहीं। उनका तो स्वरूप ही अलौकिक है तथा शृंगार भी उनका अत्यन्त दिव्य है। रानियोंकी इच्छा भी है कि श्रीकृष्ण हमारे अधीन हो जायँ। हाव, भाव और कटाक्ष—ये स्त्रियोंके तीन बाण हैं। इनका विशद वर्णन करनेकी आवश्यकता तो इस प्रसंगमें है नहीं। इन्हीं बाणोंका सहारा लेकर कामदेव, श्रीकृष्णको घायल करनेका प्रयत्न करता है। अनेक रानियाँ उस समय एकान्तमें अपने हाव-भावसे श्रीकृष्णको वशमें करनेका प्रयत्न करती हैं किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिलती।



श्रीकृष्ण, कामके अधीन नहीं हुए। श्रीकृष्णसे कामका स्पर्श हुआ ही नहीं क्योंकि वे योषिताम् वीर हैं। स्त्री समाजमें रहनेपर भी वे पूर्ण निर्विकारी हैं। जंगलमें पेड़के नीचे बैठकर संयम रखना शायद सम्भव हो सकता है। कह सकते हैं कि वहाँ संयम उतना असम्भव नहीं है। कारण कि आँखों तथा मनको चंचल करनेवाली कोई चीज वहाँ दिखाई नहीं देतीं। भिखारीको जब खानेको कोई चीज नहीं मिलती तो वह भी उपवास कर लेता है। भिखारी यदि एकादशीका व्रत करता है तो उसका कोई विशेष अर्थ नहीं है। उसके पास तो कुछ है ही नहीं। उसे कुछ मिला नहीं इसलिए वह उपवास करता है। बहुत कुछ पासमें रहनेपर भी जिसका मन विषयोंकी ओर न दौड़े, ऐसे व्यक्ति-का उपवास बिल्कुल ठीक है। गोपियोंके जीवन-धन श्रीकृष्ण, असंख्य स्त्रियोंके बीचमें रहकर भी पूर्ण निष्काम रहते हैं।

गोपियाँ श्रीकृष्णसे कहती हैं—'आप योषिताम् वीर हैं तो फिर हमें छोड़कर आप अन्तर्द्धान क्यों हो गये हैं? जिसके मनमें भीरुता होती है, वह स्त्रियोंको छोड़कर दूर चला जाता है पर आप तो निर्भय हैं। आपको क्या ऐसा भय लगता है कि हमारे बीचमें क्रीड़ा करनेसे आपके मनमें कोई विकार जाग उठेगा? आप तो महान् वीर हैं और पूर्ण निर्विकारी हैं।'

प्रभुने कहा—'अरी सखियो! मेरे मनमें कोई विकार नहीं और विकार आयेगा, ऐसा डर भी नहीं किन्तु मुझे ऐसा लगता है कि तुम लोगोंके मनमें विकार है और इसीलिये मैं तुम्हें छोड़कर अन्तर्द्धान हो गया हूँ।'

तब गोपियोंने कहा—'ठीक है। शायद हमारे मनमें विकार हो किन्तु इस विकार का नाश करनेकी शक्ति तो आपकी मन्द मुस्कान में है। निजजनस्मयध्वंसनस्मित। घरमें यदि कोई व्यक्ति पागल हो जाय तो उसे छोड़कर घरसे भाग जाना तो उचित नहीं है। पागल व्यक्तिको बाँधकर रखे, उसे दण्ड दे, उसके पागलपनको शान्त करनेका प्रयत्न करे—यही उचित है। हममें शायद विकार हो किन्तु आप तो हमारे हैं—निज जन हैं।



आप एक बार प्रेमसे हमारी ओर देखें, मन्द-मन्द मुस्करायें तथा हमारे विकारको दूर करें किन्तु आप हमें छोड़कर जायें, यह आपको शोभा नहीं देता।'

श्रीकृष्णकी दृष्टिमें विकार-वासनाओंका विनाश करनेकी शक्ति है। वे जिसकी ओर प्रेममयी दृष्टि डालते हैं, उसके भी मनमें बसी विकार-वासनाओंका विनाश हो जाता है। श्रीकृष्ण जिसको देखकर मन्द-मन्द मुस्कराते हैं, उसका भी अभिमान गल जाता है।

गोपी कहती है—'हमारे हृदयमें रहनेवाले अभिमानका विनाश करनेके लिये यदि अन्तर्द्धान हुए हैं, तो यह बिलकुल उचित नहीं है। आप यदि एक बार हमें देखकर मन्द-मन्द मुस्करा दें, तब भी इस कामका विनाश तो हो ही जायगा। आप कृपा करें। दयित दृश्यताम्। हमें आप दर्शन दें—हमारे सम्मुख प्रकट हो जायें।'

कितने ही ज्ञानी महापुरुष ऐसा मानते हैं कि जो आँखें केवल चमड़ीको ही देखती हैं, उन आँखोंको परमात्माका दर्शन नहीं हो सकता। बाहरकी आँखोंको चर्मचक्षु कहते हैं तथा अन्दरकी आँखोंको ज्ञानचक्षु कहते हैं। ज्ञानचक्षुओंके द्वारा ही ईश्वरके दर्शन हो सकते हैं। चर्मचक्षु तो ईश्वरको देख ही नहीं सकते किन्तु गोपी कहती है—'मेरी आँखोंके आगे प्रकट हो जाओ।' गोपीके लिए तो बाहर और अन्दरकी आँखें एक-जैसी हैं। उनके चक्षु, प्रेमचक्षु हैं, दिव्य चक्षु हैं।

गोपियोंको श्रीकृष्ण प्रत्यक्ष दर्शन नहीं दे रहे थे, इसलिए एक गोपीके मनमें भाव आया कि कदाचित् मेरा कोई पाप होगा, जिसके कारण श्रीकृष्ण मुझे दर्शन नहीं दे रहे। इसीलिए वह गोपी कहने लगी—

प्रणतदेहिनां पापकर्शनं तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम्।
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम् ॥७॥

भावार्थ—आपको जो प्रणाम करते हैं, उन जीवोंके पापोंको दूर करनेवाले, गायोंके पीछे चलनेवाले, लक्ष्मीजीके निवास-रूप, कालियनागके फणोंपर अर्पित जो आपके चरण-



कमल हैं, उन्हें हमारे हृदयोंपर पधराइये तथा हमारे भीतर सोये हुए कामका विनाश कीजिये।

गोपियाँ भगवान्‌को मनाती हैं—'हमारा कोई पाप है और इसीलिए आप कदाचित् स्वरूपको छिपा रहे हैं किन्तु पापोंका विनाश करनेकी शक्ति तो आपमें है। हम तो आपको उपाय भी बतला रही हैं।'

कितने ही लोगोंको शङ्का होती है कि पापोंका नाश होनेके पश्चात् परमात्मा आते हैं या परमात्माके आनेके पश्चात् पापोंपा नाश होता है? इन दोनोंमें ठीक बात क्या है? कितने ही ग्रन्थोंमें लिखा है कि सम्पूर्ण पापोंका विनाश होनेपर तथा हृदयके गंगाजलके समान निर्मल होनेपर ही परमात्माके दर्शन होते हैं परन्तु साथ ही किन्हीं ग्रन्थोंमें ऐसा उल्लेख भी आता है कि भगवान् जब हृदयमें आते हैं तब पाप दूर हो जाते हैं तथा हृदय निर्मल हो जाता है।

महापुरुषोंने निर्णय किया है कि परमात्माके दर्शनमें विघ्न डालनेवाले बाधक तत्त्व तीन हैं। ये हैं—मल, विक्षेप तथा आवरण। इनमें-से मल तथा विक्षेप इन दो-को तो जीव प्रयत्न करके दूर कर सकता है परन्तु इसके बाद आवरणका भंग तो ईश्वरके द्वारा ही होता है। जीव-ईश्वरका मिलन एक-पक्षीय नहीं है। मल और विक्षेपसे पीछा छुड़ा-कर तथा हृदयको शुद्ध बनाकर जब जीव परमात्मासे मिलनेके लिये तत्पर होता है, तब परमात्मा उसके सम्मुख चलकर आते हैं तथा मायाका पर्दा हटाकर उस जीवको अपना लेते हैं।

श्रीकृष्णकी ओर जानेके बजाय मन, संसारके विषयोंमें जाता है। यही मनका मल है। मन अधिकतर मक्खी-जैसा ही होता है। केसर-मिश्रित सुन्दर चन्दनको छोड़कर मक्खी अधिकतर अपवित्र पदार्थोंकी ओर ही दौड़ती है। शान्तिसे विचार करेंगे तो आपके ध्यानमें यह बात आयेगी कि श्रीकृष्णके बिना सब-कुछ कूड़ा-कचरा जैसा ही है और यह मानव-मन इस कचरेकी ओर ही जाता है। यही इस मनका मल है।



परमात्माके दर्शनमें विघ्न डालनेवाला दूरा बाधक तत्त्व है विक्षेप। किसी समय मन, प्रभुमें स्थिर हो जाता है किन्तु बादमें विक्षेप भी आ जाता है। संसार-सुखका संकल्प करनेकी मनको अनेक जन्मोंसे टेव पड़ी हुई है। संसारमें रहनेसे मन नहीं बिगड़ता। वह बिगड़ता है संसार-सुखका चिन्तन करनेसे। मन ईश्वरको छोड़कर लौकिक मनोराज्य बना लेता है, यही विक्षेप है। संसार दिखाई दे, यह बुरी बात नहीं है किन्तु संसारका चिन्तन होता रहे, यह बुरी बात है। कचरा दिखाई दे तो कोई बात नहीं किन्तु कचरेका ध्यान बना रहे, यह बुरी बात है।

अपने मनको निरन्तर भक्तिरसमें सराबोर रखकर साधकको मल तथा विक्षेपका विनाश करना होता है। आवरणका भंग परमात्मा करते हैं। जीवका प्रयत्न तथा ईश्वरकी कृपा—इन दोनोंके आधारपर ही जीव और ईश्वरका सुभग मिलन होता है।

गोपियाँ मल तथा विक्षेपको दूर करके आई हैं। आरम्भमें ही गोपियोंने कहा है कि हमारे मनमें श्रीकृष्णके अतिरिक्त दूसरा कुछ है ही नहीं। आप अपने घरमें किसीको रखें, यह बुरी बात नहीं है किन्तु आपको अपने मनमें श्रीकृष्णके अतिरिक्त किसी अन्यको नहीं बसाना होगा। यदि किसी अन्यको आप अपने मनमें रखेंगे तो वह आपके दुःखका कारण बनेगा।

गोपियाँ भगवान्से कहती हैं—'हमारे मनमें आपके (श्रीकृष्णके) अतिरिक्त अन्य कुछ है ही नहीं। संत्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलं (प्राप्ताः)—हम सम्पूर्ण मल-विक्षेपका त्याग करके आई हैं। हमने अपना काम कर लिया है। आवरण यानी पर्दा दूर करना—यह आपका काम है। इस पर्देको हटाकर आप हमें प्रत्यक्ष दर्शन दें। प्रणतदेहिनां पापकर्शनम्। जो आपके चरणोंमें प्रणत होते हैं, नमित होते हैं, आपके चरणोंका वन्दन करते हैं, उनके पापोंको आप जला डालते हैं। हमारे पापोंको जला डालनेकी शक्ति आपके पास है।'



आप यदि परमात्माका निरन्तर वन्दन करनेकी आदत डाल लें तो आपके पाप जल जायेंगे। दो-चार मिनट ही सही, किन्तु इतनी देरतक ही ठाकुरजीका वन्दन कीजिये। मनसे वन्दन कीजिये, हो सके तो आँखोंसे वन्दन कीजिये। वाणीसे भी वन्दन कीजिए। 'हरये नमः, हरये नमः'—बोलनेका अभ्यास कीजिये। पाप पहले वाणीमें आते हैं। बादमें वे व्यवहारमें आते हैं। वाणीसे परमात्माके नामका जप बार-बार कीजिये। परमात्माका वन्दन कीजिये। बार-बार वन्दन करनेसे देहाभिमान मरता है। पापका मूल, देहाभिमान ही है। 'मैं पुरुष हूँ' 'मैं स्त्री हूँ' 'मैं पण्डित हूँ' 'मैं शास्त्री हूँ'—ऐसे देहाभिमान को लेकर ही मनुष्य पाप करता है। जो कोई परमात्माके चरणोंमें हृदयसे झुकता है, उसका अभिमान मरता है तथा उसके पाप जलते हैं। बादमें उसे पाप करनेका अवसर ही नहीं मिलता। उसके हाथोंसे फिर पाप होते ही नहीं।

वन्दन-भक्ति हर समय हो सकती है, हर स्थानपर हो सकती है। आधी रातको कोई सेवा करे तो ठाकुरजीको परिश्रम होगा किन्तु वन्दन, रातके बारह बजे हो सकता है। पालकीमें बैठकर या रास्ता चलते-चलते सेवा नहीं हो सकती, किन्तु वन्दन हो सकता है। वन्दन करनेसे तन और मनको थोड़ा भी त्रास नहीं होता। वन्दन करनेमें पैसा भी खर्च नहीं होता, किन्तु मानव वन्दन नहीं करता। उसके अन्दर रहनेवाला अभिमान उसे जकड़कर रखता है। मानो वह कहता है, "तू झुकना नहीं।" और फिर कुछ लोग झुकते भी हैं तो वे कपटसे झुकते हैं—

'नमन नमनमें फरक है, नमन कपटकी खान।'

'मैं छोटा हूँ, दीन हूँ, कामी हूँ, पापी हूँ, अधम हूँ, लायक न होनेपर भी प्रभु-कृपा से सुखी हूँ—ऐसे दैन्य-भावके साथ जो वन्दन किया जाय, वही ठीक होता है। आपका पाप छूटे, यदि ऐसी इच्छा हो तो किसी भी दिन ऐसा न मानियेगा कि 'मैं निर्दोष हूँ।' मनुष्यमें यदि बड़े से बड़ा कोई दोष है तो वह है अपनेको दोषी न मानना। मानव अपनेको निर्दोष समझता है। उसे ऐसा लगता है कि 'मुझसे ऐसी कोई खास भूल हुई ही नहीं और



यदि कोई भूल हुई भी होगी तो वह साधारण है। उसे बड़ी भूल नहीं कहा जा सकता। मन्दिरमें ग्यारह रुपये भेंट कर दूंगा तो फिर भगवान मुझे क्षमा कर देंगे।'

कितने ही लोग ऐसा समझते हैं कि व्यवहारमें थोड़ी भूल भी होती है और पाप भी करना पड़ता है। उनकी यह कल्पना बिल्कुल गलत है। व्यवहारमें पाप करना ही पड़े, ऐसा नहीं है। निष्पाप भावसे भी व्यवहार किये जा सकते हैं। पापको साधारण मत मानिये। साधारण चिनगारी भी किसी समय सब कुछ जलाकर खाक कर डालती है। पाप और अग्नि-दोनों एक जैसे हैं। 'मेरे हाथसे बिल्कुल पाप न हो'- ऐसी इच्छा हो तो प्रभुका लगातार वन्दन कीजिये। वन्दन भक्तिकी महिमा बहुत बड़ी है-

> एकोऽपि कृष्णस्य कृतप्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः।
> दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय॥

श्रीकृष्णको केवल एक बार किये गए प्रणामकी तुलना दशाश्वमेध यज्ञसे भी नहीं की जा सकती। दशाश्वमेध यज्ञ करनेवालेका पुनर्जन्म होता है किन्तु कृष्ण-प्रणामी तो प्रभुके चरणोंमें रम जाता है। जो निरन्तर वन्दन करता है, उसके पाप जल जाते हैं।

पापका मतलब है क्या? चोरी, व्यभिचार, हिंसा- ये सब तो महापाप हैं। सभीकी धारणा ऐसी है। ज्ञानी पुरुष तो भेद-दृष्टिको भी पाप मानते हैं। वे अद्वैत भावमें स्थिर रहते हैं। ऐसे ज्ञानी लोग मानते हैं कि हमारे अन्दर जो चेतन आत्मा है, वह और सबोंमें भी है। इसीलिये वे सबोंमें अपनेको तथा अपने भीतर सबको देखते हैं। जहाँ भेद है वहाँ ही भय है। वहीं राग-द्वेष भी हैं। ज्ञानी महापुरुष जगतको अभिन्न भावसे देखते हैं। ज्ञान-मार्गमें एककी ही सत्ता है। ईश्वर-तत्त्व एक ही है और वह तत्त्व सभीमें विराजमान है। जो भेद दिखाई देता है, वह मायाके कारण ही दिखाई देता है।

आकाशमें सूर्यनारायण एक ही हैं किन्तु जब आप छतपर घड़ोंमें पानी भरकर रखेंगे, तब आपको प्रत्येक घड़ेमें सूर्यनारायण अलग-अलग दिखायी देंगे। घड़ोंमें सूर्य-



नारायण दिखायी देते हैं, यह क्या सच है ? घड़ोंमें लुटिया डालकर जल बाहर निकाल दीजिए तथा बादमें देखिये कि घड़ेमें जो सूर्य थे, वह कहाँ गये ? घड़ेमें सूर्य थे, ऐसा बोलना भी ज्यादा ठीक नहीं। घड़ेमें जो दिखायी दे रहा था, वह तो प्रतिबिम्ब था। सूर्य तो एक ही है किन्तु जलकी उपाधिके कारण यह अनेक रूपोंमें दिखायी देता है। उसी प्रकार अन्तःकरणकी उपाधिके कारण एक ही परमात्म-तत्त्व अनेक रूपोंमें दिखाई देता है।

ज्ञानमार्गमें भेद-दृष्टि ही पाप है। जहाँ भेद-भाव आया, वहीं सम्पूर्ण विकार जाग उठते हैं, मोह उत्पन्न हो जाता है, भय आकर खड़ा हो जाता है। जहाँ अभेद है, वहीं अभय है। माँ और बेटी—ये दो होनेपर भी एक ही हैं। क्या किसी बेटीको माँ-से डर लगता है ? परन्तु बहूको अपनी सासुजीसे डर लगता है। कारण यही है कि सास और बहू एक घरमें रहने पर भी अलग-अलग हैं। जहाँ भेद है, वहीं भय भी है। जहाँ अभेद है, वहाँ आनन्द है। ज्ञानमार्गमें भेद-भावको पाप माना गया है।

भक्तिमार्गमें श्रीकृष्णको भूलना ही पाप है। परमात्माका जिस क्षणमें भी विस्मरण होता है, उसी क्षणमें पाप भी होता है। श्री श्रीधर स्वामीने अपनी टीकामें लिखा है कि जो परमात्मासे दूर ले जाय और जो लक्ष्यको भुला दे वही पाप है। जाना तो है परमात्माके चरणोंमें परन्तु पाप ले जाता है जन्म-मरणके चक्करमें।

कर्म-मार्गमें धर्मके त्यागको ही पाप माना गया है। जिसका जो धर्म प्रभुने निश्चित किया है, उसका त्यागकर जो परमात्माकी आज्ञाको भंग करता है, अपने कर्त्तव्यका ठीक-ठीक पालन नहीं करता तथा धर्मका पालन नहीं करता, वह कर्म-मार्गमें पाप कमाता है।

ज्ञान-मार्गमें भेद-दृष्टि पाप है, भक्ति-मार्गमें श्रीकृष्णको भूलना पाप है तथा कर्म-मार्गमें स्वधर्मका लोप कर देना ही पाप है।



गोपियाँ भगवान्‌को मनाती हैं—'प्रभो ! हमारे पापोंको दूर करनेकी सामर्थ्य आपके चरणोंमें है। नाथ ! आप जल्दी पधारें।' तब भगवान् गोपियोंसे कहते हैं—'अरी सखियो ! तुम मुझे बुला तो रही हो परन्तु तुम मुझे समझाती क्या हो ? जो बुलाये, उसीके पास क्या मुझे जाना चाहिए ? क्या मैं तुम सबके लिए सुलभ हूँ।

गोपी कहती है—'नाथ ! आपके चरण तो तृणचरानुगम् अर्थात् गायोंके लिए भी सुलभ हैं गायोंके पीछे-पीछे आप नंगे चरणोंसे चलते हैं।' तब श्रीकृष्ण कहते हैं—'क्या तुम मुझे गायोंके पीछे दौड़नेवाला कोई ग्वाला समझती हो ?'

गोपी कहती है—'न, न, ऐसा नहीं हमने आपसे विवेकपूर्वक प्रेम किया है। आपके चरण तृणचरानुगम् तथा श्रीनिकेतनम् हैं—लक्ष्मीजी इन चरणोंको अपनी गोदमें रखकर इनकी सेवा करती हैं। आपके इन चरणोंमें लक्ष्मीका निवास है। आपके चरण अत्यन्त मंगलमय हैं। कृपा करके अपने ये चरण हमारे हृदयपर पधराइये।'

प्रभुने कहा—'अरी सखियो ! तुम मेरे चरणोंको अपने हृदयोंपर पधरानेकी बात करती हो किन्तु मेरे चरण तो बहुत कोमल हैं तथा तुम्हारे हृदयोंमें अभिमान-रूपी जहर भरा हुआ है। तुम्हारा जहर कहीं मुझे जला दे तो ?'

गोपीने कहा—'फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजम्—आपने कालियनागके फनोंके ऊपर अपने चरण पधराये तब कालियनागका जहर अमृत बन गया। आपके चरणोंमें ऐसी शक्ति है कि इनके स्पर्शसे जहर भी अमृत बन जाता है। अपने मङ्गलमय चरणोंको हमारे हृदयोंपर स्थिर कीजिये, जिससे कि मेरे सम्पूर्ण पाप जल जायेंगे, कामका नाश होगा और मेरा हृदय विशुद्ध हो जायगा—

कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम्। हृदि शेते इति हृच्छयः कामः। हृच्छयं कामं कृन्धि।

एक बार काम, भगवान् शङ्करके पास गया था। शिवजीने तीसरी आँख खोलकर इसकी ओर देखा। काम अत्यन्त भयभीत हो गया और वहाँसे भागा और तबसे वह हमारी बुद्धिमें आकर सो गया।'



भगवान् शंकरसे डरा हुआ काम एक-एककी बुद्धिमें आकर सो गया है। काम मरा नहीं है। इसे मारनेके लिये ऋषि महान् तपस्या करते हैं, भगीरथ प्रयत्न करते हैं फिर भी यह काम मरता नहीं। यह हृदयके अन्दर सोया ही रहता है—हृदि शेते इति हृच्छयः। काम मरा नहीं, वह तो सोया हुआ है। गोपी कहती है—'इस कामको आप निकाल बाहर कीजिये। आप इसका विनाश कर दीजिये—कृन्धि।'

थोड़ा विचार करेंगे तो ध्यानमें आएगा कि यह सब किसी-किसी समय हमारे भीतर भी होता रहता है। आप ब्राह्ममुहूर्त्तमें स्नान करके, पवित्र वस्त्र धारण करके भगवान्का ध्यान करनेके लिए बैठते हैं। मनमें श्रीकृष्णसे मिलनेकी भावना रखते हैं—'आज मुझे अपने ठाकुरजी से मिलना है। मैं प्रभुकी शरणमें जाऊँगा। मेरे भगवान् मुझे हाथोंसे उठाकर मेरा आलिङ्गन करेंगे। मैं आज श्रीकृष्णसे मिलकर एक हो जाऊँगा। मैंने इस संसारका अनुभव कर लिया है। अब मुझे किसी मनुष्यसे मिलना ही नहीं। मुझे तो परमात्मासे ही मिलना है।'—आप ऐसा संकल्प रखकर प्रभुका ध्यान करनेके लिये बैठते हैं किन्तु तभी अन्दर विराजे हुए भगवान् आपसे कहते हैं—'तू किसी स्त्रीसे मिलनेके लिए जा, पुरुषसे मिलनेके लिए जा। उनसे तुझे सुख मिलेगा।'

गोपीको तो सुख नहीं चाहिए। वह तो सम्पूर्ण सुखोंका त्याग करके आई है। वह कहती है—'मेरे हृदयमें रहनेवाले कामका विनाश कर दीजिये।'—श्री श्रीधर स्वामीने इस श्लोकपर विचारते हुए लिखा है कि गोपियोंके हृदयमें काम है, ऐसा कहना भी ठीक नहीं है। गोपी कामिनी नहीं हैं तो फिर—'हृच्छयं कामं कृन्धि' कैसे कहती हैं? किसी मनुष्यसे मिलनेकी इच्छाको काम कहते हैं तथा परमात्मा श्रीकृष्णसे मिलनेकी इच्छाको प्रेम कहते हैं। गोपी तो पति-पुत्र सभीको छोड़कर परमात्मासे मिलने आई हैं। गोपी कामिनी नहीं हैं जिससे कि उनके हृदयमें रहनेवाले कामका विनाश श्रीकृष्ण करें किन्तु गोपी जानती हैं कि श्रीकृष्णकी हमसे मिलनेकी इच्छा है। श्रीकृष्णकी वंशी सुननेके पश्चात गोपियोंको निश्चय हो गया कि परमात्मा हमें बुला रहे हैं। ईश्वरकी ऐसी इच्छा रहती



है कि 'जीव मेरे पास आये। जीव मेरा अंश है। मेरा होनेपर भी मुझे छोड़कर यह संसारमें गया है।' गोपियाँ जानती हैं कि हमसे मिलकर श्रीकृष्ण सुखी होते हैं। गोपियोंकी सुख भोगनेकी इच्छा नहीं है। उनकी तो श्रीकृष्णको सुखी करनेकी इच्छा है।

गोपी-भाव सर्वोच्च भाव है। क्या गोपियोंके हृदयमें काम है? नहीं, नहीं गोपियाँ तो अपने ऊपर केवल आरोप लगाती हैं कि 'हमारे भीतर काम है, हमारे मनमें वासना है।'

हमारे घरमें कोई बड़े आदमी आयें तो हम उनका भली प्रकार स्वागत करेंगे। सुन्दर मिष्ठान्न तथा कई अन्य चीजें बनायेंगे। अतिथि तब शायद कहें—'आपने मेरे लिए इतनी सारी चीजें किसलिए बनायी हैं?'—तब हम यही कहेंगे—'ये चीजें हमने आपके लिए नहीं बनायी हैं। ये तो हमने अपने खानेके लिए बनायी हैं।' यदि आप ऐसा कहें—'आपके खानेके लिए हमने यह मोहनभोग बनाया है'—तो अतिथिको ऐसा लगेगा कि इससे तो अच्छा था कि मैं बाजारमें भोजन कर लेता।

गोपियाँ जानती हैं कि हमसे मिलकर श्रीकृष्णको सुख होगा किन्तु श्रीकृष्ण सकाम हैं, ऐसा वे नहीं कहतीं। व्रज-भक्त तो कहते हैं 'मैं सकाम हूँ, श्रीकृष्ण निष्काम हैं।' तत्वदृष्टिसे गोपियाँ कामिनी नहीं हैं। वे तो निष्काम हैं किन्तु श्रीकृष्णको सुखी करनेके लिए वे अपने ऊपर कामका आरोप लगा लेती हैं। गोपियोंकी बातें सुनकर ठाकुरजीको बहुत आनन्द मिलता है। इसीलिए उन्होंने कहा है—'मैं तुम्हारा ऋणी हूँ। तुम्हारे ऋणसे मेरा छुटकारा कभी होनेवाला नहीं।'

प्रभुने गोपियोंसे कहा—'अरी सखियो! तुम मेरे पीछे क्यों पड़ी हो? क्यों बार-बार मुझसे यह कह रही हो कि आप अपने चरण हमारे हृदयपर पधरायें?'

गोपियाँ कहती हैं—'हमारे हृदयमें यह भावना तो आपने ही जगायी है। अब तो इस भावनाकी पूर्ति भी आपको ही करनी है। आपकी मधुर वाणी सुनकर हम पागल हो गई हैं।'



मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण ।
विधिकरीरिमा वीर मुह्यतीरधरसीधुनाऽऽप्यायस्व नः ।।८।।

भावार्थ—हे वीर ! हे कमलनयन ! आपकी सुन्दर वाक्यावलि तथा विद्वानोंके मनको रुचनेवाली आपकी मधुर वाणी से मोहित हुईं इन दासियोंको अधरामृतसे तृप्त कीजिए ।

यहाँ श्रीकृष्णको सम्बोधन दिया गया—पुष्करेक्षण । 'पुष्कर' शब्दका अर्थ होता है कमल । भगवानकी आँखें कमल-जैसी शीतल हैं, आह्लाद देनेवाली हैं, आनन्द देनेवाली हैं ।

ज्ञानका परिचय आँखोंके द्वारा मिलता है । कितने ही लोग पुस्तकें पढ़कर ज्ञानी होते हैं किन्तु उनकी आँखें अधिक शुद्ध नहीं होतीं । जिसकी दृष्टि शुद्ध है, उसका ही ज्ञान सच्चा है । नेत्र, ज्ञानके प्रतीक हैं तथा मनके प्रतीक-रूप दर्पण भी हैं । आँखोंके द्वारा मानवकी परीक्षा होती है । आँखोंके द्वारा पता चलता है कि अमुक मनुष्य कैसा है ? उसके मनमें विकार किस प्रकारके हैं ? मन उसका शुद्ध है या बिगड़ा हुआ है ? इन सब बातोंकी जानकारी चतुर मनुष्यको आँखोंके द्वारा ही मिलती है। आँखोंको देखकर मनुष्यके मनके संकल्प—विकल्पोंका भी पता चलता है ।

आँखोंमें पीलापन दिखायी दे तो समझ लीजिये कि मनुष्य लोभी है । कालापन अधिक दिखायी दे तो समझिये कि मनुष्य कामी है किन्तु यह सब जानकरी अपने मनमें ही रखिये । किसीसे ऐसा न कहिये कि 'कथामें हमने जैसा सुना था, वैसी ही आपकी आँखें दिखायी देती हैं'—सज्जन कौन है तथा दुर्जन कौन है, इस बातके विवेकको मनमें ही रखिये । ऐसा मत बोलिये कि अमुक व्यक्ति सज्जन है तथा अमुक व्यक्ति दुर्जन है । जगत्से विवेकपूर्वक व्यवहार कीजिये । ऐसे ही किसीकी आँखोंमें लालिमा दिखायी दे तो मान लीजिये कि वह व्यक्ति क्रोधी है । शास्त्रमें लिखा है कि क्रोधका रंग लाल है, लोभका रंग पीला है तथा कामका रंग काला है ।



पूज्य डोंगरेजी महाराजका

श्रीकृष्णकी आँखें अत्यन्त उज्ज्वल हैं। उनकी आँखोंसे प्रेमामृत टपकता है। वे सबको प्रेमसे देखते हैं उनकी दृष्टि दिव्य है।

जिसकी दृष्टि दिव्य है, उसकी सृष्टि भी दिव्य है। आप इस सृष्टिको सुधारनेके चक्करमें कभी न पड़िये आप अपने आपेको सुधारेंगे तो सृष्टि सुधरी हुई दिखाई देगी। आजकल बहुत-से लोगोंकी यह धारणा होती है कि 'मैं समाजको सुधारूँ, मैं औरोंका सुधार करूँ।' अरे भाई! तू अपना घर ही सुधार ले। हम जैसे साधारण मनुष्य जो इन्द्रियोंके दास हैं, वासनाओंके गुलाम हैं, वे समाजका सुधार क्या करेंगे? श्रीमहाप्रभुजी प्रत्यक्ष प्रकट हों तो कदाचित् समाज सुधर जाय। वैसे इस समयमें यह आशा रखना कि समाज सुधरेगा, व्यर्थ ही है। अब समाज सुधरनेवाला नहीं है।

किसीको सुधारनेकी आपकी इच्छा ही हो तो अपने मनको सुधारिये। अपनी आँखोंको सुधारिये। आपमें बहुत शक्ति हो तो अपने भाईको सुधारिये, अपने पड़ोसीको सुधारिये किन्तु इससे आगे मत बढ़िये कारण यह है कि अनेक बार समाजको सुधारनेवाले लोग लक्ष्यसे भटक जाते हैं। जो दूसरोंको सुधारनेके चक्करमें पड़ता है, वह अपने लक्ष्यको भूल जाता है। समाजको सुधारनेके काममें एक बड़ा दोष है और वह यह कि जो समाजका सुधार करनेके लिये चल पड़ता है, उसे अपनी भूलें दिखायी नहीं देतीं। उसे ऐसा लगता है कि अपना तो पूरा-पूरा सुधार मैंने कर ही लिया है।

अपनी दृष्टिका सुधार कीजिये। दृष्टिके द्वारा मनुष्यके मनकी परीक्षा हो जाती है। जिसकी दृष्टि शुद्ध है, उसकी ही क्रिया भी शुद्ध है। जिसकी क्रिया शुद्ध है, उसीका मन शुद्ध है। इच्छा-शुद्धि के बिना क्रिया-शुद्धि नहीं होती। शान्तिपूर्वक अपने भीतर दृष्टि डालकर अपने आपसे पूछिये—'मेरा मन कैसा है? मेरे मनमें किस प्रकारकी इच्छायें उत्पन्न होती हैं?' अरे, हमारा मन बहुत खराब है। हमें भीड़में बैठनेको अच्छी जगह न मिले तथा कोई अपरिचित व्यक्ति हमारे बहुत निकट आकर बैठ जाय तो हमें गर्मी लगने लगती है तथा मनमें ऐसा खटकने लगता है कि यह भला आदमी यहाँ कैसे



घुसकर बैठ गया ? किन्तु वहीं जब हमारा अपना आदमी आकर बैठता है तो मन शीतलताका अनुभव करने लगता है। तो हमारा मन ऐसा अटपटा है। जगत् बिगड़ा हुआ नहीं है, आँखें बिगड़ी हुई हैं, मन बिगड़ा हुआ है।

पुष्करेक्षण ! 'पुष्कर' शब्दका यहाँ दूसरा अर्थ भी किया गया है। पुष्करे-हृदय-कमले ईक्षणं यस्य सः पुष्करेक्षणः। तत् संबुद्धौ हे पुष्करेक्षण ! पुष्कर यानी हृदय-कमल। भगवानकी दृष्टि सभीके हृदयपर पड़ रही है। ठाकुरजी किसी की क्रियापर दृष्टि नहीं डालते। जीव क्या बोल रहा है, इसपर भी उनका विशेष ध्यान नहीं जाता। किस भावसे वह बोल रहा है, किस भावसे वह क्रिया कर रहा है, इस बातको वह विशेष रूपसे देखते हैं। भगवान् प्रत्येक जीवके हृदयके भावोंको देखते हैं। परमात्माके नेत्रोंसे अमृत झरता है। आप दर्शन करेंगे तो पायेंगे कि भगवान्‌का सम्पूर्ण स्वरूप ही मंगलमय है किन्तु गोपियाँ तो प्रभुकी आँखोंके दर्शन करके पागल हो गयी हैं। परमात्माकी आँखें अत्यन्त सुन्दर हैं, अतिशय शुद्ध हैं। प्रभुके सर्वाङ्गका ध्यान करना हमारे लिए बहुत ही कठिन है। आप ठाकुरजीकी आँखोंसे आँखें मिलानेके लिए, उनके नेत्रोंका ध्यान कीजिये। भगवानसे नजर मिलानेके लिये लालसा रखो। गोपियोंकी भावना है कि श्रीकृष्ण हमपर दृष्टि डालें। इसीलिये वे प्रभुको सम्बोधन देती हैं—पुष्करेक्षण। वे कहती हैं—'नाथ ! आप अपनी अमृतमयी दृष्टि एक बार हमपर डालिये। आप हमें देखिये तथा अपनी मधुर वाणी हमें सुनाइये— मधुरया गिरा आप्याययस्व।'

श्रीकृष्ण जिस प्रकार बोलते हैं, उस प्रकार बोलना किसीको आता ही नहीं। वे अत्यन्त मधुर बोलते हैं। भगवान्‌में यह एक बहुत बड़ा गुण है।

आयुर्वेदमें 'वाग्भट' नामका ग्रन्थ है। इस ग्रन्थमें मधुर वाणीको बहुत बड़ा तप माना गया है। वाणी मधुर होनी चाहिये, सच्ची होनी चाहिए, हितकारी होनी चाहिए तथा परिमित होनी चाहिये। शब्द परब्रह्मका स्वरूप है।



पूज्य डोंगरेजी महाराजका

जो हर समय मधुर बोलता है, उसे कोई रोग नहीं होता। जो सत्य बोलता है, उसे कभी चिन्ता नहीं सताती। जो हितकारी वचन बोलता है, उसके सामने कोई शत्रु नहीं खड़ा होता। जो मितभाषी है यानी जो बहुत कम बोलता है, उसकी शक्तिका क्षय नहीं होता। जो बहुत अधिक बोलता है, उसकी शक्तिका ह्रास होता है। फिर यह तो साधारण नियम ही है कि जो व्यक्ति बहुत अधिक बोलता है, अधिकतर झूंठ ही बोलता है, सच तो वह बोल ही नहीं सकता। सत्यवादी वही हो सकता है, जो मितभाषी है। हमेशा सत्य बोलिए तथा मधुर बोलिये।

जहाँ स्वार्थ होता है, वहाँ तो सभी मधुर बोलते हैं। स्वार्थके लिए यदि कोई मधुर बोलता है तो उसकी वाणीकी मिठास सच्ची मिठास नहीं है। बहुतसे व्यापारी बहुत मीठी-मीठी बातें करते हैं। वे ग्राहकसे कहते हैं--'दुकान आपकी है।' लेकिन ऐसा कहने-वाले व्यापारी बिलका पैसा लेनेमें कोई कमी भी नहीं करते।

श्रीकृष्ण-प्रेम जिसके हृदयमें जागता है, वह हर समय मधुर ही बोलता है। सामान्य नियम ऐसा है कि जीव जिससे बहुत प्रेम करता है, वह उस प्रिय व्यक्ति जैसा ही हो जाता है। आप किसी व्यसनी आदमीसे बहुत प्रेम करें तो आपमें भी उसके व्यसन आ जायेंगे। यदि आप किसी लोभी व्यक्तिसे प्रेम करें तो धीरे-धीरे आप भी लोभी बन जायेंगे। जो लोग श्रीकृष्णसे अत्यन्त प्रेम करते हैं, उन जीवोंमें धीरे-धीरे श्रीकृष्णके दिव्य सद्गुण आते चले जाते हैं।

श्रीकृष्ण अत्यन्त मधुर बोलते हैं। वे कड़वे शब्द तो बोल ही नहीं सकते। श्रीकृष्ण-प्रेम आपकी वाणीमें भी मधुरता लायेगा। महापुरुषोंने श्रीकृष्ण-प्रेमको पंचम पुरुषार्थ माना है। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष--ये चार पुरुषार्थ हैं। श्रीकृष्ण-प्रेम इन सबसे श्रेष्ठ पंचम पुरुषार्थ है।

परमात्माको मानना, उनकी थोड़ी सेवा करना और इस प्रकार वैष्णव बन जाना आसान बात है परन्तु श्रीकृष्ण-प्रेमी होना कठिन है। यह जीव जब अनेक जन्मों तक



सेवा, प्रभु-स्मरण, सत्कर्म आदिमें लीन रहता है, तभी उसमें प्रभु-प्रेम जागता है। जिसके हृदयमें भगवत्प्रेम प्रकट होता है, उस जीवके दो प्रधान लक्षण होते हैं। एक तो उसे संसारके सम्पूर्ण सुख तुच्छ लगते हैं और दूसरे उसका हृदय विशाल और कोमल हो ज़ाता है। ऐसा भगवत्प्रेमी हर समय मधुर वाणी ही बोलता है। उसे कड़वे शब्द बोलना आता ही नहीं।

भगवानको मधुर वाणी अत्यन्त प्रिय है। जो व्यक्ति बहुत मधुर बोलता है, वह श्रीकृष्णको बहुत अच्छा लगता है। वंशी अत्यन्त मधुर बोलती है। वंशीमें एक बहुत बड़ा सद्‌गुण है। वह सज्जन और दुर्जन—सभीसे मधुर ही बोलती है। वंशीका मधुर स्वर सुनकर हिरन भी दौड़ा चला आता है तथा विषधर नाग भी उसके मधुर नादको सुननेके लिये दौड़ा आता है। कस्तूरी-मृग, सज्जनके स्वरूपमें है तथा विषधर नाग दुर्जनके स्वरूपमें। वंशीका स्वर सुनकर सज्जन-दुर्जन—सभीको आनन्द होता है। वंशी कभी भी कड़वा स्वर निकाल ही नही सकती। कठोरतासे वह नहीं बोलती। इसलिए प्रभु इसे अपने हस्त-कमलोंमें रखते हैं।

किन्तु गोपी कहती है—'आपकी वंशी-रूपी वाणी हमें सुननी हो नहीं। आप प्रत्यक्ष बोलिए। बुधमनोज्ञया वल्गुवाक्यया। बुधमनोज्ञया—अर्थात् आपकी वाणी शुकदेवजी जैसे बड़े-बड़े ज्ञानी पुरुषोंको भी अत्यन्त प्रिय है। अपनी वह वाणी हमें सुनाइये। वंशी तो हमने बहुत सुनी है। अब वल्गुवाक्यया—सुन्दर वाक्यावलियोंसे भरी अपनी मधुर वाणी सुनाकर हमें तृप्त कीजिये। हमसे वार्तालाप कीजिये।'

जीवनमें श्रीकृष्ण एक शब्द भी हमसे बोलें तो बेड़ा पार हो जाय। आप जब सेवा करें, मालासे जप करें, तब ठाकुरजीसे बातें भी करें। 'भगवान् नहीं बोलते, इसलिए मैं भी नहीं बोलता।' -ऐसा सोचना ठीक नहीं। आप लालाको मनाइये, रिझाइए तो किसी-न-किसी दिन वे बोलेंगे ही और जब परमात्मा एकाध शब्द हो बोलेंगे तो आपका जीवन दिव्य हो जायेगा।



पूज्य डोंगरेजी महाराजका

मीराबाईके चरित्रमें ऐसा उल्लेख है कि मीराबाई गोपालजीका सुन्दर श्रृंगार करके तथा कमरेके दरवाजे वन्द करके एकान्तमें कीर्तन करती थीं। ठाकुरजीसे वे बातें करती थीं। उनके मनमें कोई भाव आता तो वे ठाकुरजीसे निवेदन करतीं कि 'आज मेरा मन ऐसा हो गया है।' सारांश यह है कि हृदयके भाव प्रभुके सम्मुख प्रकट करनेसे हृदय शुद्ध होता है।

मीराबाईकी सेवामें वीणा नामकी एक दासी रहती थी। एक दिन वीणाने मीराजीसे पूछा—'आप किसके साथ बातें करती हैं ?' मीराजीने कहा—'मैं तो अपने गिरिधर गोपालसे बातें करती हूँ। दासीने पूछा—'मीराजी ! आप यह तो ठीक कह रही हैं कि आप ठाकुरजीसे बातें करती हैं किन्तु क्या ठाकुरजीने भी किसी दिन आपसे बातें की हैं ?'

मीराजी बोलीं—'मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ है कि ठाकुरजी भी मुझसे बोलें ? मैं इस लायक नहीं हूँ कि मेरे गोपालकृष्ण भी मुझसे बातें करें।' तब वीणाने कहा—वे नहीं बोलते तो फिर आप उनसे कैसे बोलती हो ?' मीराजी ने यह सुनकर उत्तर दिया—'वे बोलते तो नहीं परन्तु मुझे आशा है कि एक-न-एक दिन वे मुझसे बोलेंगे। इसी आशासे मैं उनसे बातें करती रहती हूँ। मुझे पूरी-पूरी आशा है कि मेरे श्रीकृष्णको मुझपर दया आयेगी तथा एक-दो वर्ष बाद तो वे मुझसे बोलेंगे। एक-दो वर्ष बाद न सही, बारह वर्ष पश्चात् तो बोलेंगे ही। और यदि मेरे पाप बहुत अधिक हुए तो कदाचित गोविन्द बारह वर्ष पश्चात भी न बोलें किन्तु फिर भी मुझे दृढ़ विश्वास है कि मेरे जीवनके अन्तिम दिन तो वे अवश्य ही बोलेंगे।'

भगवान बोलते हैं किन्तु यह जीव भगवानसे बुलवानेके लिए कोई प्रयत्न ही नहीं करता। आपके घर कोई उच्च अधिकारी आयें तो वे भी तो अपने पदकी उच्चता के कारण चुपचाप अकड़े हो बैठे रहेंगे। आप उन्हें मनायेंगे, प्रसन्न करेंगे, तभी वे बोलेंगे। फिर श्रीकृष्ण तो सबसे श्रेष्ठ हैं। उन जैसा तो जगतमें कोई दूसरा देव ही नहीं है। वे



सबसे ऊँचे हैं, अनन्तकोटि ब्रह्मांडोंके अधिनायक परमात्मा हैं। आप उन्हें भी अनेक बार रिझाइये। हजारों बार उन्हें मनाइये। उनसे बार-बार बोलिए। तब लालाको अवश्य दया आयेगी।

गोपी कहती है—'नाथ! आप अपनी मधुर वाणीसे हमसे प्रत्यक्ष बोलिए। प्रभो। कृपा कीजिये। हमें प्रत्यक्ष दर्शन दीजिये तथा अपने अधरामृतका दान हमें दीजिये। अधरसीधुनाऽऽप्यायस्व नः।'

अधरसीधु अर्थात् अधरामृत। यहाँ लौकिक अधरामृतकी बात नहीं हैं। 'अधरामृत' शब्दका अर्थ गोपियाँ ही भागवत में स्पष्ट करती हैं। श्रीमद्भागवत के कितने ही शब्द इतने दिव्य हैं कि उनका अर्थ-विस्तार, समाधि-भाषाके द्वारा ही होता है तथा वैसा अर्थ व्यासजीने ही भागवतमें किसी-किसी प्रसङ्गमें किया है। 'अधरामृत' शब्द का व्यापक भाव 'गोपी गीत' के चौदहवें श्लोकमें निहित है। वहाँ गोपी कहती है कि अधरामृत, श्रीकृष्णका ही स्वरूप है। अधरामृत, श्रीकृष्णसे भिन्न नहीं है। इतरराग विस्मारणम्। इसका विस्तार-से वर्णन अगले प्रसंगमें किया जायेगा।

एक अमृत पृथ्वीमें है। इस पृथ्वीको धरा कहते हैं। धरति इति धरा—पृथ्वी सबका धारण-पोषण करती है, इसीलिए उसका नाम धरा है। धराया अमृतम् इति धरा-मृतम्। धराका अमृत यानी धरामृत। पृथ्वीके अमृतसे ही सबका जीवन सम्भव है।

एक अमृत चन्द्रमामें है। चन्द्रमा अन्नमें रस पैदा करता है। अपनी किरणोंके द्वारा चन्द्रमा, अन्नमें, फल-फूलमें अमृतका सिंचन करता है। वैसे ही एक अमृत स्वर्गमें है। इसका उपभोग केवल देवता ही करते हैं।

ये सब अमृत, धरामृत ही हैं। धरामृत, देश-कालकी मर्यादाके अधीन ही उपलब्ध रहता है। वह परिपूर्ण नहीं है, शाश्वत नहीं है। धरामृतम् न भवति इति अधरामृतम्। जो देश-कालकी मर्यादासे बँधा नहीं है, शाश्वत है, सर्वव्यापक है तथा परिपूर्ण है, वही



अधरामृत कहलाता है और वही श्रीकृष्णका स्वरूप है। अपरोक्ष ज्ञानामृत ही प्रेमामृत है। वह श्रीकृष्ण-रूप ही है।

गोपी भगवान् से कहती है—'नाथ ! दर्शन दीजिये। दयित दृश्यताम्। अपनी प्रेम-भीनी दृष्टिसे हमें तृप्त कीजिये। अपनी मधुरवाणीसे हमें तृप्त कीजिए। अपने अधरामृतसे हमें तृप्त कीजिए।'

श्रीकृष्णने कहा 'तुम सब मेरे पीछे क्यों पड़ी हो ?' तब गोपीने कहा—'विधिकरीरिमाः—हम आपकी दासी हैं और हम केवल आपके लिए ही जीवित हैं।'—गोपियोंका जीवन श्रीकृष्णके लिए ही है।

प्रभुने कहा—'अरी सखियो ! तुम बातें तो प्रेमकी करती हो किन्तु मुझे प्रेमका एक भी लक्षण तुम सबमें नहीं दिखाई देता। यदि तुम्हारा प्रेम सच्चा होता तो मेरे वियोग में तुम जीवित कैसे रहतीं ? शुद्ध प्रेममें तो विरह होता ही नहीं और यदि कभी होता भी है तो विरहीके प्राण देहमें टिकते ही नहीं। श्रीदशरथजीका श्रीरामसे सच्चा प्रेम था, इसीलिये श्रीरामचन्द्रके वियोगमें महाराज दशरथ जीवित नहीं रह सके। तुम प्रेमकी बातें तो करती हो किन्तु मेरे वियोगमें भी तुम जी रही हो। तुम्हारे प्रेममें कुछ कपट भी है। तुम्हारा प्रेम शुद्ध नहीं है। वियोगमें तुम जी रही हो यह बात तुम्हारे प्रेमपर एक बहुत बड़े कलंकके रूपमें ही तो है।'

गोपीने कहा—'यह कलंक हमारे प्रेमपर नहीं है। हमपर तो यह कलंक है ही नहीं।' तब प्रभुने पूछा—'यह तुम्हारा कलंक नहीं तो क्या मेरा है।' गोपीने उत्तर दिया—'यह कलंक आपपर भी नहीं, यह कलंक तो आपकी कथाका है। आपकी कथा ही हमारे प्राणोंको हमारे शरीरोंमें टिकाये रखती है।'

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमंगलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥९॥

भाव—'(हे नाथ !) आपका कथामृत संताप पानेवाले जीवोंका जीवन है। कवि भी उसका बखान करते हैं। पापोंको वह कथामृत दूर करता है। सुननेसे वह कल्याण करता है।



वह कथामृत श्रीसे युक्त है तथा सब कहीं व्यापक है। उसका गान (स्तवन) इस धरतीपर जो करते हैं, वे महान् दानवीर हैं।'

गोपी कहती है--'हमारे प्राण तो जानेवाले थे किन्तु आपकी कथाने हमारे प्राणोंको बचा लिया। मृत्युसे हमारी रक्षा आपकी कथाने ही की। तव कथा अमृतम्। आपकी कथा अमृत-रूप है।'--न मृतं यस्मात् इति अमृतम्। कथा मरणको सुधारती है, मृत्युसे बचाती हैं। कथामृतका पान करनेवाला मरता नहीं है। वह अमर हो जाता है।

मरण कहते किसको हैं? मनुष्यको कर्त्तव्यका भान न रहे, वह प्रमाद करता रहे, वही तो उसका मरण है। बहुत-से लोगोंको पता नहीं कि--'मेरा कर्त्तव्य क्या है? मुझे क्या करना चाहिये तथा मैं कर क्या रहा हूँ? मेरे जीवनका लक्ष्य क्या है?' प्रमाद ही मरण है। खाना, पीना, मौज करना तथा वंशको बढ़ाना ही क्या मानव-जीवनका लक्ष्य है? यह सब तो पशु भी करते हैं। आहार-विहारका ज्ञान तो पशुओंको भी होता है। मानवका एक विशिष्ट लक्ष्य है प्रभुको पाना, आत्माको परमात्मामें लीन कर देना।

गोपी आगे कहती है--'कथामृतं तप्तजीवनम्। आपकी कथा दुःखसे तप्त लोगोंको जीवन देती है, ठंडक देती है, उनके मनको शान्त करती है।'

कथामृत, कोई साधारण चीज नहीं है। चाहे जितना दुःखी जीव हो, और संसार-तापसे उसका हृदय अत्यन्त तप्त हो गया हो, फिर भी वह उस कथाको सुनने बैठ जाय, जिसे वक्ता प्रेमसे कह रहा हो तो कथा सुनते ही वह अपने दुःखोंको भूल जायगा।

दुःखसे विह्वल मत होइये। हम सब श्रीकृष्णके सेवक हैं। यह जीव ईश्वरका है। इसे भय कैसा? श्रद्धा रखिये और यों विचारिये--'मेरी चिन्ता मेरे भगवान्‌को है। मैं कोई साधारण या तुच्छ जीव नहीं हूँ सबसे श्रेष्ठ परमात्माका सेवक हूँ। कोई भी मेरा बाल भी बाँका नहीं कर सकता।'--वैष्णव निर्भय होते हैं। उन्हें कालसे भी डर नहीं लगता। वे कहते हैं--'हमें तो प्रभुके चरणोंमें जाना है।'



पूज्य डोंगरेजी महाराजका

मनुष्य जबतक कथा नहीं सुनता, तभी तक उसे भय, शोक तथा मोह आदि त्रास देते हैं, उसे भटकाते हैं। 'भविष्यमें क्या होगा ?'—भविष्यकालके बारेमें ऐसा विचार करते ही जीवको भय लगता है। भूतकालका विचार करनेपर शोक होता है तथा वर्त्तमानका विचार करनेपर मोह होता है। बहुत-से लोग ऐसी आशा रखते हैं कि आज मेरी जैसी स्थिति है, ऐसी ही बनी रहे तो बहुत अच्छा हो। अरे! स्थिति तो बदलने-वाली ही है। एक-सी स्थिति तो किसीकी भी कायम नहीं रहती और न वह एक-सी रहेगी ही। काल, किसीको भी एक-सी स्थितिमें रखता ही नहीं।

वर्त्तमानसे मोह होता है, भूतकालसे शोक मिलता है तथा भविष्यसे डर लगता है किन्तु जो लोग कथा सुनते हैं, उन्हें स्वरूपका भान होता है तथा वे मानते हैं कि हम तो भगवान्के हैं। प्रभुकी सेवा और उनका स्मरण भी हमसे होता है। हमारी सारी चिन्ता हमारे भगवान्को है। कथा सुननेसे मन शान्त होता है।

प्रभुकी कथाको गोपी दूसरा विशेषण देती है—कविभिरीडितम्। शुकदेवजी जैसे महान् ज्ञानी पुरुष लँगोटी तक छोड़ देते हैं किन्तु श्रीकृष्णकी कथा नहीं छोड़ते। शुकदेवजी महाराजको लँगोटीकी आवश्यकता नहीं रही। उन्हें अपनी आँखोंसे कहीं भी स्त्री दिखायी नहीं देती थी। उन्हें इस बातका भान ही नहीं था कि 'मैं पुरुष हूँ।' स्त्रीत्व तथा पुरुषत्वकी पूरी-पूरी विस्मृति उन्हें हो गयी किन्तु फिर भी श्रीकृष्णकी कथामें उनकी अतिशय प्रीति है। परमात्माके स्वरूपमें तन्मय होनेवाले विरक्त साधु, महात्मा भी कथामृतका पान करते हैं। वे भी श्रीकृष्ण-कथाका वखान करते हैं।

कविभिरीडितम्—शुकदेवजी जैसे महापुरुष वर्णन करते हैं कि कथामृत, स्वर्गके अमृतसे भी श्रेष्ठ है। स्वर्गका अमृत भी इस अमृतके आगे तुच्छ है। बहुत-से यज्ञ करनेपर, दान-पुण्य करनेपर जीव स्वर्गमें जाता है और तभी उसे स्वर्गमें अमृत मिलता है, सुख प्राप्त होता है किन्तु स्वर्गका अमृत पीनेसे पुण्योंका नाश होता है। स्वर्गका अमृत पीनेसे विकार-वासना बढ़ती है, जब कि कथामृतका पान करनेसे उसका विनाश होता है।



श्रीमहाप्रभुजीका कथन है कि श्रीकृष्णकी कथा श्रीकृष्ण-स्वरूप ही है। भगवान्‌में जो शक्ति है, वह समग्र शक्ति, श्रीकृष्ण-कथामें भी है। ऐश्वर्य, वीर्य, श्री, यश, ज्ञान तथा वैराग्य—ये छह गुण जिनमें परिपूर्ण रूपमें रहते हैं, उन्हें भगवान कहते हैं। जिस प्रकार ये छह गुण श्रीकृष्णमें परिपूर्ण रूपमें हैं, उसी प्रकार ये गुण श्रीकृष्ण-कथामें भी परिपूर्ण रूपमें हैं।

गोपी कहती है—'फिर आपकी कथा 'कल्मषापहम्' भी है—पापोंको जलानेवाली है।' कथा श्रवण करनेवालोंके पाप जलते हैं तथा कथा उन्हें नये पापोंसे भी बचाती है। कथा सुननेसे धुन्धकारीके असंख्य पाप जल गये तथा उसे मुक्ति मिली। श्रीकृष्ण-कथा सुननेसे परीक्षित राजा भी पाप-मुक्त हो गये और उन्हें दिव्य गति मिली।

मनुष्य जब कथा सुनता है तब उसे पता चलता है कि उससे भूल कहाँ हो रही है। मनुष्य अपनी भूल स्वीकार करनेके लिए तैयार नहीं होता और यदि कभी स्वीकार करता भी है तो अपनी कमी या गलतीका त्याग करनेकी उसकी इच्छा नहीं होती। आप यदि किसीको उसकी भूल बतायें भी तो शायद उसे बुरा ही लगेगा। वह कहेगा—'आप मेरी भूल जतलानेवाले कौन होते हैं ? आप कैसे हैं, यह सब मैं अच्छी तरह जानता हूं।' मनुष्य अपनेको निर्दोष समझता है। उसे अपने दुर्गुण, सद्‌गुण जैसे ही लगते हैं किन्तु यदि वह कथा सुने तो उसे स्वदोषका भान होने लगता है।

एक चोर था। उसने अपने एक लड़केसे कह रखा था—'किसी मन्दिरमें दर्शन करने जाना हो तो भले ही चले जाना। भगवान्‌को हाथ जोड़कर प्रणाम भी कर लेना किन्तु भूलकर भी कभी कथा नहीं सुनना। कथा सुनोगे तो अपना धन्धा चौपट हो जायगा।' धन्धा तो उसका चोरीका था ही।

एक बार ऐसा हुआ कि वह लड़का एक जंगलमें-से गुजर रहा था। उस जंगलमें एक जगह कथा हो रही थी। उसको अपने पिताके वचन याद आए कि 'बेटा! कथा नहीं सुनना।' उसने ऐसा विचार आते ही अपने दोनों कानोंमें उँगली दे ली और रास्तेपर आगे



बढ़ने लगा। ठाकुरजीको उसपर यह सोचकर बड़ी दया आई कि इस लड़केकी अपने पिताके वचनोंपर कितनी श्रद्धा है। तब प्रभुने कौतुकमयी कृपा की। रास्ता चलते-चलते उस लड़केके पैरमें एक काँटा लग गया। इस कारण उसे अपने कानोंमें-से उँगली निकालनी पड़ी। जैसे ही वह पैरका काँटा निकालने लगा, कथाके कुछ वचन उसके कानोंमें पड़ गये। कथाके शब्द थे—'ईश्वर सर्वव्यापक है। वह सबमें विराजता है तथा सबोंको देखता है। बहुत-से लोग ऐसा समझते हैं कि मकानके दरवाजे बन्द हैं, इसलिये यहाँ कोई कुछ देखनेवाला नहीं है तथा सुननेवाला भी नहीं है किन्तु ऐसा नहीं है। अरे! तुम्हारा पिता तुम्हारे अन्दर ही बैठा है। दरवाजे बन्द हैं तो क्या हुआ?'—लड़केने ये शब्द सुनकर यह बात ध्यानमें रख ली कि भगवान सबको देखते हैं।

बादमें बाप और बेटा—दोनों एक खेतमें चोरी करने गये। वहाँ आमका एक बड़ा पेड़ था। पिताने लड़केसे कहा—'मैं पेड़पर चढ़कर आम ले आता हूँ। तू नीचे खड़ा होकर नजर रखना कि कोई आ तो नहीं रहा है, कोई हमें देख तो नहीं रहा है।' तब बाप जैसे ही पेड़पर चढ़कर आम तोड़ने लगा कि लड़का एकदम बोल पड़ा—'बापू! वह देख रहा है।' पिता उसके शब्द सुनते ही घबरा गया और पेड़से नीचे उतर पड़ा। लड़केसे उसने पूछा—'कौन देख रहा है? यहाँ तो कोई दिखाई नहीं दे रहा है।' तब लड़केने कहा—'मैंने कथामें सुना है कि ईश्वर सबको देखता है।'—तो इस तरह कथा पापोंसे बचाती है।

गोपी कहती है—'आपकी कथा श्रवणमङ्गलम् है। आपकी कथा सुननेसे मङ्गल होता है।'—कथा सुननेके पश्चात् आप भक्तिमें लगें, यह तो अलग बात है किन्तु कथा सुनना भी भक्ति ही है। आप प्रेम-से जो कुछ सुनते हैं, यह सब आपके मनमें उतरता है। श्रीकृष्ण कानोंमें-से होकर अन्दर प्रवेश करते हैं। श्रवणमङ्गलम्—श्रवणाद् मङ्गलम्—कथा सुननेसे मङ्गल होता है। इससे अतिरिक्त एक भाव है—श्रवणमेव मङ्गलम् इति श्रवणमंगलम्। श्रीकृष्णकी कथा सुनना ही मंगल है।

गोपीगीत ग्रन्थ



कर्मकाण्डकी कथा सुननेसे मंगल नहीं होता। कर्मका अनुष्ठान करनेसे ही मंगल होता है। कोई व्यक्ति यदि लम्बी-चौड़ी बातें करे और कहे कि 'मुझे तो विष्णुयाग करना है। बारह कुण्ड बनाने हैं तथा एक-सौ आठ ब्राह्मणोंको संकल्प दिलवाना है। खीरका होम भी करना है।'—तो ऐसी बातोंके कहने-सुननेसे क्या मंगल होगा ? ऐसा अनुष्ठान किया जायगा तभी मंगल होगा। अनुष्ठानके बिना कर्म मंगलरूप नहीं हैं।

उसी प्रकार ब्रह्मज्ञानकी भी बहुत बातें सुनने-से कोई विशेष मंगल नहीं होता किन्तु ब्रह्मका अनुभव करनेसे ही मंगल होता है। परमात्माके स्वरूपका अनुभव करनेपर ही ब्रह्मविद्या सफल होती है। ब्रह्मविद्याकी बातें करने या सुननेसे सफलता नहीं मिलती। जगत् दुःखमय है तथा ब्रह्म आनन्द-रूप है। ईश्वरके बिना जो कुछ भासता है, वह मिथ्या है और दुःख-रूप है। परमात्मा हृदयमें हैं। मैं प्रभुका स्वरूप हूँ। मैं ब्रह्मसे भिन्न नहीं हूँ।' —ब्रह्मविद्याकी ऐसी बातें करना और सुनना तो ठीक है किन्तु इन बातोंसे ही मंगल होने वाला नहीं है। ब्रह्मज्ञानकी बातें सुननेके पश्चात् ऐसा प्रवचन सुननेके पश्चात् भी लोग देखते हैं कि 'मेरी चप्पलें तो कोई उठाकर नहीं ले गया।' तब क्या ऐसे व्यक्तिको यह ठीक-ठीक याद रहता है कि जगत् बुरा है, दुःख-रूप है। आनन्द-रूप ब्रह्म तो मेरे हृदयमें ही है। उसे तो लगता है कि चप्पलें न खोयें, इसीमें आनन्द है। चप्पल न होगी तो दुःख आ जायगा, ऐसा वह मानता है। इसीलिये ब्रह्मविद्याकी बातें सुननेसे विशेष लाभ नहीं किन्तु ब्रह्मका अनुभव करनेसे ही लाभ होता है।

अनुष्ठान करनेसे ही कर्मकाण्ड, कल्याण करता है। परमात्माकी अनुभूति होनेपर ही ब्रह्म विद्या यथार्थ रूपमें सामने आती है, जब कि श्रीकृष्ण-कथा तो श्रवणमात्रसे ही मंगल करनेवाली है। आप कथा सुननेके पश्चात् प्रभुकी सेवा करें, उनका स्मरण करें तो अच्छा है किन्तु यदि कोई व्यक्ति कथा सुननेके पश्चात् सेवा-स्मरण आदिमें लीन नहीं भी रहता किन्तु जितने समयतक वह कथा सुनता है, प्रेमसे सुनता है और उतने समयतक जगत्‌को

भूल जाता है तो मान लीजिए कि उतने समयतक वह भक्ति ही करता है। श्रीकृष्णकी कथा सुनना ही मंगलमय है, कारण कि यह भक्तिसे ही भावित है।

श्रीकृष्ण जब कृपा करते हैं तब ही किसी भजनानन्दी वैष्णवके मुखसे श्रीकृष्ण-कथा सुननेका सुयोग मिलता है। श्रीकृष्ण-कथा श्रीकृष्णके समान ही है। जो शक्ति श्रीकृष्णमें है, वही श्रीकृष्ण-कथामें है। महापुरुष तो ऐसा मानते हैं कि 'श्रीकृष्णकी तुलनामें भी श्रीकृष्ण-कथा श्रेष्ठ है' यदि ऐसा कहा जाय तो भी अनुचित नहीं है।

भगवान् श्रीकृष्ण जहाँ प्रत्यक्ष विराजते हैं, वहाँ अधिकारी और सुपात्र जीवोंको अपनी ओर खींच लेते हैं– आकर्षित कर लेते हैं। फिर भी जगत्‌में ऐसे जीव भी होते हैं, जो श्रीकृष्णके दर्शन करनेपर भी उनसे आकर्षित नहीं होते।

दुर्योधनको द्वारकानाथके दर्शन हुए। प्रभुने प्रेमसे उसे सुन्दर उपदेश दिया किन्तु दुर्योधन था अधम जीव। क्या दुर्योधनके सिरपर दो-चार सींग थे? दुर्योधन था तो हम लोगों जैसा ही। पराये धनपर जो कब्जा जमा ले, वह दुर्योधन ही है। आजकल बहुत-से लोगोंकी यह इच्छा रहती है कि वे वगैर मेहनतके आये हुए धनको पचा लें। उस समय तो एक ही दुर्योधन था, जिसने तूफान मचा दिया किन्तु अब तो अनेक दुर्योधन उत्पन्न होने लगे हैं। इसीलिये तो जगत्‌में शान्ति नहीं रहती।

दुर्योधनपर श्रीकृष्णके उपदेशका कोई असर नहीं हुआ। उसने प्रभुके सम्मुख उत्तर देनेकी हिम्मत की। दुर्योधन, श्रीकृष्णके दर्शन करनेके पश्चात् सुधरता तो बहुत अच्छा होता किन्तु क्या वह श्रीकृष्णके दर्शन करनेके पश्चात् सुधरा? शिशुपाल, दन्तवक्त्र आदि भी श्रीकृष्णसे लड़नेको तैयार हो गये थे। बाह्य रूपसे देखनेपर ऐसा लगता है कि श्रीकृष्णके दर्शन करनेके पश्चात् भी कितने ही जीवोंका जीवन सुधरता नहीं है। उनका स्वभाव भी नहीं सुधरता। भगवान्‌के दर्शन करनेके बाद भी वे लोग पापोंका त्याग नहीं कर पाते। बहुत-से लोग नित्यप्रति मन्दिरमें प्रभुके दर्शन करने जाते हैं तथा मन्दिरसे



बाहर आकर पाप भी करते हैं—प्रभुका दर्शन करनेके पश्चात् भी उनका स्वभाव नहीं सुधरता।

दुर्योधन, श्रीकृष्णके दर्शन करनेके पश्चात् भी नहीं सुधरा, यह बात सच है किन्तु कोई भी जीव भजनानन्दी सन्तके मुखसे श्रीकृष्ण-कथा सुने तो वह जरूर ही सुधरेगा—प्रभु-प्रेमका उदय उसके अन्तरमें होगा। श्रीकृष्णकी तुलनामें भी श्रीकृष्ण-कथामें अनोखी दिव्य शक्ति है। जो जीव सुपात्र हैं, उनको ही श्रीकृष्ण आकर्षित करते हैं, किन्तु यदि कोई दुर्योधन-जैसा दुष्ट है, अनधिकारी है तो उसको भगवान् भी आकर्षित नहीं कर सकते। अवतार-दशामें भगवान् थोड़े-बहुत जीवोंका उद्धार करते हैं किन्तु अनवतारकी दशामें (जब परमात्मा प्रत्यक्ष नहीं विराजते) श्रीकृष्ण-कथा अनेक जीवोंका कल्याण करती है।

श्रीकृष्ण-कथाको गोपी एक खास विशेषण प्रदान करती है। वह विशेषण है—श्रीमदाततम्। कथामृत सब कहीं व्यापक रहनेवाला है। स्वर्गका अमृत तो परिमाणमें बहुत थोड़ा है। जो वस्तु थोड़ी होती है, उसे सँभालकर रखना होता है। स्वर्गमें देवता अमृतको घड़ेमें बहुत सँभालकर रखते हैं तथा बहुत समयतक सुरक्षित रखनेका यत्न करते हैं। वे जल्दी ही अमृत किसीको देते भी नहीं। पुराणकी कथामें उल्लेख है कि एक बार गरुड़जी देवताओंसे युद्ध करके अमृत-कुम्भको छीनकर ले गये तथा उन्होंने वह अमृत-कुम्भ सर्पोंको दे दिया किन्तु राजा इन्द्रने वह अमृत सर्पोंको नहीं लेने दिया तथा वे अमृत-कुम्भ छीनकर ले गये।

स्वर्गका अमृत सबको मनचाहे रूपमें नहीं मिलता। कारण है कि वह परिमाणमें थोड़ा है, जब कि कथामृत तो सबको मिलता है। कोई यदि गरीब हो तो भी कथा सुन सकता है। शास्त्रोंमें उल्लेख है कि कोई व्यक्ति हजार-दो-हजार रुपये-खर्च करके कथा सुनकर जितना पुण्य प्राप्त करता है, उतना ही पुण्य बिना पैसे खर्च किये एक गरीब वैष्णव भी प्रभुको प्रणाम करके प्रेमसे कथा सुननेके लिये बैठकर प्राप्त कर लेता है। स्वर्गका



अमृत थोड़ा है जब कि कथामृत बहुत है, अनन्त है, सर्वव्यापी है। स्वर्गका अमृत सबके लिये सुलभ नहीं है। जो धनवान हैं, जिन्होंने बहुत यज्ञ किये हैं, उनको ही यह अमृत प्राप्त होता है, जब कि कथामृत तो सबके लिये सुलभ है ही।

गोपी प्रभुकी कथा बखान करते-करते अन्तमें कहती है—'भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः। जो महापुरुष आपकी कथाका प्रेमसे वर्णन करते हैं, श्रवण करते हैं, वे महान् दानवीर हैं। वे बहुत दान देते हैं।'

अन्न-दान, वस्त्र-दान तथा द्रव्य-दान करनेसे थोड़े समय तक शान्ति मिलती है किन्तु कथामृतका दान सबसे श्रेष्ठ है। किसी गरीबको यदि आप प्रेमसे भोजन करायेंगे तो उसे चौबीस घण्टेतक तृप्तिका अनुभव होगा किन्तु बादमें उसे फिर भूख लग आयेगी। उस समय उसकी शान्ति दूर हो जायेगी। अन्नदान थोड़े समयतक ही शान्ति प्रदान करता है किन्तु कथाका एकाध शब्द भी यदि हृदयमें उतर जाय, हृदयका स्पर्श कर ले तथा उससे प्रभु-प्रेम जाग्रत हो जाय तो उससे सम्पूर्ण जीवन, शान्तिमय तथा आनन्दमय बन जाता है। कथाका दान करनेवाला तो उत्कृष्ट दान देता है। वह महान् दानवीर है।

प्रभुने गोपियोंसे कहा—'अरी सखियो। तुम्हें कथामें आनन्द आता है तो फिर मेरे वियोगमें भी पूरे दिन कथा ही सुना करो। तुम फिर मुझे किसलिये बुला रही हो?' तब गोपियोंने कहा—'नाथ! पहले तो आपकी कथा सुननेसे हमारे प्राण शरीरमें टिके रहे, हमें शान्ति मिली, आनन्द मिला किन्तु आपकी कथा सुननेके पश्चात् अब तो आपके दर्शनकी तीव्र आतुरता जागी है तथा अतिशय आतुरताकी दशामें अब हम शान्तिसे कथा भी नहीं सुन पायेंगी। त्वद्विलासक्षुभितचित्ताः त्वकथयाऽपि शान्तिं न लभामहे। आपके दर्शनके बिना हमें चित्तभ्रम हो गया है, ऐसा अनुभव हमें हो रहा है। आपके दर्शन-मिलनकी आतुरताके कारण अब हमें कथामृत भी अच्छा नहीं लग रहा है। नाथ! दर्शन दीजिये—दयित दृश्यताम्।'



कथा सुननेके पश्चात् प्रभुके प्रति प्रेमका उदय होता है, प्रभुके दर्शन-मिलनकी आतुरता जागती है। प्रभुकी सेवा और उनके स्मरणमें आसक्ति हो जाती है। कथा सुननेके पश्चात् कन्हैया अच्छा लगने लगे तो मान लीजिये कि आपने कथा ठीक-ठीक सुनी है। कथा सुननेके पश्चात् आपका स्वभाव थोड़ा सुधरना चाहिये। आपमें पाप छोड़नेकी इच्छाका उदय होना चाहिये, किए हुए पापोंके लिये पश्चात्तापका भाव हृदयमें आना चाहिये।

कथा सुननेके पश्चात् प्रभुके प्रति प्रेम न जागे, संसारके विषयोंसे अरुचि न हो, स्वभाव थोड़ा भी न सुधरे, किए हुए पापोंके प्रति पश्चात्ताप न हो तथा पाप छोड़नेकी थोड़ी भी इच्छा न हो तो मान लीजिए कि आपने कथा सुनी ही नहीं।

हो सकता है कि कोई सज्जन कहें कि हमने तो कथा सुनी है किन्तु इन कथा-वाचक महाराजको ही ठीक-ठीक कथा कहनी नहीं आती। कथा-वाचक ठीक-ठीक कथा कह रहे हों तथा आप भी श्रद्धा-भक्तिसे कथा सुन रहे हों तो कथा सुननेके पश्चात् प्रभुके प्रति थोड़ा-बहुत प्रेम आपमें अवश्य जागेगा तथा संसारके विषयोंके प्रति अरुचि भी होगी।

गोपियाँ इस प्रकार प्रभुकी कथाकी स्तुति करती हैं। टीकाकारोंने इस सम्पूर्ण श्लोकका व्यंग्योक्तिके आधारपर भिन्न अर्थ निकाला है। गोपी व्यंग्यमें प्रभुकी कथाकी निन्दा करती है किन्तु इस निन्दामें भी प्रभुकी स्तुति ही गर्भित है।

गोपी भगवान्से कहती है—'नाथ ! आपकी कथा सुनकर तो मैं मर ही गयी। कथया मृतम् इति कथामृतम्। कथायाः अमृतम्—ऐसा अर्थ करनेकी बजाय यहाँ 'कथया मृतम्' अर्थ किया गया है। गोपी कहती है—'आपकी कथा सुननेसे तो मेरा मरण हो गया—मेरा संसार छूट गया। अब संसार में मन लगता ही नहीं। संसारका सुख बिल्कुल अच्छा नहीं लगता और इतनेपर भी आप हमारा त्याग कर रहे हैं।



फिर आपकी कथा तापको बढ़ानेवाली भी है। तप्तजीवनम्—हमारे जीवनको इस कथाने तप्त कर दिया है। आपके वियोगका ताप अब सहन नहीं होता। आपका वियोग असह्य है।'

प्रभुने कहा—'तुम मेरी कथाकी निन्दा कर रही हो। लोग तो मेरी कथाका बहुत बखान करते हैं, विशेषकर यह कहकर कि यह कथा पापोंको जलाती है—कल्मपापहम्।

तब गोपियोंने कहा—'आपकी कथासे पाप जलते हैं, यह बात तो सच्ची है किन्तु इस कथासे संताप बढ़ता है, यह बात भी ठीक है। कारण कि कथा सुननेके पश्चात् आपके दर्शनकी आतुरता बढ़ती है। कथा पापोंको जलाती है किन्तु सन्तापको बढ़ाती है।'

प्रभुने कहा—'मेरी कथा श्रवणमंगलम् है। मेरी कथा सुननेसे मंगल होता है।' यह सुनकर गोपीने कहा—'कथा-श्रवणसे मंगल होता है किन्तु इसका परिणाम तो अमंगल-मय ही है। देखिये हमारी कैसी दशा हो गयी है। हम घर छोड़कर आईं, फिर भी आपने हमें अंगीकार नहीं किया। हमने आपके लिए संसार छोड़ दिया तथा आपने हमें छोड़ दिया। हम न तो घरकी रहीं न घाट की। इससे हमें ऐसा लगता है कि आपकी कथा सुननेसे भले ही थोड़ा मंगल होता हो किन्तु परिणाम तो इसका मंगल नहीं है।'

'लाला! मैं तुमसे ठीक कह रही हूँ। किसी स्थानपर तुम्हारी कथा होती होगी तो मैं सबसे कहूँगी कि लालाकी कथा मत सुनना। इनकी कथा जो सुनेगा उसकी हमारी-जैसी दुर्दशा हो जायेगी। हम भी इसी कारण रातमें वनमें भटकती रही हैं—सो लाला! तुम्हारी कथाओंका केवल श्रवण ही मंगल है, उसके परिणाममें मंगल नहीं है।'

प्रभुने कहा—'तुम मेरी कथाकी निन्दा कर रही हो। तुम जानती हो कि बड़े बड़े ऋषि-मुनि तथा शुकदेवजी जैसे ज्ञानी पुरुष भी मेरी कथाका बखान करते हैं।' तब गोपीने उत्तर दिया—'ठीक है। श्रीमदाततम्—आप लक्ष्मीके पति हैं न। इसलिये कथा कहनेवाले आपसे कुछ-न कुछ प्राप्त करते रहते हैं और आपका प्रचार करते रहते हैं। लक्ष्मी आपके हाथमें हैं तथा धनवान लोगोंको भी आप लक्ष्मीका दान करते हैं। इसीलिए



वे लोग भी पोथी-पुस्तकोंके द्वारा आपका बहुत प्रचार करते हैं—आततम् । सो इस सबसे क्या ?'

भगवान् बोले—'मेरी कथाका दान तो सबसे श्रेष्ठ दानोंमें गिना गया है । भूरिदाः जनाः—कथाका दान करनेवाले तो बड़े दानवीर हैं ।'

दो खण्डने— ऐसी धातु है । 'भूरिदाः' शब्दका अर्थ है अतिशय दान देनेवाला तथा व्याकरणके आधारपर इसका अर्थ होता है सबका विनाश करनेवाला । गोपी व्यंग्यमें कहती है—'महाराज ! आपकी कथाका दान देनेसे, दान देनेवालेका विनाश ही होता है । कोई युवक यदि आपकी कथा सुनता है तो उसे कथा सुननेके पश्चात् घर अच्छा नहीं लगता । धन्धा करनेकी उसकी इच्छातक नहीं होती । आपकी कथा तो ऐसी है कि सुननेवालेसे संसार छुड़ा देती है तथा उसे कुटुम्बसे विमुख कर देती है । कथा सुननेके पश्चात् वह सब कुछ छोड़कर वृन्दावन चला जाता है । उसका अन्न और वस्त्र तकका कोई ठिकाना नहीं रहता वह दरिद्री-सा बनकर 'राधा-कृष्ण राधा-कृष्ण' का कीर्तन करता फिरता है ।

यदनुचरितलीला कर्णपीयूषविप्रुट्
सकृददनविधूता द्वन्द्वधर्मा विनष्टाः ।
सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना
बहव इह विहङ्गा भिक्षुचर्यां चरन्ति ।।

राजा-महाराज भी आपकी कथा सुनकर राज्यका त्यागकर गरीब बन जाते हैं, दरिद्री बन जाते हैं । बादमें राजमहलमें रहना भी उन्हें अच्छा नहीं लगता । इस प्रकार आपकी कथा घरको उजाड़नेवाली है, सर्वस्वका विनाश करनेवाली है । आपकी कथा कहनेवाला कोई दानवीर नहीं है बल्कि वह तो सर्वस्वका विनाश करनेवाला ही है ।'



बाह्य रूपसे देखनेपर इस व्यंग्य-वाणीमें निन्दाकी प्रतीतिमात्र होती है. किन्तु वास्तवमें तो इस निन्दामें भी स्तुतिके भाव ही भरे हुए हैं।

'आपकी कथा संसारके मोहसे छुड़ाती है, विकार-वासनाका विनाश करती है। आपकी कथा सच्चे सुखका भान करानेवाली है।'---श्रीकृष्ण-कथा इतनी मंगलमय है। संयोग-में मिलता है, अधरामृत तथा वियोगमें कथामृत-नामामृत। इस कथामृत-नामामृतका जो पान करता है, वह जहाँ जाता है, आनन्द ही पाता है। उसका मन कभी भी बिगड़ता नहीं। कथामृत-नामामृत तो स्वर्गके अमृतसे भी श्रेष्ठ है।

यह संसार काममय है। इस संसारका मूल ही काम है। जहाँ देखें, वहीं अधिक-तर कामका राज्य ही दिखाई देता है। मनुष्य जब बहिर्मुख होता है, तब उसे काम-ही-काम दिखाई देता है तथा विष इसको जलाने लगता है। संसारका विष जब जलाने लगे, वासनाका विष जब तप्त करने लगे, तभी कथामृत-नामामृतका पान करना चाहिये।

एक वैष्णवने तो ठाकुरजीसे एक बार थोड़ी शिकायत भी की। उसने भगवान्से कहा---"महाराज! आपने यह बहुत सुन्दर संसार रचकर जीवको इसमें फँसाकर रख दिया है। आप कहते हैं---'मेरा ध्यान करो, मेरी सेवा और मेरा स्मरण करो।' किन्तु संसारके विषय जीवको इतने अधिक मीठे लगते हैं कि जीवकी उन्हें छोड़नेकी इच्छा ही नहीं होती। संसारके विषय दुःख देते हैं, फिर भी वे अच्छे लगते हैं। आपने यह संसार इतना अधिक सुन्दर बना दिया, यह बहुत बुरा किया।"

प्रभुने कहा---'मैं क्या करूँ! मैं बहुत सुन्दर हूँ न। इसीलिए मेरा बनाया हुआ संसार भी सुन्दर हो गया।'---भगवान् बहुत सुन्दर हैं। वे कारण हैं, संसार उनका कार्य है। कारणरूप परमात्मा अत्यन्त सुन्दर हैं, इसीलिये उनका कार्यरूप यह संसार भी बहुत सुन्दर बन गया।

वैष्णव बोला---'महाराज! आपकी तो यह लीला हो गयी किन्तु हमारा तो इससे मरण हो गया। यह संसार सुन्दर बना, इसीसे हमारा पतन हो गया। संसार सुन्दर न



होता तो सभी लोग भक्तिमें तल्लीन हो गये होते । पर क्या करें, संसारके सौन्दर्यमें मन इस तरह फंसा रहता है कि दु:ख प्राप्त होनेपर भी जीव मनसे इस संसारको नहीं छोड़ना चाहता ।'

प्रभुने कहा--'संसारमें जीवका मन न फँसे, इसीलिए मैंने जगतको कथामृत और नामामृत दिया है । जब-जब मन बहिर्मुख हो और वह विकार-वासनाका स्पर्श करे, तब-तब ही कथामृत व नामामृतका पान करोगे तो संसारका वासना-रूप विष तुम्हारा स्पर्श तक न करेगा ।'

जब साँप और नेवलेका युद्ध होता है तब साँपके द्वारा काटे जानेपर नेवलेको साँपका जहर चढ़ जाता है किन्तु नेवलेको जंगलकी एक ऐसी वनस्पतिकी जानकारी रहती है, जिसके खानेसे साँपका जहर उतर जाता है । इसीलिए साँपसे युद्ध करते-करते नेवला साँपको जंगलमें ले जाता है और अवसर पाते ही उस वनस्पतिको चबाकर आ जाता है । तब साँपका जहर उसपर असर नहीं डालता और फिरसे वह साँपसे लड़ने लगता है । इसी तरह यह संसार-रूपी सर्प जीवके पीछे पड़ा है । उसका विकार-वासना रूपी जहर जीवको बहुत त्रास देता है । ऐसे त्रासके समय, कथामृत और नामामृतका पान करना चाहिए ।

कथामृतसे भी अधिक नामामृत श्रेष्ठ है । कथामृत तो कभी कोई वक्ता मिले, वैष्णव मिले या कोई सत्संगी मिले, तभी मिलता है किन्तु नामामृतको इन सबकी जरूरत नहीं । कथामृतको कई वस्तुओंकी अपेक्षा है जब कि नामामृत निरपेक्ष है । प्रभुने इस जगतको ये दो अमृत प्रदान किये हैं ।

जब गोपियोंने प्रभुसे व्यंग्यमें कहा कि आपकी कथा तो घरबार छुड़ानेवाली है, घरको उजाड़नेवाली है तथा सर्वस्वका विनाश करनेवाली है तब प्रभुने कहा--'तुम मुझसे यह शिकायत कैसे कर रही हो ? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?'



गोपी कहती है—'आपने हमारा विगाड़ तो कुछ नहीं किया किन्तु आपकी मन्द मुस्कान, आपकी प्रेम-भीनी दृष्टि तथा आपकी एक-एक लीला हमारा घ्यान खींच लेती हैं, हमारे हृदयका स्पर्श करती है तथा हमारे मनको क्षुब्धकर डालती है।'

प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं विहरणं च ते घ्यान मङ्गलम्।
रहसि संविदो या हृदिस्पृशः कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि ॥१०॥

भावार्थ—हे प्रिय! हे कपटी! तुम्हारा हास्य, तुम्हारी प्रेम-भीनी दृष्टि, घ्यानके लिये मंगलकारी तुम्हारा विहार तथा हृदयको स्पर्श करनेवाली तुम्हारे द्वारा एकान्तमें की गई संकेत वार्ताएं हमारे मनमें क्षोभ पैदा करती हैं।

गोपियोंने इस श्लोकमें भगवानको पहला सम्बोधन दिया है—प्रिय। श्रीकृष्ण गोपियोंको अत्यन्त प्रिय हैं। आप वैष्णव हैं। अपने भीतर थोड़ी दृष्टि डालिए और अपने मनसे पूछिए कि आपका प्रिय कौन है?

कितने ही लोगोंको पैसा वहुत प्रिय लगता है। व्यापारी उदार होते हैं तो कंजूस भी पूरे होते हैं। सेवाके निमित्त कुछ देनेके लिए वैठेंगे तो हजार-दो-हजार रुपये दे डालेंगे किन्तु घरमें सौ-दो सौ रुपयेका कोई नुकसान हो जायेगा तो घण्टे-दो घण्टे तक अपने हृदयको जलायेंगे। पैसा उन्हें प्रिय लगता है और इसीलिये पैसेका नुकसान होता है तो उनका हृदय जलता है। वैष्णव तो वह है, जिसको ठाकुरजीके वियोगमें ही दुःखकी अनुभूति होती है, परमात्माका जव विस्मरण होता है तभी उसे दुःख होता है। परमात्माका वियोग जिसे जलाता है, वही वैष्णव है। पैसे का नुकसान होनेपर जिसका हृदय जलता है वह वैष्णव नहीं है।

कितने ही लोग ऐसे होते हैं कि कहीं उनका थोड़ा-सा अपमान हो जाय तो एकाध घण्टे तक उनका हृदय जलता रहता है और वे सोचने लगते हैं कि अमुक व्यक्तिने मुझसे ऐसा कहा। अरे! किसीने कुछ कह दिया तो क्या हो गया? अपना हृदय क्यों जलाते हो?



कोई यदि तुम्हारी निन्दा करे तो उससे तुम्हारा थोड़ा भी नुकसान होनेवाला नहीं है। तुम्हारे लिये यदि कोई खराब शब्द बोले तो उससे भी तुम्हारा बाल बांका होनेवाला नहीं है। किसी का हाथ आप पकड़ सकते हैं लेकिन किसीकी जीभ तो पकड़ नहीं सकते। मनुष्य जीभका ठीक-ठीक उपयोग नहीं करता है। वह जो चाहे सो बोलता है। जब बोलता है तब परमात्माका डर भी वह अपने मनमें नहीं रखता। कोई आपकी निन्दा करे या आपके लिये खराब शब्द बोले तो अपना हृदय थोड़ा भी नहीं जलाइये।

'मैं अपने भगवान्‌का हूँ परन्तु मैं उन्हें भूल गया हूँ। परमात्माका विस्मरण मुझसे हो गया है। आज मैं भगवान्‌की ठीक-ठीक सेवा भी नहीं कर सका।' ऐसा सोचकर अपना हृदय अवश्य जलाइये। अन्य किसी कारणोंके लिए हृदय मत जलाइये। नुकसान हो जाय तो भले ही हो जाने दीजिये।

आप कहेंगे—'महाराज! आपको ऐसा कहनेमें क्या जोर पड़ता है? आज कितनी महँगाई है, क्या आपको मालूम है?'—ठीक है भाई; लेकिन नुकसान होनेके पश्चात् हृदय जलानेसे क्या लाभ है? घरमें जब नुकसान हो जाय तब मनको समझाओ कि घरमें अन्यायका धन आया होगा। प्रभुने बड़ी कृपा की कि ऐसे धनको निकाल बाहर किया। जय श्रीकृष्ण! बहुत अच्छा हुआ। मुझे अब अपना हृदय नहीं जलाना है।

आपके हृदयमें श्रीकृष्ण विराजे हुए हैं। आप यदि अपना हृदय जलायेंगे तो अन्दर विराजे हुए ठाकुरजीको बड़ा श्रम होगा। हृदय जलानेसे बढ़कर कोई पाप नहीं। वैष्णव वह है जिसे श्रीकृष्ण ही प्रिय लगते हैं।

गोपियाँ भगवान्‌को 'प्रिय' सम्बोधन देती हैं। वे भगवान्‌से कहती हैं कि आप हमें अत्यन्त प्रिय हैं। हे प्रिय। 'ते' कहकर उन्होंने मध्यम पुरुषका प्रयोग किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि गोपियाँ श्रीकृष्णके सामने हैं। गोपियोंका प्रभुसे वियोग बहिरङ्गमें ही



है किन्तु उनको ऐसा अनुभव होता है कि श्रीकृष्ण यहीं विराजे हुए हैं और हम जो बोल रही हैं, उसे सुन रहे हैं।

गोपी कहती है—'हे प्रिय ! आपका स्मित हास्य (प्रहसितम्), आपकी प्रेम-भरी दृष्टि (प्रेमवीक्षणम्), आपका लालित्यमय विहरण (विहरणम्) तथा एकान्तमें बोले गये आपके वचन (रहसि संविदः)—ये चारों ही ध्यान द्वारा मंगल करनेवाले हैं (ध्यान-मंगलम्) तथा हृदयका स्पर्श करनेवाले हैं (हृदिस्पृशः)। अब जब कि आप हमें त्यागकर अन्तर्द्धान हो गये हैं तब हमारे मनको ये चारों बातें क्षुब्ध कर रहीं हैं—क्षोभयन्ति नो मनः।'

प्रभुके स्मितहास्यका, उनकी प्रेमदृष्टिका, उनकी माधुर्यमयी लीलाओंका मंगलमय ध्यान कीजिये। आपका जीवन मंगलमय बन जायगा। ध्यान उसीका होता है, जिसके प्रति प्रेम होता है अथवा वैर होता है। अनेक बार मन वैरीका ध्यान करता है तथा अनेक बार अपने प्रियका ध्यान करता है। जगत्में रहना बुरा नहीं है, उसका ध्यान करना ही बुरा है। आपको ध्यान करना ही हो तो ध्यान कीजिये कि परमात्मा आपको देखकर मधुर हास्य कर रहे हैं, आपको प्रेमसे देख रहे हैं। परमात्माकी एक-एक लीलाका ध्यान कीजिये। परमात्माका ध्यान मंगलकारी है। संसारका ध्यान अमंगलकारी है।

परमात्माका स्मितहास्य हृदयस्पर्शी है। उस हास्यके दर्शन करेंगे तो आनन्द आयेगा। वैसे हास्यके अनेक भेद बताये गये हैं। जैसे मुखपर मन्द मुस्कराहटका आना तथा खिलखिलाकर हँसना आदि। जीव जब ईश्वरसे विमुख रहता है, संसारके विषयोंमें सुखका अनुभव करता है तथा प्रभुकी शरणमें आनेवाला यह जीव परमात्माको छोड़कर जगत्का हो जाता है, जगत्से बहुत सी भीख माँगने लगता है, तब भगवान् जोरसे खिलखिलाकर हँसते हैं किन्तु जब जीव परमात्माकी सेवा और उनके स्मरणमें लीन रहता है, तब भगवान्-के मुखारविन्दपर मन्द-मन्द मधुर मुस्कराहट आ जाती है। परमात्माका स्मितहास्य आनन्द देनेवाला है, शोकको दूर करनेवाला है। हासं हरेस्त्वखिललोकतीर्थशोकाश्रुसागर-विशोषणम्।



ठाकुरजी जीवको प्रेमसे देखते हैं। यह जीव जब ठाकुरजीका प्रेमसे ध्यान करने बैठता है, उनका स्मरण करने बैठता है, सेवा करता है, तब ठाकुरजीकी दृष्टि उसके ऊपर पड़ती है। भगवान्‌की आँखें तब प्रेमसे सराबोर हो उठती हैं। उनकी नजर तब भक्तके हृदयको छू लेती है।

प्रभुका विहार भी हृदयस्पर्शी है। मायामें फँसे हुए जीवको अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये भगवान् लीला करते हैं। 'इस समय ठाकुरजी वृन्दावनमें क्या करते होंगे?'—इस बातपर विचार करते हुए आप अपने मनको वृन्दावन ले जाइये। 'इस समय भगवान् अपने ग्वाल-बाल मित्रोंके साथ खेलते होंगे। अब बाँसुरी बजाते होंगे। अब घर लौटनेकी तैयारी कर रहे होंगे।'—इस प्रकार परमात्माकी एक-एक लीलाका चिन्तन कीजिये। ऐसे चिन्तनसे आप जगत्‌को भूल जायेंगे और आपका हृदय आनन्दसे भर उठेगा।

जहाँ सच्चा प्रेम है, वहाँ हृदय प्रियतमके पास दौड़ ही जाता है, चाहे फिर प्रियतम दूर ही क्यों न हों। साथ ही प्रियतमके पास दौड़कर प्रेमीका मन घर बैठे-बैठे यह अनुभव भी कर लेता है कि प्रियतम क्या कर रहा होगा। वैष्णव तो अष्टयामकी सेवाका चिन्तन करते हैं। प्रातःकाल कन्हैया कब उठते हैं! यशोदा माँ किस प्रकार उनका शृंगार करती हैं, लालाको कितना सुन्दर पीताम्बर धारण कराती हैं। किस प्रकार माखन-मिसरी उन्हें आरोगवाती हैं। कन्हैया कैसे गायोंको ले जाते हैं, गायोंकी किस प्रकार सेवा करते हैं—अर्थात् प्रातःकालसे लेकर रासलीलाके समयतककी एक-एक लीलाका चिन्तन बहुत आवश्यक है।

जो परमात्मा हिलता नहीं, चलता नहीं, बोलता नहीं, ऐसे प्रभुका ध्यान करते-करते मन थक जाता है किन्तु वैष्णवोंका ठाकुर (ब्रह्म) तो बोलता है, चलता है, हँसता है, खेलता है, नाचता है। छुम-छुम करता कन्हैया जिस प्रकार चलता है, ऐसा चलना भी किसीको कभी आ सकता है क्या? आँखें बन्द करके आप ध्यान तो कीजिये—'कन्हैया



धीमी-धीमी गतिसे आ रहे हैं। मार्गमें गोपियाँ उनका दर्शन कर रहीं हैं। लालाको वे तिलक लगा रही हैं, उनकी आरती उतार रही हैं।—'परमात्माकी एक-एक लीलाका चिन्तन करनेसे भी आनन्द मिलता है।

फिर गोपियाँ तो नित्य ही प्रत्यक्ष इन लीलाओंका दर्शन करतीं थीं। लालाके साथ बातचीत करतीं थीं। उनके हृदयको कैसा आनन्द मिलता होगा! हाँ तो गोपी कहती है—'आपने हमारे साथ एकान्तमें जो बातें की थीं, क्या आपको वे सब याद आती हैं?'

गोपियोंके साथ भगवान् प्रेमसे बातें करते हैं—'अरी सखी! तू मुझे बहुत प्रिय लगती है। मैं तो तुम लोगोंके लिये गोलोक छोड़कर आया हूँ। तुम्हारे लिये ग्वाला बना हूँ। तुमने मुझे प्रेमसे बाँध रक्खा है। मैं तुम्हें छोड़कर किसी भी दिन कहीं जाऊँगा नहीं।'

गोपी कहती है—"रहसि—अर्थात् एकान्तमें आपने प्रेमसे जो बातें की थीं, वे हमारे हृदयको छू गयी हैं, हमारे हृदयको आनन्दसे भर गयी हैं परन्तु हे कपटी! एकान्तमें तो तुम कहते थे कि 'मैं तुम्हें छोड़कर कभी कहीं जाऊँगा ही नहीं।' और आज अब हमें छोड़कर चले गये हो। अरे तुमने तो हमसे कपट किया है।"

गोपी पहले तो भगवान्को कहती है 'प्रिय' और फिर दूसरा सम्बोधन देती है—'कपटी' भगवान्का कपट भी गोपीको प्रिय लगता है। वह कहती है—'नाथ। अपने स्मितहास्यसे, अपनी प्रेम-भरी दृष्टि से, अपनी मनोहारी चितवन-से एकान्तमें की गयीं अपनी बातोंसे आपने हमारा अन्तःकरण हर लिया है और इस प्रकार आपने हमें यहाँ बुलाया है। तब भी आप यों अन्तर्द्धान हो गये हो। हे कुहक! हमसे ऐसा कपट करके तुमने हमारे मनको क्षुब्ध कर डाला है, यह उचित नहीं। नाथ! अब तो प्रकट हो जाओ। दयित दृश्यताम्।'

गोपीगीत ग्रन्थ



मध्य रात्रिका समय है। गोपियाँ वृन्दावनमें विराज रही हैं और प्रेममें तन्मय हुईं प्रात:कालीन लीलाका दर्शन तथा वर्णन कर रही हैं—

चलसि यद् व्रजाच्चारयन्पशून्नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम्।
शिलतृणांकुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कान्त गच्छति ।।११।।

भावार्थ—जब पशुओंको चरानेके लिये आप व्रजसे पधारते हो, तब हे नाथ! आपके कमलसे भी अधिक सुन्दर चरण कंकड़ियों, तिनकों तथा अंकुरोंसे पीड़ित होते होंगे। हे कान्त! इस विचारसे ही हमारा मन व्याकुल हो रहा है।

गोपी कहती है—'आप गायोंके पीछे-पीछे फिरते हो। आप बहुत उदार हो। बहुत प्रेमी हो। व्रजके पशुओंकी भी आप बहुत सहृदयतासे देखभाल करते हो।'

गायोंको सुखी करनेके लिये श्रीकृष्ण गायोंके पीछे-पीछे फिरते हैं—पशून् चारयन् चलसि। गायोंका प्रेम भी ऐसा है कि यदि श्रीकृष्ण वनमें नहीं जाते हैं, तो ये गायें भी नहीं जातीं। गोपीको आश्चर्य तो इस बातपर होता है कि नन्द बाबा तो किसी दिन गायोंको लेकर वनमें जाते नहीं। यशोदाजी भी नहीं जातीं तो फिर ये कन्हैया कैसे जाते हैं? हमें तो दुःख यह होता है कि ये गायें लालाकी ओर पीठ करके चलती हैं फिर भी लालाको बिलकुल बुरा नहीं लगता।

गोपी प्रभुसे कहती है—'आप गायोंके पीछे चलते हो, तब आपके कमलसे भी कोमल चरणोंको परिश्रम होता होगा। हमारा मन तो यह सोचकर ही व्याकुल हो उठता है। कभी-कभी तो हमारे मनमें ऐसा भी आता है कि रोज-रोज इन गायोंको लेकर आप जाते कैसे हैं? हमारे मनमें ऐसा भी आता है कि हमसे भी अधिक प्रेम करनेवाली कोई सखी वनमें होगी। उसीसे मिलने आप जाते होंगे। कलिलतां मनःकान्त गच्छति। कलि अर्थात् कलह। यों हमारा मन, कलहकी लतामें उलझ जाता है। फिर बादमें मनमें यह भी आता है कि नहीं, नहीं, ऐसा तो नहीं हो सकता। श्रीकृष्णका हमसे आत्यन्तिक प्रेम है।'



ग्यारहवें श्लोकमें उस लीलाका वर्णन है जब श्रीकृष्ण दिनमें गायोंके पीछे-पीछे फिरते हैं तथा बारहवें श्लोकमें सायंकालकी इस लीलाका दर्शन भी गोपियोंको वृन्दावनमें आधी रातको ही हो रहा है।

दिनपरिक्षये नीलकुन्तलैर्वनरुहाननं विभ्रदावृतम् ।
घनरजस्वलं दर्शयन्मुहुर्मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि ॥१२॥

भावार्थ—सायङ्कालमें बिखरी हुई काली अलकोंसे घिरे तथा गायोंके खुरोंसे उड़नेवाली रजसे धूसरित हुए अपने कमल-जैसे मुखको दिखाकर हे वीर! हमारे मनमें बारम्बार मिलनकी तीव्र भावना जाग्रत करते हो।

गोपी कहती है—'सायंकालके समयमें आप गायोंको लेकर घर लौटते हो, तब आपके मुखारविन्दके दर्शन करनेसे अतिशय आनन्द मिलता है।'

श्रीकृष्णके केश अत्यन्त सुन्दर हैं, रेशम जैसे कोमल हैं, घुंघराले हैं। जब श्रीकृष्ण गायोंके पीछे-पीछे चलते हैं, तब गायोंके खुरोंसे जो रज उड़ती है, वह उनकी अलकोंसे चिपक जाती है किन्तु श्रीकृष्ण उस रजको हटाते नहीं। गो-रज अतिशय पवित्र है। श्रीकृष्ण गायोंके सेवक हैं। यशोदा माँसे बार-बार कहते हैं कि माँ! मैं तो गायोंकी सेवा करनेके लिये ही तेरे घर आया हूँ।

घनरजस्वलं दर्शयन् मुहुः। सायंकालमें गोपियाँ प्रभुके दर्शन करती हैं। तब प्रभु गोपियोंसे कहते हैं—तुम मेरा ध्यान-स्मरण करते-करते सारे दिन तन्मय हुई रहती हो। इस कारण, तुम्हें छोड़कर भले ही मैं गायोंको लेकर वनमें चला जाता हूँ किन्तु तुम्हारे वियोगमें मैं भी तुम्हारा ध्यान करते-करते तुम्हारे स्मरणमें इतना तन्मय हो गया था कि गो-रज जो मेरे बालोंसे चिपक गयी थी, उसे हटानेका भान तक भी मुझे न हुआ।'

गोपी कहती है—'नाथ! सायंकालमें आप धीरे-धीरे चलते हो। तब आपके मंगलमय मुखारविन्दके दर्शन करके खूब आनन्द मिलता है।'



प्रातःकाल तो कन्हैया गायोंके पीछे दौड़ते हुए जाते हैं किन्तु सायंकालमें धीरे-धीरे चलकर गायोंके पीछे आते हैं। मार्गमें कितनी ही गोपियाँ, लालाकी आरती उतारती हैं और कितनी ही वृद्धा गोपियाँ, लालाको नजर न लगे, इसलिए नजर भी उतारती हैं।

प्रत्येक व्रजवासीकी ऐसी इच्छा है कि मैं लालाका वन्दन करूँ किन्तु यशोदा मैयाके सामने कोई भी लालाको प्रणाम नहीं करता। कारण कि ऐसा करनेपर माँ यशोदा उलाहना देने लगती हैं। वे कहती है--'तुम मेरे लालाका वन्दन करते हो, यह ठीक नहीं है। यह तो तुम्हारा बालक हैं। यह कोई भगवान थोड़े ही है। आप लोग तो इससे बड़े हैं। आप इसको प्रणाम न करें। हाँ, आप तो लालाको आशीर्वाद दें कि कन्हैयाकी आयु मार्कण्डेय ऋषि जैसी हो। कन्हैया बहुत सुखी हो।'

माँका वात्सल्य भाव था, इसलिए अवस्थामें बड़े लोग लालाको प्रणाम करें, यह माँ को अच्छा नहीं लगा। यशोदा माँ कहती हैं--'तुम इस प्रकार इसको प्रणाम करोगे, तो इसकी आयु छोटी हो जायेगी। बड़े लोग जब बालकको प्रणाम करते हैं तो बालककी आयु कम हो जाती है। कन्हैया तो तुम्हारा बालक है।'

माँ ऐसा कहती हैं, इसलिए उनके सामने कोई लालाको प्रणाम नहीं करता किन्तु सभीको ऐसा निश्चय है कि श्रीकृष्ण न तो देव हैं और न यशोदाके बालक ही हैं। ये तो परमात्मा ही हैं और हमारा उद्धार करनेके लिये आये हैं। इसीलिए व्रजवासियोंका ऐसा नियम है कि जब सायंकालमें प्रभु गायोंके पीछे-पीछे पधारते हैं तो सारे रास्तेमें दोनों ओर खड़े होकर वे लालाका वन्दन करते हैं--वन्द्यमानचरणः पथि वृद्धैः। एक ओर वृद्ध पुरुष खड़े रहते हैं और दूसरी ओर वृद्धाएँ खड़ी रहती हैं।

कन्हैयाकी दृष्टि तो चारों ओर रहती है। सभीका वे ध्यान रखते हैं। प्रेम चतुर्मुख होता है। जैसा जिसका अधिकार, जिसके हृदयमें जैसा भाव, उसीके अनुसार श्रीकृष्ण उसे आनन्द देते हैं और इसीलिए वे धीरे-धीरे चलते हैं।



गोपी कहती है—'सायंकालमें जब आप आते हैं, तब आपके दर्शनसे बहुत आनन्द मिलता है किन्तु बादमें मिलनकी तीव्र आतुरता जाग उठती है। मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि।'

दर्शनमें द्रष्टा और दृश्य—ऐसा भेदभाव है। जहाँ भेद है, जहां द्वैत है, वहाँ पूर्ण आनन्द नहीं। पूर्ण आनन्द तो अद्वैतमें है। गोपीको दर्शनसे आनन्द तो मिलता है किन्तु तृप्ति नहीं मिलती। तृप्ति तो मिलनेमें ही है। गोपीमें मिलनकी तीव्र भावना जाग्रत होती है। फिर लालाके नंगे चरणोंको देखकर गोपीके हृदयमें ऐसा भाव भी जागता है—'ऐसे सुन्दर और सुकोमल चरण हैं ये! इन चरणोंसे ये जंगल में बिना किसी पदत्राणके चलते होंगे, तब इन्हें कितना परिश्रम होता होगा? इससे तो अच्छा हो कि श्रीकृष्ण इन श्रीचरणोंको हमारे हृदयमें रखें, हमारे हृदयमें स्थिर कर दें।'

इसीलिए वह कहती है—

> प्रणतकामदं पद्मजार्चितं धरणिमण्डनं ध्येयमापदि।
> चरणपंकजं शन्तमं च ते रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥१३॥

भावार्थ—'आपको प्रणाम करनेकी कामनाको पूरा करनेवाले, लक्ष्मीजी (अथवा ब्रह्म) के द्वारा पूजित, पृथ्वीके श्रृंगार-रूप, आपत्तिके समय चिन्तन करने-योग्य तथा सुखकारी जो आपके चरण हैं, इन्हें हे आधि (मनकी पीडा) को हरनेवाले! हे रमण! हमारे वक्षःस्थलपर पधराइए।'

इस श्लोकमें गोपी प्रभुके चरण-कमलों को अपने हृदयपर पधरानेकी माँग करती है। गोपियोंके हृदय प्रेमसे भरे हैं। श्रीकृष्णमें अलौकिक ऐश्वर्य है, फिर भी गोपीको ऐसा लगता है कि श्रीकृष्णके चरण अत्यन्त कोमल हैं। इसीलिये वह प्रभुसे विनती करती है—'हे नाथ! अब आप जंगलमें न भटकें। आप नंगे चरणोंसे वनमें फिरते हैं। यह हमसे देखा नहीं जाता। आपके सुकोमल चरणोंको परिश्रम होता होगा। इस कारण, हमारे हृदयमें ही अपने इन चरणोंको स्थिर कर दीजिये। अब आगेसे आप जंगलमें नहीं फिरना।'



भगवान्के चरण कैसे हैं ? ये तो चारों पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाले हैं। 'धरणि-मण्डनम्' विशेषणके द्वारा धर्म पुरुषार्थ सिद्ध होता है। पद्मजार्चितम् का भाव है कि ये अर्थ पुरुषार्थ सिद्ध करनेवाले हैं। प्रणतकामदम् से अभिप्राय है कि ये चरण काम पुरुषार्थ सिद्ध करते हैं तथा ध्येयमापदि व शन्तमं-से अर्थ है कि ये चरण मोक्ष भी सिद्ध करते हैं। तो ऐसे हमारे भगवान् के चरण हैं।

परमात्माके चरणोंमें गोपियाँ विशेष आसक्त हैं। ये भगवान्से कहती हैं—'हे नाथ ! आपके चरणोंकी जो वन्दना करता है, उसके भीतर स्थित कामका ये चरण, विनाश कर देते हैं।' कामदम् शब्दके दो अर्थ होते हैं। कामं द्यति, दमयति, खण्डयति इति कामदम्। जो कामका विनाश कर देते हैं, उन्हें कामदम् कहते हैं अथवा कामान् ददाति इति कामदम्। जो कामको सिद्ध कर देते हैं, वे हैं कामदम्।

जो कोई परमात्माके चरणोंका आश्रय ले लेता है, उसके मनमें भगवान् किसी भी दिन विकार-वासनाओंको जागने ही नहीं देते। जो लोग परमात्माके चरणोंसे प्रेम करते हैं, जो उनके श्रीचरणोंको अपने हृदयमें स्थिर करते हैं, उनके मनमें काम जागता ही नहीं और जो जन प्रभुके चरणोंमें प्रणत हो जाते हैं, उनके सारे मनोरथोंको भगवान् पूर्ण कर देते हैं।

सार यह कि प्रभुके चरणोंमें निरन्तर वन्दन करते रहिये। वन्दन-भक्ति, प्रत्येक कालमें हो सकती है। वन्दन-भक्तिसे अभिमान मरता है। व्यवहारका काम करते-करते मानवको कई बार मान मिलता है, सफलता मिलती है और कभी व्यक्तिकी उन्नति हो जाती है, तो उसे अभिमान भी हो जाता है। परमात्माके उपकारोंका स्मरण कर, वन्दन करते रहेंगे तो हृदयमें दीनता टिक सकेगी।

कितने ही लोग तो ऐसे होते हैं कि वे ठाकुरजीके उपकारोंका स्मरण करते ही नहीं। किसी बार जब गम्भीर बीमारी आ जाती है तो मानवको लगता है, इस बीमारीसे तो मैं उठ ही नहीं सकूँगा। तब वह घबराता है परन्तु जब ठाकुरजी कृपा करते हैं तो ठीक



हो जाता है किन्तु फिर भी वह ठाकुरजीको याद नहीं करता बल्कि डाक्टर साहबकी ही पूजा करता है। 'डाक्टर बहुत अच्छे हैं, आधी रात तक बैठे रहेते थे। एक-एक घण्टे बाद इञ्जेक्शन देते रहते थे।'—अरे! डाक्टरमें क्या प्राण बचानेकी पूरी-पूरी शक्ति है? डाक्टरके इञ्जेक्शनमें यदि बचानेकी शक्ति हो तो उसके घरमें किसी भी दिन अच्युतम् केशवम् न हो—किसीका मरण ही न हो किन्तु इस मानवको यह सब दिखायी ही नहीं देता। अरे! बचानेवाले तो भगवान् हैं। 'मुझे प्रभुने बचाया है' कहकर परमात्माका उपकार मानिये। प्रभुके चरणोंका वन्दन कीजिये। हृदयमें दीनताको टिकानेके लिये निरन्तर वन्दन कीजिये। जो अभिमानी हैं, उनकी ओर तो भगवान् देखते तक नहीं। अभिमानीका मनोरथ भी भगवान् पूरा नहीं करते।

यह जीव ठाकुरजीको क्या देकर प्रसन्न कर सकता है? इस जगत्में जो कुछ है, उसके स्वामी श्रीकृष्ण ही हैं। कोई यदि ऐसा मानता हो कि मैं तो ठाकुरजीकी सेवा करता हूँ, उनको हिंडोलेमें झुलाता हूँ तो भगवान् कहते हैं कि यह तो ठीक है किन्तु ऐसे व्यक्तिसे परमात्मा विशेष प्रसन्न नहीं होते। वे कहते हैं—'अरे! यह सब मेरा ही तो है। गुलाबके फूल मैंने ही उत्पन्न किये हैं। फूलोंमें सुगन्ध मैंने ही भरी है। इसमें तुम्हारा क्या है? तू यह सब लाता कहाँसे है? सब कुछ मेरा है। मैं ही सबका स्वामी हूँ।'

कितने ही लोग सेवा करते हैं और ऐसा समझते हैं कि मन्दिरका सारा प्रबन्ध तो मैं करता हूँ। सारे दिन मैं ही सेवामें लगा रहता हूँ। भगवान् तब ऐसे लोगोंसे कहते हैं—मूर्ख! तुझे तो बोलना भी नहीं आता। तेरा सारा घर तो मैं ही चलाता हूँ। फिर तू मेरे मन्दिरकी क्या सेवा कर पायेगा। तुझे सब कुछ तो मैंने ही दिया है।

जो अभिमानी हैं, वे ईश्वरको बिलकुल अच्छे नहीं लगते। प्रणत हो जाइये, नम्र होइये। हृदयसे निरन्तर दीन बने रहिये। जो हृदयसे झुकता है, वह श्रीकृष्णको बहुत प्रिय लगता है। प्रणत होनेके पश्चात् भगवान् जीवके सकल मनोरथोंको पूर्ण कर देते हैं।

गोपीगीत ग्रन्थ



महाभारत में कथा आती है । कौरवों और पाण्डवोंके बीच युद्ध तय हो चुका है । उस युद्धमें सहायना माँगनेके लिये दुर्योधन और अर्जुन, द्वारकामें आते हैं । दुर्योधन दुष्ट है, अभिमानी है । इसने भरी सभामें प्रभुका अपमान किया है किन्तु श्रीकृष्ण तो अन्तर्यामी हैं, योगेश्वर हैं । घरपर आये हुए सभी लोगोंको वे प्रेमसे ही देखते हैं । आपका अपमान करनेवाला यदि आपके घरपर आये तो क्या आप उसे ठीक-ठीक प्रेम-भरी दृष्टिसे देख पायेंगे ? किन्तु श्रीकृष्ण तो महान् गृहस्थ हैं और महान् संन्यासी भी हैं ।

संन्यासीका अभिप्राय यह नहीं है कि जो भगवा वस्त्र पहिने वह संन्यासी । हाँ तो इधर श्रीकृष्ण सभीको प्रेमसे – एक दृष्टिसे निहारते हैं । चाहे फिर घरपर आनेवाला अर्जुन हो या दुर्योधन । ऐसी बात तो शुकदेवजी जैसे विरक्त संन्यासियोंको भी अच्छी लगती है । गृहस्थाश्रममें भी प्रभुने इस प्रकार संन्यासका महत्त्व दरसाया है । संन्यासी महापुरुष ब्रह्मदृष्टि रखते हैं । वे सबको एक ही भावसे देखते हैं । उनकी दृष्टिमें न कोई शत्रु है और न कोई मित्र । ब्रह्मज्ञानी होना तो थोड़ा आसान है किन्तु व्यवहारमें हर समय ब्रह्म-दृष्टि रखना बहुत ही कठिन है । व्यवहारमें ब्रह्मदृष्टि न रखी जाय तो ब्रह्मज्ञान बह जाता है । कथा-स्थल में आपकी जगह पर यदि कोई वैष्णव बैठ जाय तो क्या आपकी ब्रह्मदृष्टि रह पाती है ? तब तो आपके चेहरेका भाव एकदम बदल जायेगा, आँखें भी बदल जायेंगी ।

सभामें अपमान करनेवाला दुर्योधन मदद माँगने आया है । दूसरी ओर श्रीकृष्णसे अत्यन्त प्रेम करनेवाला अर्जुन भी आया है । तब प्रभु थोड़ा खेल करते हैं । दो व्यक्ति आये हैं, ऐसा जानकर वे लीला करते हैं । चादर ओढ़कर श्रीकृष्ण पलंगपर सो जाते हैं ।

दुर्योधन आया तो पहिले ही था । आकर उसे ठाकुरजीके चरणोंमें बैठना चाहिये था किन्तु वह था मूर्ख और अभिमानी । उसने ऐसा विचार किया कि मैं तो बहुत बुद्धिमान् और बड़ा राजा हूँ । फिर क्या मैं श्रीकृष्णके चरणोंमें बैठूं ? इसलिये श्रीकृष्णके मस्तककी ओर एक सिंहासन था, उसपर वह जा बैठा । अर्जुन बादमें आये और श्रीकृष्णके चरणोंमें बैठ गये ।



श्रीकृष्णकी निद्रा टूटी, वे जागे। जागते ही उनकी दृष्टि अर्जुनपर पड़ी। दुर्योधनने तब कहा--'अर्जुनसे पहिले मैं आया हुआ हूँ।' प्रभु बोले--'तुम पहिले तो आये हो किन्तु मेरी दृष्टि तो अर्जुनपर ही पहिले पड़ी है।'

अर्जुन प्रभुके चरणोंमें बैठे थे, इसलिये प्रभुकी दृष्टि उनपर ही पहिले पड़ी। दुर्योधन मूर्ख था, उसमें अकड़ थी। उसकी अक्लका दिवाला निकल चुका था। फिर भगवान् क्या करते ? प्रभु बोले--'तुम दोनों सहायता के लिये आये हो, अतः तुम दोनोंको ही मैं मदद दूंगा। एक पक्षमें मेरी नारायणी सेना रहेगी और दूसरे पक्षमें अस्त्र-शस्त्रसे रहित अकेला मैं रहूँगा।

दुर्योधनने विचार किया कि श्रीकृष्ण तो लड़नेवाले हैं नहीं और मुझे तो आवश्यकता लड़नेवालोंकी है। यह सोचकर वह बोला-- 'महाराज! अपनी सेना मुझे दे दीजिये। आपकी मुझे आवश्यकता नहीं है।' ऐसे दुर्योधनको माँगना ही नहीं आया।

भगवान् तब अर्जुनसे बोले-- 'मुझे कोई लड़ना तो है नहीं।' यह सुनकर अर्जुनने उत्तर दिया--'महाराज! मैं आपको थोड़ा भी परिश्रम नहीं होने दूंगा। आप केवल मेरे साथ रहें। आप साथ रहेंगे तो मुझे शक्ति मिलेगी। लड़ूंगा मैं किन्तु आप केवल मेरा साथ दें।' यों श्रीकृष्ण अर्जुनके सारथी हुए। रण-क्षेत्रमें उन्होंने अर्जुनको पार उतारा। उसे विजयी बनाया। तो भगवान्के चरणोंमें जो प्रणत होता है, उसके सम्पूर्ण मनोरथोंको भगवान् पूरा करते हैं--प्रणतकामदम्।

पद्मजार्चितम्. पद्मजा अर्थात् लक्ष्मीजी। लक्ष्मीजी परमात्माके श्रीचरणोंका नित्य पूजन-अर्चन करती हैं। परमात्माके चरण धरणिमण्डनम् भी हैं, धरतीके भूषण हैं। फिर गोपी कहती है--'आपके चरण ध्येयमापदि हैं--आपत्तिकालमें ध्यान करने योग्य हैं।' जब विपत्ति आवे, तब प्रभुके चरणोंका ही ध्यान करना चाहिए।

आज गोपियोंपर विपत्ति आ पड़ी है। इनका श्रीकृष्णसे वियोग हुआ है। श्रीकृष्णसे वियोग ही तो विपत्ति है तथा श्रीकृष्णसे संयोग ही सम्पत्ति है। सम्पत्ति और



विपत्तिकी व्याख्या, सन्त भिन्न प्रकारसे करते हैं। मनसे श्रीकृष्णका स्मरण करनेको ये सम्पत्ति मानते हैं तथा उनके विस्मरणको ही विपत्ति मानते हैं। आज गोपियोंका भगवानसे वियोग हुआ है और इससे वे आपत्तिमें पड़ी हैं। इस आपत्तिके समयमें इन्होंने भगवानके चरणोंमें अपनी दृष्टि स्थिर कर ली है तथा भगवानको वे मना रही हैं—'हे नाथ ! आपत्तिकालमें जो आपके चरणारविंदोंका ध्यान करता है, उसकी आपत्तियोंका विनाश होता है और उसके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। आप ऐसे अपने चरणोंको हमारे वक्षःस्थलपर पधराइये।' गोपियाँ इस श्लोकमें भगवान्‌को दो सम्बोधन प्रदान करती हैं—पहला रमण और दूसरा आधिहृन्।

शरीर जब दुःख पाता है, उसे व्याधि कहते हैं और मनको जब पीड़ा मिलती है, उसे आधि कहते हैं। मनकी पीड़ाको परमात्मा दूर करते हैं। वे आधिहृन् जो हैं। परमात्मासे प्रेम कीजिये तो मनकी पीड़ा दूर होगी। मन संसारके जड़ पदार्थोंसे प्रेम करता है, इसीलिए दुःखी है।

गोपी कहती है—'नाथ ! आप आधिहृन् हैं तथा रमण हैं। आप खेलनेके लिए ही तो गोकुलमें आये हैं। खेलनेका आनन्द वैकुण्ठमें कहाँ है ? हाँ, इसीलिये तो आप वैकुण्ठ छोड़कर यहाँ आये हैं। खेलना आपको बहुत अच्छा लगता है। इसीलिए आपका नाम रमण है।'

ठाकुरजीको लीला बहुत अच्छी लगती है। वे इस प्रकार खेलते हैं, जिससे जगत्‌के जीवोंका कल्याण हो। श्रीकृष्णके प्रत्येक खेलमें बोध भरा हुआ है, तत्त्व भरा हुआ है। गोपी कहती है—'नाथ! खेलनेके लिए ही तो आपने लीला की है। हमको आपने अपनाया है, हमें सखी माना है। खेलनेमें कभी-कभी भूल भी हो जाती है। हमसे भी कोई भूल हुई है। इसलिए आप रुष्ट होकर अन्तर्द्धान हो गये हो परन्तु यह उचित नहीं है। आपको यदि इसी प्रकार अन्तर्द्धान होना था तो फिर हमें आपने सखी किसलिये बनाया और



अपनाया ही क्यों ? मैं आपकी सखी हूँ। आपके विना मेरा कोई भी नहीं है। दयित दृश्यताम्। अब बहुत हो गया। जल्दी प्रकट हो जाइये और हमें दर्शन दीजिये।'

भगवान्ने पूछा—'दर्शन करनेसे क्या होगा, फिर क्या करोगी ?' गोपीने कहा—'अपना अधरामृत हमें प्रदान कीजिये।'

सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम्।
इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥१४॥

भावार्थ—प्रेमको बढ़ानेवाला, शोकका नाश करनेवाला, स्वरमयी वंशीके द्वारा मनोहर रीतिसे चुम्बित तथा मनुष्योंको अन्य रागोंकी विस्मृति करा देनेवाला अपना अधरामृत, हे वीर ! हमें प्रदान कीजिये।

श्रीकृष्णका अधरामृत तो श्रीकृष्णका ही स्वरूप है। श्रीकृष्णसे उनका अधरामृत भिन्न नहीं है। परमात्मा श्रीकृष्ण, परमानन्दके स्वरूप हैं। श्रीकृष्णका अधरामृत ही परमानन्द है। इस जीवात्माको परमात्माके स्वरूप और स्वभावका ज्ञान नहीं है। उनके स्वरूप और स्वभावको यह जीव ठीक-ठीक समझे तो फिर यह जगत्से प्रेम करे ही नहीं। जीव, जगत्से बहुत प्रेम करके ही दुःखी होता है। प्रेम किये विना तो कोई रह ही नहीं सकता। प्रत्येक व्यक्तिके हृदयमें प्रेमकी भावना होती है। यह कब जागेगी, किसीको देखकर जागेगी, कोई नहीं कह सकता किन्तु यदि जीव सावधान रहे तथा प्रभुसे ही प्रेम करे तो इसका दुःख टल जाता है।

परमात्मा अत्यन्त उदार हैं। श्रीकृष्ण महान् प्रेमी हैं। जो उनसे प्रेम करता है, उसे वे अपने-जैसा यानी श्रीकृष्ण ही बना देते हैं। आप किसी राजाकी बहुत खुशामद करें, बहुत टहल-चाकरी करें तो वह आपको एकाध गाँव इनाममें दे देगा किन्तु आपको वह अपना पूरा राज्य नहीं देगा। जीव जब किसीको कुछ देता है तब संकोचके साथ ही देता है। लोहा यदि पारस मणिका स्पर्श करे तो वह पारसमणि लोहेको सोना ही बनायेगी। लोहेको पारस बनानेकी शक्ति पारसमें नहीं है किन्तु श्रीकृष्ण जिसका स्पर्श करते हैं, जिसे



प्रेमसे अपनाते हैं उसको वे परमात्मा, परमात्मा ही बना देते हैं। रासलीलामें श्रीकृष्ण, गोपियोंको श्रीकृष्ण ही बना देते हैं। श्रीकृष्णका अधरामृत जिसे मिलता है, वह आनन्द-रूप हो जाता है। जो शक्ति भगवान्‌में है, वह शक्ति उनके अधरामृतमें भी है। श्रीकृष्ण और उनका अधरामृत, भिन्न-भिन्न नहीं हैं, एक ही हैं।

गोपी इसी अधरामृतकी माँग करती है और कहती है—'नाथ! अपना अधरामृत प्रदान कीजिये जिससे कि हमारे प्रेमकी वृद्धि हो। आपका अधरामृत प्रेमको बढ़ानेवाला है। सुरतवर्धनम् है।' सुरत शब्दका अर्थ होता है प्रेम।

प्रेम-मार्ग अत्यन्त दिव्य है। प्रेमका आरम्भ तो द्वैतसे होता है किन्तु जब प्रेम अत्यन्त बढ़ जाता है, तब मैं और तू—ये दोनों अलग रह नहीं सकते। 'मैं' मिटकर तू ही तू जब रह जाता है, तभी वह प्रेम कहलाता है। भागवत, परमहंस-संहिता है। परमहंसोंको अद्वैत प्रिय है। प्रेम, अद्वैतकी ही साधना करता है। प्रेम जबतक कम होता है, तबतक प्रेमी और प्रियतम, अलग-अलग रहते हैं किन्तु प्रेम जब अत्यन्त बढ़ जाता है, तब दुई यानी हम दो हैं, ऐसा भाव मिट जाता है। प्रेमी और प्रियतम एक हो जाते हैं। तब न तो कोई प्रेमी रहता है और न कोई प्रियतम। तब रह जाता है शुद्ध प्रेम, परम प्रेम, परम आनन्द।

प्रियतमको जबतक पता नहीं चलता कि अमुक व्यक्ति मेरा सच्चा प्रेमी है, तभी तक प्रियतम, प्रियतम है किन्तु जब उसे निश्चय व विश्वास हो जाता है कि यही मेरा सच्चा प्रेमी है, तब प्रियतम और प्रेमी दोनों मिलकर एक हो जाते हैं। नदियाँ समुद्रमें आकर मिलती हैं परन्तु मिलनेके पश्चात् तो वे समुद्रसे अलग रह ही नहीं सकतीं। इनका नाम और रूप भी समुद्रमें लय हो जाता है। समुद्रसे मिलनेके पश्चात् तो समुद्र भी नदी-को अपने स्वरूपसे अलग नहीं कर सकता।

गोपी कहती है—'आपका अधरामृत प्रेमको बढ़ानेवाला है। फिर, वह शोकका नाश करनेवाला भी है—शोकनाशनम्।' लौकिक अधरामृत, शोकका नाश करनेवाला नहीं है। वैसे लौकिक अधरामृतकी तो यहाँ बात ही नही है। श्रीमद्भागवत, समाधि-भाषाका

ग्रन्थ है। श्रीमहाप्रभुजीकी आज्ञा है कि भागवतके शब्दोंका अर्थ, लौकिक भाषाके द्वारा मत करो। यह श्रीमद्‌भागवत, व्यासनारायणजी की समाधि-भाषा है। व्यासजीको समाधिमें जो कुछ दिखायी दिया, जो कुछ अनुभव हुआ, उसका उन्होंने ज्यों-का-त्यों वर्णन कर दिया। गोपीको श्रीकृष्ण-वियोगका शोक है। नित्य संयोगरूपी अधरामृतसे यह दूर होता है, इसीलिये श्रीकृष्णका अधरामृत, शोकका नाश करनेवाला है।

श्रीकृष्णका अधरामृत, जिसको प्राप्त होता है, वह कालसे भी भयभीत नहीं होता। इस जीवके पीछे काल पड़ा हुआ है। कालसे तो सभी डरते हैं। कालके भी काल, परमात्मा श्रीकृष्ण हैं।

सामान्य रूपसे ऐसा नियम है कि जहाँ कामकी गति होती है, वहाँ कालकी भी गति होती है। जहाँ काम नहीं जा सकता, वहाँ काल भी नहीं जा सकता। काम, बड़ा भयंकर है। काम प्रबल भी है। कामका नाश कामसे ही करना पड़ता है। जो कोई जीव परमात्माको काम अर्पित करता है, उसके कामका नाश तब वे प्रभु कर देते हैं। काम एक काँटे जैसा है। जंगलमें चलते-चलते किसीके पैरमें काँटा लग गया। अब वह व्यक्ति वहाँ सुई कहाँसे लाये! इसलिये उसने एक और काँटा हाथमें लिया और उस काँटेसे पैरका काँटा निकाला। बादमें दोनों काँटे उसने फेंक दिये। मतलब यह कि काँटेसे काँटा निकलता है। लोहेको लोहेसे ही काटना पड़ता है। अन्य किसी धातुसे लोहा कटता नहीं। इसी तरह लौकिक कामका नाश, अलौकिक कामसे करना होता है। जो भगवद्‌काम अर्थात् प्रभुकी ही कामना करनेवाला होता है, जिसमें प्रभुके मिलनकी तीव्र आतुरता जागती है, उसके कामका नाश हो जाता है।

गोपीमें तो काम रहा ही नहीं। वह तो पूर्ण रूपसे निष्काम है किन्तु यह जीव तो अनादि कालसे कामकी मार खाता चला आ रहा है। इसी कारण इसे दुःख मिलता है, इसे शोकका अनुभव होता है। जिसे भगवान्‌का अधरामृत मिलता है, उसके सभी दुःखों और शोकोंका विनाश हो जाता है। बड़ेसे बड़ा दुःख कौन-सा? जन्मका तथा मरणका दुःख—ये



दोनों दुःख ही भयंकर हैं। जिसे श्रीकृष्णका अधरामृत प्राप्त होता है, वह जन्म-मरणके इस त्राससे छूट जाता है।

श्रीकृष्ण तो इतने उदार हैं कि वंशीको भी अधरामृत प्रदान करते हैं—स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम्। श्रीकृष्णका अधरामृत कैसा है? वह तो प्रेमको बढ़ानेवाला है, शोकका विनाशकरने वाला है तथा आसक्तिको भुलानेवाला है। गोपी कहती है—'इतररागविस्मारणम्। इतरस्य विस्मारणम् तथा रागस्य विस्मारणम्। हे कृष्ण। आप ऐसा अधरामृत प्रदान कीजिये कि जिससे मुझे जगत्की पूर्ण विस्मृति हो जाय, संसारके किसी भी विषयमें मेरी आसक्ति न रहे तथा मुझे हर समय आपका ही अनुभव होता रहे। मैं एक क्षणके लिए भी आपसे अलग न रहूँ।'

अनादिकालसे यह जीव श्रीकृष्णसे अलग जा पड़ा है। सहस्रपरिवत्सरमितकाल-जातम्। हजारों जन्मोंसे यह श्रीकृष्णसे अलग हो चुका है। यह जब श्रीकृष्णको पुनः प्राप्त कर लेगा तो फिर न तो यह जगत् रहेगा, न कोई दूसरा जीव रहेगा और न फिर शोक व दुःख ही रहेंगे। तब इसे सबकी या समग्रकी स्मृति रहेगी। श्रीकृष्णसे भिन्न किसी वस्तुका स्मरण ही दुःखका कारण है। जहाँ जगत् है, वहीं सुख-दुःख भी हैं। जहाँ जगत् नहीं है, वहाँ न तो सुख है और न दुःख ही है। वहाँ तो है केवल आनन्द, परम आनन्द। जिसे श्रीकृष्णका अधरामृत मिल जाता है, उसे जगत्का विस्मरण हो जाता है और इसीलिये गोपी, श्रीकृष्णके अधरामृतकी माँग करती है।

गोपी शब्दका एक अर्थ होता है—गोभिः पिबति इति गोपी। गोभिः—इन्द्रियैः भक्तिरसं पिबति। जो प्रत्येक इन्द्रियसे भक्तिरसका पान करती है, वह है गोपी।

अनेक बार ऐसा होता है कि मानव, कानोंको भक्तिमें लगाता है, किन्तु आँखोंको नहीं लगाता। कुछ लोग जब आँखोंको भक्तिमें लगाते हैं तब उनकी जीभ, भक्तिरसमें लीन नहीं रहती। इस बातको खूब ध्यानमें रखिए कि जिस इन्द्रियसे आप भक्ति नहीं



करेंगे, वह इन्द्रिय, बहिर्मुख हो जायगी और यह भी सम्भव है कि उस इन्द्रियसे पाप भी होने लगें।

पाप, अत्यन्त सूक्ष्म होता है। यह जब होता है, तब जीवको इतना पता भी नहीं चलता कि उसकी आंख, पाप कर रही है, उसकी आँखमें पाप आ गया है या उसकी आँखमें काम आ गया है। मनुष्य, अनेक बार ऐसा समझता है कि मैं मन्दिरमें जाता हूँ, मैं भक्ति करता हूँ, किन्तु एक इन्द्रियसे तो यह भक्ति करता है और दूसरी इन्द्रियसे पाप भी करता है।

प्रत्येक इन्द्रियके द्वारा भक्ति-रसका पान करना आवश्यक है। जो व्यक्ति प्रत्येक इन्द्रियसे भक्ति-रसका पान करता है, उसके हृदयमें ही गोपी-भाव जागता है। जहाँ तक स्त्रीत्व और पुरुषत्वका भाव मौजूद रहता है, वहाँ तक गोपी-भाव जाग्रत् नहीं होता। महापुरुषोंने ग्रन्थोंमें लिखा है कि मनके मरनेके पश्चात् ही गोपी भाव जागता है। गोपी-भावकी कथा करनेमें हम जैसे साधारण मानव समर्थ नहीं हैं तथा हमारे लिए यह कथा कहना उचित नहीं है। हम तो गोपी-भावकी कथा सुननेके लायक भी नहीं हैं। गोपी-भाव तो सर्वोच्च भाव है—इस भावमें न तो स्त्रीत्व है और न पुरुषत्व ही है। इसमें तो शुद्ध प्रेम ही प्रेम है।

गोपी, प्रत्येक इन्द्रिय से भक्ति-रसका पान करती है तथा भगवान्से कहती है— 'हमें ऐसा अधरामृत प्रदान कीजिए जिससे कि आपके बिना अर्थात् श्रीकृष्णके बिना हमें और सभी कुछ भूल जाय। हम ऐसे आनन्द में मग्न हो जायें कि जिस आनन्दमें श्रीकृष्णके बिना और कुछ भी शेष न रहे। आप तो उदार हैं, वीर हैं। वितर वीर। कृपानाथ! कृपा कीजिए।'

प्रभुने कहा—'तुम अधरामृतकी मांग करती हो किन्तु इसे प्राप्त करनेके लिए अधिकार भी तो होना चाहिए। अनधिकारीको तो मैं अधरामृत प्रदान करता नहीं।'



तब गोपी कहती है--'नाथ ! हमारे हृदयमें आपके दर्शन व मिलनकी कितनी आतुरता है, यह क्या आप जानते नहीं ?'

अटति यद् भवानह्नि काननं त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् ।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम् ।।१५।।

भावार्थ--दिनमें जब आप वनमें फिरते हैं, तब आपको न देखकर एक क्षण भी हमें युगके समान लगता है तथा सायंकालमें घुंघराली अलकोंसे युक्त आपके श्रीमुखका जब हम दर्शन करती हैं, तब हमें लगता है कि हमारी आँखोंकी पलकोंको बनानेवाले ब्रह्मा भी जड़ हैं ।

गोपी कहती है--'आप हमें छोड़कर वनमें जाते हो, तब आपके दर्शनके बिना एक क्षणभी हमें युगके समान प्रतीत होता है ।'

त्रुटि-कालका अर्थ क्या है ? सूच्याभिन्ने पद्मपत्रे त्रुटिरित्यभिधीयते । कमलकी एक पंखुड़ीमें सुईसे छेद करनेमें जितना समय लगता है, उसे त्रुटि कहते हैं । श्रीकृष्णके दर्शनके बिना एक त्रुटि या एक क्षण भी गोपियोंको युग-जैसा लम्बा लगता है । दुःखितस्य निशा कल्पः । सुखितस्य निशा क्षणम् । दुःखी मनुष्यको रात, अनेक वर्षोंके समान लगती है । सुखीके लिए वही रात, तिनके-जैसी छोटी हो जाती है । हाँ तो गोपी कहती जा रही है--कृष्ण ! तुम्हारे वियोगमें एक क्षण भी युगके समान लगता है । घुंघराले और रेशम-जैसे कोमल बालोंसे घिरे तुम्हारे सुन्दर व कुटिलकुन्तल श्रीमुखके दर्शनके लिये हमारा मन ललचाता है ।

वह फिर कहती है--'आपके दर्शनके बिना हम रह ही नहीं सकतीं । आपके दर्शन करनेमें तो हमें अपनी पलकें भी रुकावट उत्पन्न करती मालूम होती हैं । जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम् । दृशाम् पक्ष्मकृद् जडः--इस विधाताने ये पलकें बनाई ही किसलिये हैं ? ब्रह्माजीको विवेक नहीं है, तभी तो उन्होंने इन आँखोंके ऊपर पलकें बना दी हैं । ये पलकें



ही तो श्रीकृष्ण-दर्शनमें विघ्न डालती हैं। नाथ ! दयित दृश्यताम्। हमें दर्शन दीजिए। आपके लिये तो हमने सर्वस्वका त्याग किया है।' इस श्लोक से सिद्ध होता है कि गोपी, प्रेम-संन्यासिनी है।

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवानतिविलंघ्य तेऽन्त्यच्युतागताः ।
गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि ॥१६॥

भावार्थ—हे अच्युत ! पति, पुत्र, कुटुम्ब, भाई और सगे सम्बन्धियोंका उल्लंघन-कर हम आपके पास आई हैं। आपके गीतसे हम मोहित हो गई हैं। हमारे आगमनका कारण भी आप जानते हो। हे कपटी ! रातके समय आपके बिना ऐसा दूसरा कौन पुरुष है, जो स्त्रियोंका त्याग करे।

इस श्लोकमें श्रीकृष्णको 'अच्युत' सम्बोधन दिया गया है। गोपी कहती है 'हे अच्युत ! आपके लिये हमने पति, पुत्र तथा लोक-लाजका त्याग किया है। अब आप इस वचनको मत तोड़ियेगा, जो आपने हमको दिया है। आप अच्युत जो हैं।' गोपीने पति-त्यागके द्वारा पुत्रैषणा, पुत्र-त्यागके द्वारा वित्तैषणा, तथा बन्धु-त्यागके द्वारा लोकैषणाका त्याग किया है। सच्चा मुमुक्षु, तीन एषणाओं (इच्छाओं) का त्याग करके परमात्माके चरणोंमें आता है। साथ ही जिसे भक्तिमें आनन्द आता है, उसे संसारके सभी सुःख तुच्छ लगते हैं। संसारका कोई भी सुख जिसे मीठा लगता है, वह भक्ति नहीं कर सकता।

गोपी कहती है—'हमने आपके लिये सब कुछ छोड़ दिया है। इसलिये हे नाथ ! कृपा करो। फिर, हमने जो त्याग किया है, वह बुद्धिपूर्वक किया है, ज्ञानपूर्वक किया है—अतिविलंघ्य।'

गोपियोंका त्याग, साधारण त्याग नहीं है। वह त्याग, अन्तःकरणसे किया हुआ त्याग है तथा वह बुद्धिपूर्ण भी है। अज्ञान अथवा अप्राप्तिकी दशामें जो त्याग किया जाता है, उस त्यागका महत्त्व नहीं है। श्रीकृष्णके बिना सब कुछ तुच्छ है, ऐसे दृढ़ निश्चयके साथ गोपियोंने त्याग किया है।



व्यासजी ने श्रावण मासके माहात्म्यमें एक कथाका उल्लेख किया है। कथा है कि एक बार वृत्त तथा अनुवृत्त नामके दो ब्राह्मण, श्रावणके पवित्र महीनेमें यात्रा करनेके लिये निकले। वे घूमते-फिरते प्रयागराजमें आये। उस दिन जन्माष्टमी का पर्व था। प्रयागराजके मुख्य ठाकुर हैं माधवराय। प्रयागराजमें वेणी-माधवके रूपमें ये विराजित हैं और प्रतिष्ठित हैं। माधवरायको वेणी अत्यन्त प्रिय हैं। ठाकुरजीको वहाँ वेणी भेंटमें दी जाती है, इसीलिये उनका नाम पड़ा है वेणी-माधव।

इन ब्राह्मणोंको वेणीमाधवजीके दर्शनके लिए जाना था। तभी जोरसे बारिश होने लगी। वे रास्ता भी भूल गये। रातका समय था। घोर अन्धकार छाया हुआ था। ऐसी दशामें तो वे बहुत घबराये। उनके रास्तेमें एक वेश्याका मकान था। जब वे उस मकानके पाससे गुजर रहे थे, तब उस मकानमें रहने वाली वेश्या नाच-गानमें व्यस्त थी। वृत्तने कहा—'मैं तो अब सारी रात यहीं रुकूँगा। यहीं बैठकर मैं ठाकुरजीका स्मरण करूँगा।' यह सुनकर अनुवृत्तने कहा—'ऐसा लगता है कि तुम्हारी नीयत बहुत बिगड़ गई है। वेश्याका घर तो नरकका द्वार है। हम लोग तो तीर्थयात्रा करनेके लिये निकले हैं और फिर जन्माष्टमीकी ऐसी पवित्र रातमें तू यहाँ रहनेके लिये कह रहा है, यह ठीक नहीं है।'

वृत्तने कहा—'मैं समझता हूँ कि यहाँ रुकना ठीक नहीं है किन्तु हम लोग परदेशमें आये हैं। अब अन्धेरा छाया हुआ है, जोरसे बरसात हो रही है और हम रास्ता भी भूल गये हैं। मन्दिर कब तक पहुँचेंगे, कहा नहीं जा सकता। इसलिये मैं तो यहीं बैठकर माधवरायकी मानसी सेवा करूँगा, श्रीकृष्णका स्मरण करूँगा।'

इस प्रकार वृत्त तो रहा वेश्याके घरमें और अनुवृत्त रास्ता पूछते-पूछते मन्दिर पहुँच गया। मन्दिरमें उत्सव हो रहा था। लोग कीर्त्तन कर रहे थे। वहाँ श्रीकृष्ण-जन्मकी कथा हो रही थी। इतनेपर भी मन्दिरमें गये हुये अनुवृतको वेश्याके घरकी याद आ रही थी। वह सोचने लगा कि मेरा भाई वहाँ कैसी मौज-मस्तीमें बैठा होगा। मैं कैसा मूर्ख हूँ, जो यहाँ चला आया। जो हो, इस प्रसंगमें अनुवृत्तके विचारोंका ज्यादा वर्णन



करनेकी जरूरत नहीं है।

एक भाई बैठा था माधवरायके मन्दिरमें और दूसरा बैठा था वेश्याके घरमें। अब मन्दिरमें जो बैठा था, वह तो मन्दिरमें रहकर भी वेश्याका स्मरण-चिन्तन करने लगा और वेश्याके घरमें जो बैठा था, वह वेश्याको तो देख नहीं रहा था। वेश्याके गानेको भी वह नहीं सुन रहा था। वह तो वहाँ आँखें बन्द करके बैठा था। वहाँ बैठा-बैठा वह वेणी-माधवका स्मरण कर रहा था। प्रभुकी मानसी सेवामें वह लीन था।

दूसरे दिन ही उन दोनोंकी मृत्यु हो गई। जो सारी रात वेश्याके घरमें बैठा रहा था, वह तो विमानमें बैठकर प्रभुके धाममें गया और जो भाई सारी रात मन्दिर में रहा था, उसकी दुर्गति हुई।

त्याग बुद्धिपूर्वक ही होना चाहिए। त्याग भी तनकी तुलनामें मनसे ही अधिक होना चाहिए। 'सच्चा त्याग कबीरका जो दिलसे दिया उतार'—जब तक त्याग मनसे न हो, तो त्यागका महत्त्व ही नहीं।

कितने ही लोग जन्माष्टमी के दिन उपवास तो करते हैं किन्तु स्मरण, परमात्माके अतिरिक्त किसी और का करते हैं। उपवासके दिन परमात्माका स्मरण करते-करते सेवामें इतना तन्मय हो जाय कि भूख-प्यास न लगे तो समझिये कि वह सच्चा उपवास है। 'उप' शब्दका अर्थ है समीपमें तथा 'वास' का अर्थ है रहना। मनसे प्रभुके चरणोंमें रहने को ही उपवास कहते हैं। सोचिए, किसी वस्तुके न खानेको उपवास कहते हैं क्या? ऐसा उपवास तो साधारण उपवास है, देहका उपवास है। सच्चा उपवास तो मनसे ही होता है।

गोपी भगवान्से कहती है—'अतिविलंध्य—संसारके सम्बन्ध तुच्छ हैं, दुःखरूप हैं। संसार-सुखसे तो हम मनसे ऊब गयी हैं, उकता चुकी हैं और इसीलिये पति-पुत्र सभीका हमने मनसे त्याग कर दिया है और आपके श्रीचरणोंमें हम उपस्थित हो गयी हैं।'

जीव जब परमात्माके लिये लौकिक सुखोंका त्याग कर देता है, तभी भगवान्‌को



उसपर थोड़ी दया आती है। संसारके सभी सुखोंका भोग करे और थोड़ा-सा प्रभु-स्मरण व प्रभु-सेवा करे तो इस प्रकार ठकुरजी बहुत प्रसन्न नहीं होते। परमात्माके लिये संसारके सभी सुखोंका मनसे ही त्याग करे, तभी यह जीव परमात्माको प्रिय लगता है।

घरमें कोई दुःख आ जाय या कोई अड़चन उपस्थित हो जाय तो लोग मनौती मानते हैं कि मैं दूध नहीं लूंगा या मैं घी नहीं खाऊँगा। ऐसी मनौती वे स्वार्थके लिये ही मानते हैं किन्तु परमात्माके लिये वे कोई मनौती नहीं मानते। वे ऐसा नहीं कहते कि जबतक मुझे श्रीकृष्णके दर्शन नहीं होंगे, तबतक मैं मिठाई नहीं खाऊँगा।

गोपी भगवान्से कहती है—'हमने तो आपके लिये मनसे सभी चीजोंका त्याग कर दिया है। आपके विना हमें सब कुछ तुच्छ लगता है। नाथ! हम जो कुछ कह रही हैं, यह सत्य है या असत्य, वह आप जानते हैं। आप गतिविदः हैं, अन्तर्यामी हैं।'

श्रीकृष्णका अन्तर्यामी स्वरूप सबके भीतर स्थित है। किसीके मनमें कोई भी भाव जागे तो उसका पता ठाकुरजीको लग जाता है। मनसे भी अगर कोई पाप कर रहा हो तो श्रीकृष्ण उसे भी जान जाते हैं। जो मनका भी साक्षी है, वही तो ईश्वर है।

गोपी भगवान्से कहती है—'आप अन्तःसाक्षी हैं। जैसे आप बाहर विराजमान हैं, वैसे ही प्रत्येक जीवके अन्तरमें अन्तर्यामी रूपसे भी आप विराजमान हैं। आप गतिविद् हैं। हमारी गति आप अच्छी तरह जानते हैं। आपसे कुछ भी छिपा नहीं है। आप सर्वज्ञ हैं। नाथ! आपने वंशी बजाकर हमें बुलाया है। हम बुद्धिपूर्वक सर्वस्वका त्यागकर आपके लिए दौड़ी आई हैं और अब आप हमारा त्याग कर रहे हो, यह उचित नहीं है। नाथ! ऐसा न कीजिये। आपने हमारे कानमें जो कुछ कहा है, एकान्तमें आपने हमारे साथ जो बातें की हैं, वे सब हमको याद आती हैं।

रहसि संविदं हृच्छयोदयं प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम्।
बृहदुरः श्रियो वीक्ष्य धाम ते मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः ॥१७॥

भावार्थ—एकान्तमें आपसे हमारी जो बातें हुई हैं, उनसे हमारे मनमें हुआ



इच्छाका उदय तथा आपका हँसता हुआ मुख-कमल, आपकी प्रेम-भीनी दृष्टि व लक्ष्मीका निवासरूप आपका उरस्थल—इन सबको देखकर हमारे भीतर असाधारण भावना जागती है और हमारा मन मोहको अपनाये ले रहा है।

कन्हैया, गोपियोंके साथ प्रेमपूर्वक बातें करते हैं। जैसे—'मैं तो गोलोकधामसे तुम्हारे लिए ही यहाँ आया हूँ। अरी सखी! तू मुझे बहुत अच्छी लगती है। मैं तो तुम्हारे लिए यह सब लीला कर रहा हूँ।'

लीला करके श्रीकृष्णको सुख मिलता है और लीला न करके श्रीकृष्ण दुःखी होते हों, ऐसी बात नहीं है। श्रीकृष्ण तो आनन्द-रूप हैं उन्हें न तो सुख होता है और न दुःख होता है। ये तो हम सबके लिए लीला करते हैं।

गोपी कहती है—एकान्तमें आपने मुझसे कहा है कि यह तुम्हारा अन्तिम जन्म है। अब तुम्हें कृतार्थ होना है।—प्रेमकी, मिलनकी ये सब बातें जो आपने की हैं, वे सब मुझे याद आ रहीं हैं। एकान्तमें आपके द्वारा की गई बातें, आपका मन्द हास्य तथा आपकी प्रेम-भीनी दृष्टि—हमारे हृदयमें आपसे मिलनेकी जो भावना है, उसे बढाये दे रहीं है। हृच्छयोदयम्। आपका विशाल वक्षःस्थल श्रियःधाम यानी सम्पूण सौन्दर्य-शोभाकाधाम है। इसके दर्शन करनेके पश्चात् तो अब किसीको देखनेकी इच्छा ही नहीं होती।'

जिन आँखोंको श्रीकृष्णके दर्शनका आनन्द नहीं मिला है, वे आँखें ही जगतमें भटकती हैं किन्तु जिन आखोंको एक बार भी श्रीकृष्णके दर्शनका आनन्द मिला है, वे किसीको भी देखनेके लिये तैयार नहीं होतीं। मुहुः अतिस्पृहा मुह्यते मनः— गोपीके हृदयमें साधारण स्पृहा नहीं है, साधारण भावना नहीं है बल्कि अतिस्पृहा है। अतिस्पृहाका ऐसा भाव है कि अब हमारी आपके सिवा और किसीको देखनेकी इच्छा नहीं होती। आपके अतिरिक्त और किसीकी बातें सुननेकी भी इच्छा नहीं होती।

गोपी कहती है—"नाथ! कृपा करो। दयित दृश्यताम् विश्वमङ्गलम्—विश्वके



कल्याणके लिये और विशेष रूपसे व्रजवनौकसाम्—व्रजवासियोंके उद्धारके लिये ही आपका अवतार हुआ है—

व्रजवनौकसां व्यक्तिरंग ते वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमंगलम् ।
त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ॥१८॥

भावार्थ—आपका प्राकट्य, वृजवासियोंके पापोंको हरनेवाला है तथा जगत्का कल्याण करनेवाला है। इसलिये हे प्रिय आत्मन् । अपनी इच्छाके अनुसार हमें वह औषध प्रदान करो, जो हमारे हृदय-रोगोंका नाश करे।

हम तो गाँवमें रहनेवाली अनपढ़ गोपियाँ हैं। हमें तो कुछ भी नहीं आता। हमने तो 'कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण'—तुम्हारे इस नामका आश्रय लिया है। हम तुम्हारा ही चिन्तन करती हैं, तुम्हारे नामका ही जप करती हैं। नाथ ! अब निष्ठुर मत बनो। अब तो थोड़े उदार हो जाओ। वृजवासियोंका और जगत्का कल्याण करनेके लिये ही तो तुम्हारा प्राकट्य हुआ है।"

त्वत् स्पृहात्मनाम्—'गोपी' शब्दका अर्थ इस शब्दावलिसे निकलता है। श्रीकृष्ण-मिलनकी स्पृहा ही गोपीकी आत्मा है। गोपी स्त्री नही है और न पुरुष ही है। श्रीकृष्ण-दर्शन व श्रीकृष्ण-मिलनकी तीव्र आतुरता ही गोपी है।

'त्यज मनाक् च नः—हम आपकी हैं और आप हमारे हैं। स्वजनहृद्रुजाम्- हमारे हृदयमें एक रोग है—श्रीकृष्ण-वियोगरूपी रोग। इस रोगको आप दूर करें। हे स्वजन ! अपने दर्शन-मिलनका आनन्द देकर हमारे हृद्-रोगका आप निवारण करें। नाथ ! कृपा करो। अब हमारे प्राण तड़प रहे हैं। अब आपका वियोग हमसे सहन नहीं होता।'

अट्ठारह श्लोकों तक गोपियोंने परमात्माका वर्णन किया है। परमात्माकी स्तुतिमें वे तन्मय हो गई हैं। स्तुति करते-करते इनकी दृष्टि और मन, श्रीकृष्णके चरणोंमें स्थिर हो गये हैं। यह गोपी अब तक तो भावपूर्वक वर्णन कर रही थी। अब भाव तो नहीं



रहा । गोपीके हृदयमें अब महाभाव जाग्रत हो गया । इस महाभावको गोपीने उन्नीसवें श्लोकमें व्यक्त किया है –

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु भीता शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ।
तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वित् कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ।।१९।।

भावार्थ हे प्रिय ! आपके कोमल चरण-कमलोंको हम अपने कठोर वक्षःस्थलपर डरते-डरते व धीरे-धीरे धारण करती रही हैं । इन्हीं चरणोंसे आप वनमें फिरते हो । उस समय छोटी-छोटी कङ्कड़ियोंसे क्या इन चरणोंको पीड़ा नहीं होती होगी ? इस विचारसे आप जिनके जीवन हो, ऐसा हम लोगोंकी मतिमें भ्रम उत्पन्न होता है ।

गोपियाँ अब मनमें विचार करती हैं–'हम यह क्या बोल रही हैं, जिनका बखान कर रही हैं, वे तो रूठकर हमें छोड़ गए हैं, उन्हें गुस्सा आ गया है । कहीं न कहीं हमसे भूल हुई है और इसीलिए वे मनमोहन किसी निकुंजमें या किसी जंगलमें कहीं जाकर छिप गये हैं । हम लालाको अनेक प्रकारसे मना रही हैं किन्तु इनकी तो प्रकट होनेकी इच्छा ही नहीं मालूम होती । जो भी हो, हमें भले ही वियोगका दुःख ही सहनेको मिलता रहे किन्तु हमारे लालाको थोड़ा भी दुःख नहीं मिलना चाहिये ।'

प्रेममें सुख भोगनेकी इच्छा नहीं होती उसमें तो केवल प्रियतमको सुखी देखने की इच्छा होती है । मोह, भोगकी माँग करता है, जबकि प्रेम भोग देता है ।

यह कथा प्रेमकी है । गोपीकी किसी सुखको भोगनेकी इच्छा नहीं है । उसकी तो श्रीकृष्णको सुख देनेकी इच्छा है । गोपो विचार करती है—'हम जैसे-जैसे इनकी खोज कर रही हैं, इनके पीछे पड़ रही हैं, वैसे-वैसे ही ये तो जंगलमें अन्दर-से-अन्दर छिपते चले जा रहे हैं । नंगे चरणोंसे ये फिर रहे हैं । जंगलमें तो काँटे हैं, कंकड़ भी हैं परन्तु इनके चरण तो अत्यन्त कोमल हैं । इनके कोमल चरणोंको कहीं हमारे कारण अधिक परिश्रम न करना पड़ रहा हो ।'



अब तक तो गोपी कह रही थी कि हे कृष्ण ! आपके वियोगमें हमें बहुत दुःख मिल रहा है किन्तु अब तो इसकी भाषा ही बदल गई है । प्रेमी अपना दुःख-कष्ट भूल जाता है । प्रियतमका दुःख ही इसका अपना दुःख हो जाता है । गोपीके हृदयमें भाव जागता है—'हमारे लिए लालाको दुःख सहन करना पड़ता है । इनके कोमल चरणोंको परिश्रम होता है । इनको बिल्कुल भी दुःख नहीं होना चाहिए । हम भले ही दुःखी हो जायँ । हम दुःखमें श्रीकृष्णका स्मरण करते-करते मरेंगी । फिर जन्म लेंगी और श्रीकृष्णका चिन्तन करेंगी किन्तु अब हमें मोहनके कोमल चरणोंको परिश्रम नहीं देना है । ये आनन्दमें ही रह आवें, इस बातको हमें ध्यान रखना है ।'

अब गोपियोंकी दृष्टि और मन श्रीकृष्णके चरणोंमें स्थिर हो गए हैं । वे कहती हैं—'हे नाथ ! भले हो आप हमें दर्शन न दें । आपकी हमसे मिलनेकी इच्छा नहीं है तो भले ही न मिलें किन्तु आप जंगलमें भटक रहे हो, यह हमसे सहन नहीं होता । हे प्रिय ! आप हमारे प्राण-प्रिय हैं । आपके मंगलमय चरणोंको हम अपने हृदयमें रखती हैं । फिर भी हमें घबराहट होती रहती है । विशेषरूपसे यह सोचकर कि श्रीकृष्णके चरण-कमल तो बहुत कोमल हैं और हमारा हृदय बहुत कठोर है ।'

भगवान् गोपियोंसे कहते हैं—तुमको भय लगता है कि तुम्हारा हृदय कठोर है और मेरे चरण कोमल हैं । तो फिर मेरे चरणोंको अपने हृदयमें तुम रखती कैसे हो ?' यह सुनकर गोपियोंने कहा—'नाथ ! हम जानती हैं कि आपके चरणोंको जब हम अपने हृदयमें रखती हैं तो आपको सुख मिलता है । आपको सुख देनेके लिए हम आपके चरणों को अपने हृदयमें रखती हैं किन्तु भय तो हमें यह सोचकर लगता ही रहता है कि हमारा हृदय बहुत कठोर है ।'

गोपियोंकी आसक्ति श्रीकृष्णके चरणोंमें है । पूजा भी चरणोंकी ही की जाती है । हाथोंकी तो पूजा होती नहीं । परमात्माके सर्वांगकी निरन्तर सेवा-पूजा तो कोई कर ही नहीं सकता । ईश्वरका स्वरूप अत्यन्त विशाल है । वे आनन्दमय हैं । सर्वशक्तिमान हैं ।



इनके सर्वांगकी सेवा-पूजा करना असम्भव है किन्तु प्रभुके चरणोंकी जो निरन्तर पूजा करता है, उसे सर्वांगकी पूजा करनेका पूरा-पूरा फल मिलता है।

बालक पिताकी उंगली पकड़कर पिताके साथ-साथ चलता है। घर पहुँचनेपर माँ-से कहता है 'मैं पिताजीको पकड़कर साथ-साथ ले आया हूँ।' पिताके पूर्ण स्वरूपको तो बालक पकड़ नहीं सकता। वह पिताकी एक उंगली ही पकड़ता है और वह समझता है कि मैंने पिताको पकड़ा है। सर्वशक्तिमान परमात्माके सर्वांगकी पूजा सम्भव नहीं है। उनके चरणोंकी ही पूजा होती है। उनके चरणोंका ही स्पर्श किया जाता है। भगवान्के चरण गोपियोंको अत्यन्त प्रिय लगते हैं।

हाथोंसे क्रिया होती है, यह बात सच है किन्तु पूजा तो हाथोंकी होती नहीं। पूजा चरणोंकी ही होती है। गति-प्रगति भी चरणोंसे ही सिद्ध होती है तथा इसीलिए वेदमें चरैवेति कहा गया है। जो भगवान्के चरणोंका आश्रय लेता है, उसीकी भक्ति बढ़ती है और वही प्रभुके चरणोंमें पहुँचता है।

गोपियाँ भगवान्को मनाती हैं। 'नाथ! कूर्पाधिभिर्भ्रमति धीः—अब हमारी बुद्धि कुछ काम नहीं कर रही। यह बुद्धि तो अब चक्कर खा रही है, भ्रान्त हो रही है। अब इसे कुछ सूझता ही नहीं। मनमें यह बात भी आती है कि श्रीकृष्ण वनमें कितना कष्ट पाकर फिरते होंगे? कोई इनकी और प्रिय सखी होगी। उसीसे मिलने ये गये होंगे। कभी ऐसा लगता है कि नहीं, नहीं, ऐसा तो हो नहीं सकता। श्रीकृष्णका हमारे प्रति सच्चा प्रेम है। बादमें कभी-कभी ऐसा विचार भी आता है कि आवेशमें ये हमें छोड़ तो गये हैं किन्तु हमारा वियोग इनसे सहन नहीं हुआ होगा इन्हें कुछ हो तो नहीं गया। किसी समय हमारी बुद्धि ऐसा कहती है कि हमारा हृदय बहुत कठोर है। इस हृदयमें हमने श्रीकृष्णके चरण पधराये हैं, इसीसे उनके वे चरण भी अब कठोर हो गए हैं। अब उन चरणोंमें कोमलता शेष न रही होगी! नाथ! इस प्रकार हम एक बड़े चक्करमें पड़ गयी हैं।'



'हे प्रिय ! आप ही तो हमारे जोवन हैं । भवदायुषां नः ।' आरम्भ तो गोपियोंने किया था 'त्वयि धृतान्वयः' ! पहिले श्लोकमें गोपीने कहा था कि आपके लिए हम जी रही हैं । अब समाप्तिमें कहती है भवदायुषां नः अर्थात् आप ही हमारे जीवन हो—तो ऐसे श्री कृष्ण ही गोपियोंके जीवन हैं, आयुष्य हैं ।

गोपी प्रभु को मनाती हैं—'नाथ ! हमारी आयु विधाता ने आपमें ही रख दी है । हमें आशा है कि आप हमें मिलेंगे । इसी आशाको लेकर तो हम जी रही हैं किन्तु अब हमारी आशा, निराशामें बदल गयी है । लगता है कि अब आपके दर्शन हमें नहीं होंगे । भले ही आप हमें दर्शन न दें । आपकी हमसे मिलने की इच्छा नहीं है तो हम आपको अब बुलायेंगी भी नही किन्तु अब आप नंगे चरणोंसे जंगलमें न भटकें । आपको बहुत परिश्रम हो रहा होगा, यह सोचकर हमको बहुत वेदनाका अनुभव हो रहा है । नाथ ! हम आपके आधार से ही तो जी रही हैं, आपके लिए ही जी रही हैं ।

इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्रधा ।
रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसाः ॥

भावार्थ—हे राजन ! इस प्रकार अलग-अलग प्रकारसे स्तुति करती हुई, प्रलाप करती हुई तथा श्रीकृष्णके दर्शनकी लालसा रखती हुई वे गोपियाँ जोर-जोरसे रुदन करने लगीं ।

शुकदेवजी महाराज राजा परीक्षितको समझाते हैं कि हे राजन् ! गोपी-प्रेमका वर्णन मैं तो कर नहीं सकता । 'इति' शब्दसे वे ऐसा संकेत करते हैं । गोपियोंकी दशाका वर्णन करते हुए इस क्रममें वे कहते हैं कि गोपियोंको अब तन-मनकी विस्मृति हो गई है । वे व्याकुल हो गयीं हैं और व्याकुल होने के कारण उनकी वाणी रुक गयी है । शुकदेवजी महाराज भी अब थक गये हैं । वे कहते हैं—'गोपी-प्रेम अनन्य है, उसका मैं क्या वर्णन करूँ ?'

गोपियाँ श्रीकृष्ण-वियोगमें अत्यन्त व्याकुल हो गयीं हैं । चित्रधा प्रगायन्त्यः, चित्रधा प्रलपन्त्यः, चित्रधा रुरुदुः । 'चित्रधा' शब्का प्रयोग यहाँ हर जगह किया गया



है। कितनी ही गोपियाँ श्रीकृष्णका कीर्तन करने लगीं तो कितनी ही प्रेममें पागल-सी होकर प्रलाप करने लगीं। अब गोपियोंको थोड़ा भी भान नहीं रहा।

गोपी क्या हैं, यह इस श्लोकमें बताया गया है। कृष्णदर्शनलालसाः। गोपी किसीकी माँ नहीं हैं, किसीकी बहिन नहीं हैं, किसीकी कन्या नहीं हैं और न वे किसीकी स्त्री ही हैं। श्रीकृष्णके दर्शनकी लालसा ही गोपी है। इस गोपीको स्त्रीत्वका भान नहीं है। केवल श्रीकृष्णके दर्शनकी आतुरता ही उसमें है।

गोपी पुकारती हुई कहती है—'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव! अब बहुत हो गया। अब दर्शन दीजिये। हमारे प्राण बहुत व्याकुल हो रहे हैं। अब हमसे आपका वियोग सहन नहीं हो रहा है।'

गोपीमें अत्यन्त दैन्य आ गया है। यही तो निःसाधन भक्ति है। श्रीमहाप्रभुजी इसी भक्तिको निःसाधन कहते हैं। श्री रामानुजाचार्य स्वामी इसे प्रपत्ति कहते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभु इसे रागानुगा भक्ति कहते हैं। आचार्योंके शब्दोंमें ही थोड़ा फेर-बदल है किन्तु सबका तत्त्व और लक्ष्य तो एक ही है।

गोपी अब निःसाधन बन गई हैं? उसका सब प्रकारका अभिमान मर गया है। उसमें दैन्य आ गया है। 'कृष्ण, 'कृष्ण' कृष्ण—ऐसा कीर्तन करती हुई गोपी अब पागल-की तरह बोल रही है। मैं कहाँ हूँ, मैं कौन हूँ—इस सबका उसे भान नहीं है। श्रीकृष्ण-दर्शनकी लालसा, श्रीकृष्णके दर्शनके लिये तरस रही है, तड़प रही है।

श्रीकृष्ण तो सखियोंके मण्डलमें ही विराजे हुए थे। गोपियोंको छोड़कर वे कहीं गये ही नहीं थे। कितने ही व्रजवासी तो ऐसा अर्थ लगाते हैं कि प्रभुने अपने पीताम्बरको ऊपर खींचकर वैसा ही घूंघट-जैसा निकाल लिया था, जैसा घूँघट गोपियाँ निकालती हैं।

यह लीला, जीव और ईश्वरकी है। लालाको आँखमिचौनीका खेल बहुत अच्छा लगता है। प्रलयकालमें जीव, मायाके अन्धकारसे छिपा हुआ रहता है। जब यह छिप जाता



है, तब सृष्टिके आरम्भमें श्रीकृष्ण इसे खोजने निकलते हैं। एक-एक जीवको वे खोज लेते हैं और कर्मके हिसाबसे उसे जन्म देते हैं। इस संसारकी रचना करनेके पश्चात् श्रीकृष्ण छिप जाते हैं और जीवसे कहते हैं—'बेटा ! एक बार मैंने तेरी खोज की थी। अब तू मुझे खोजनेके लिये निकल।' जगत्में भगवान् हैं तो किन्तु छिपे हुए हैं। जीव और ईश्वरकी यह नित्य लीला है। ईश्वरने जीवको खोजा है। अब जीवको बारी है परमात्माको खोजनेकी।

हाँ ! तो श्रीकृष्ण सखियोंके मण्डलमें ही बिराजे हुए थे। वहीं वे छिपे हुए थे। गोपियोंको छोड़कर वे कहीं गये ही नहीं थे गोपियोंको छोड़कर ये कहीं जाते भी नहीं। ये जानते हैं कि गोपियोंका प्रेम कैसा है।

अति व्याकुलताकी दशामें गोपियोंको अब मूर्च्छा आनेको है। श्रीकृष्णके मंगलमय गीत गाती हुई वे तन्मय हो गई। यों अब वे मूर्च्छावश गिरने ही वाली हैं किन्तु अब व्रजवल्लभ श्रीकृष्णसे सहन नहीं हुआ। सोचने लगे—गोपियाँ रो रही हैं। ये गिर जायें, यह मुझसे सहन नहीं होगा। मैं यह देख नहीं सकूंगा।' अरे ! खेलमें भी यदि कोई नीचे गिर जाय तो उसे उठानेके लिये लोग दौड़ पड़ते हैं। तो क्या परमात्मा खड़े-खड़े अपने प्रेमको गिरता हुआ देखेंगे ? परमात्मा भी दौड़कर नीचे गिरते हुए प्रेमी जीवको उठा लेते हैं। जब गोपियोंका अभिमान दूर हो गया, उन्हें निःसाधनता प्राप्त हो गयी और उनमें पूरा-पूरा दैन्यका भाव आ गया, तब सखियोंके मण्डलमें 'श्रीकृष्ण कन्हैयालालकी जय' बोली जाने लगी। श्रीकृष्ण अब प्रकट हो गये थे।

भगवान्ने नारदजीसे कहा है—

> नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
> मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥

'नारद ! सदाके लिये मैं वैकुण्ठमें नहीं रहता। हमेशाके लिये मैं योगियोंके हृदयमें भी नहीं रहता परन्तु मेरे वैष्णव जहाँ प्रेमसे मेरा गुणगान करते हैं, बखान करते हैं, मेरे नामका कीर्तन करते हैं, वहीं मैं हमेशा के लिये निवास करता हूँ।



तासमाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥

भावार्थ—स्मितयुक्त अर्थात् हास्यसे शोभित मुखकमलवाले तथा माला व पीताम्बर धारण किये हुए, साक्षात् मन्मथके (कामदेवके) भी मन्मथ-जैसे शौरि (श्रीकृष्ण) उन गोपियोंके मध्य प्रकट हुए ।

वसुदेवजीके पिताका नाम शूरसेन है । श्रीकृष्ण, इन्हीं वसुदेवजीके पुत्र हैं । इसीलिए इनको शौरि कहा गया है । शौरिका अर्थ शूरवीर भी होता है ।

श्रीशुकदेवजी महाराज, गोपियोंके पक्षपाती हैं । उन्हें कहना तो चाहिये था 'तासां अविरभूत् कृष्णः' । पहिले इसी प्रसङ्गमें 'श्रीकृष्ण-दर्शन लालसा' शब्दका भी प्रयोग हुआ है । यों श्रीशुकदेवजी महाराज कह सकते थे कि श्रीकृष्ण-दर्शनकी तीव्र आतुरता गोपियोंमें थी, अतः श्रीकृष्ण उनके मध्य प्रकट हुए किन्तु श्रीशुकदेवजी महाराज तो कहते हैं—'तासां आविरभूच्छौरिः' । वे शौरि कहते हैं, कृष्ण नहीं कहते आज कथा कहते-कहते श्रीशुकदेवजी महाराजको भी प्रभुकी यह बात कुछ अच्छी नहीं लगी । वे सोचने लगे कि प्रभुने यह ठीक नहीं किया । गोपी तो स्नेहकी लता है, प्रेमकी मूर्ति है । ऐसी गोपीको इतना वियोगका दुःख श्रीकृष्णने दिया । प्रभुकी यह शूरता अनुचित है । इसी कारण शुकदेवजी व्यंग्यमें कहते हैं—'अरे शौरि! अरे शूरवीर! ऐसी वीरता आप किसी कठोर हृदयवालेको दिखाओ, तब तो ठीक है, किन्तु प्रेमरूपा गोपियोंको आप यह वीरता दिखा रहे हो, यह उचित नहीं है ।'

'स्मयमानमुखाम्बुजः' । श्रीकृष्णके मुखारविन्दपर मन्द हास्य झलक रहा है । उनका भाव था कि मैंने तो थोड़ा विनोद किया था । मेरे वियोगमें तुम लोग कैसी बातें करती हो, वही सब सुननेके लिये ही मैं अन्तर्द्धान हो गया था ।

एक आचार्य ऐसा अर्थ करते हैं कि मन्द हास्यके द्वारा भगवान् गोपियोंको समझाते हैं कि मेरे वियोगमें तुम्हें कितना दुःख हुआ होगा, उसकी तुलनामें तुम्हारे



वियोगमें अधिक दुःखी हुआ हूँ। तुम्हीं इसपर थोड़ा विचार करो। मेरे वियोगमें जब ललिता बहुत अधिक रोने लगीं, तब विशाखा, चन्द्रावलि आदि सखियाँ उन्हें समझाने लगीं, तुम्हारा मण्डल तो बहुत बड़ा है। इसीलिये संख्यामें अधिक तुम लोग तो मेरी बातें करनेमें पर्याप्त समय लगा रही थीं किन्तु मैं तो तुम सबके वियोगमें अकेला बैठा रो रहा था। तुम्हारी तुलनामें वियोगका दुःख मुझे अधिक सहना पड़ा है।

पीताम्बरः। ठाकुरजी हाथमें पीताम्बर लेकर आये हैं। महापुरुषोंने अर्थ किया है कि गोपियोंके आँसुओंको पोंछनेके लिये प्रभु पीताम्बर हाथमें लेकर आये हैं। इसीलिये पीताम्बरधरः कहा गया है। प्रभु गोपियों को इस प्रकार बतलाते हैं कि मैं निष्ठुर नहीं हूँ। मैं तुम्हारे प्रेमको जानता हूँ। तुम्हारे आँसुओंको पोंछनेके लिये मैं पीतम्बर ले आया हूँ। मैं तुम्हें छोड़कर तो गया ही नहीं था। तुम जरा देखो तो। तुमने मेरे गलेमें जो माला धारण कराई थी, वह माला अब भी मेरे गले में ही है—स्रग्वी शब्दसे यह ध्वनि निकलती है।

साक्षान्मन्मथमन्मथः। आज ठाकुरजीका स्वरूप कैसा सुन्दर लग रहा है! साक्षात् कामदेवके सौन्दर्यको भी ये फीका किये दे रहे हैं। शुकदेवजी महाराज भी इस सौन्दर्यका वर्णन अपने शब्दों में नहीं कर पा रहे हैं। महापुरुष, दिव्य आँखोंके द्वारा इस स्वरूपका दर्शन करते हैं, इस स्वरूपका अनुभव करते हैं।

श्रीकृष्ण सखियोंके मण्डलमें प्रकट हुए और मन्द हास्यके द्वारा उन्होंने गोपियोंको अश्वासन दिया मानो कह रहे हों—'मैंने तो थोड़ा खेल किया था और तुम इस सबको सच मान बैठीं। मैं तुम्हें तो छोड़ ही नहीं सकता। तुमने मुझे प्रेमसे बाँध लिया है। मैं तुम्हारा ही हूँ।'

इस प्रकार प्रभुने गोपियोंसे बहुत-सी बातें कीं और गोपियोंको उन्होंने परमानन्द-रूपा बना दिया।



॥ श्रीहरिः ॥

श्रीगोपिकागीत (रास—पञ्चाध्यायी)

[पद्यानुवाद]

व्रज सुखी हुआ तेरे जन्मसे,
अटल इन्दरा राजती यहाँ ।
प्रिय दयानिधे ! दर्श दे हरे,
विकल गोपिका ढूँढती तुझे ॥१॥

शरदके विषे तालमें खिले,
वर-सरोजकी चारु श्री लिये ।
वरद हे तेरे युग्म नैन ये,
बधिक गोपिका प्राणके हुए ॥२॥

गरल-आपसे व्याल-तापसे,
जलद-वातसे वज्र-पातसे ।
वृषभ व्योमके दस्यु घातसे,
अवन है किया तूने सर्वदा ॥३॥

महर नन्दका पुत्र तू नहीं,
निखिल सृष्टिका साक्षी रूप है ।
उदित है हुआ वृष्णि वंश में,
व्यथित विश्व के त्राणके लिए ॥४॥

जिस कराब्जसे धन्य वो किये,
शरण हैं तेरे जाय तो पड़े ।
अनुगृहीतकी सिन्धुकी सुता,
कर-सरोज सो देहमें हरे ॥५॥

स्वजन-वृन्दके क्लेश हैं हरे,
सुकृत हैं करे वीरता भरे ।
हम प्रभो तेरी प्रेम किंकरी,
वदन चन्द्रका दर्श दान दे ॥६॥

प्रणत वर्गके पाप हैं हरे,
सुरभि यूथके साथ हैं फिरे ।
उरग-शीश-पै धाय जो चढ़े,
उरजपै चढ़ा श्रीपदाब्ज वे ॥७॥

हृदय है हरे मिष्ट बोल से,
निपट रावरे ने हमें फँसे ।
हम अहो तेरी मुग्ध दासियाँ,
अधरका हमें सीधु पान दे ॥८॥

तव सुधामयी प्रेम जीवनी,
अघ-निवारिणी क्लेश-हारिणी ।
श्रवन सौख्यदा विश्व तारिणी,
मुदित गा रहे वीर अग्रणी ॥९॥

हँसन वो तेरी चारुता भरी !
रमण कुंजकी केलि माधुरी ।
विजनमें दिये वैन त्यों छली,
हृदयको करें क्षुब्ध हैं सभी ॥१०॥

पशु-समूहके संगमें फिरे,
ललित कंज-से पाँव ये तेरे ।
शिल तृणादि विद्ध देखके,
विकलता हमें व्यापती बड़ी ॥११॥

दिन छिपे तेरे केश पाश ये,
सुरभि-यूथके रेणुसे भरे ।
मुख-सरोज-पै शोभने पड़े,
मदनकी व्यथा हैं बढ़ा रहे ॥१२॥

प्रणत-वृन्दकी कामना भरे,
निखिल विश्वकी सम्पदा धरे।
हरण द्वन्द्वके सिन्धुजा भरे,
धर उरोज-पै पादपद्म वे ॥१३॥

सुरत वर्द्धिनी शोक हारिणी,
इतर वृत्तिको लुप्त कारिणी।
मुरलि चूषिता मोह वारिणी,
अधरकी सुधा सीधु दे सखे ॥१४॥

विपिन में फिरे जाय तू सखे,
दिन नहीं करें वे तुझे लखे।
अलककी छटा रूप-माधुरी,
तृषित ही रहे नयन देखते ॥१५॥

पति-सुतादि की लाज छोड़के,
तव समीप है आ गयी छली।
मधुर गीतसे मोह-के हमें,
उचित है अहो त्यागना नहीं ॥१६॥

निभृतमें कहे प्रेम बैन ने,
मदनकी सुधा सीधुमें सने।
वदन की विभा नैन वान ये,
हृदयमें स्पृहा है उठा रहे ॥१७॥

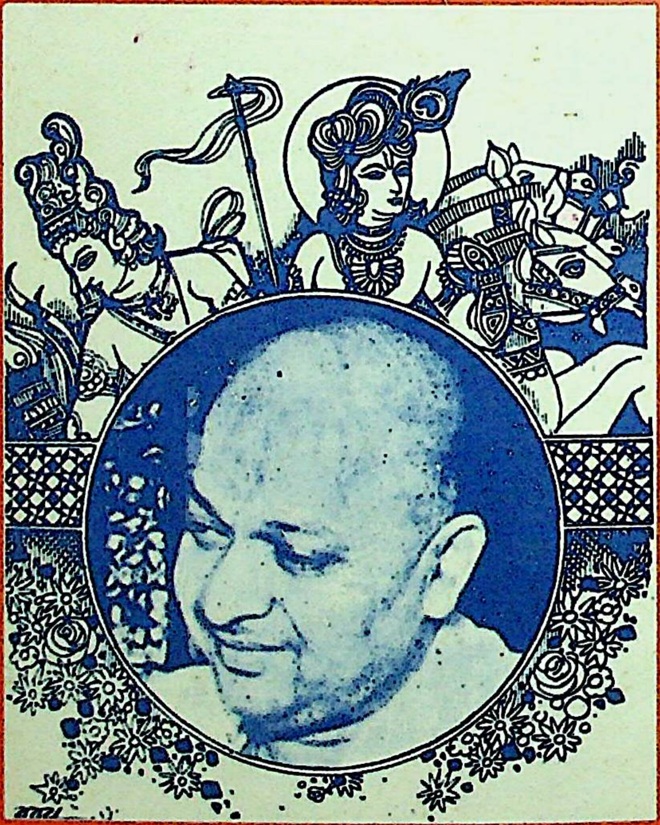
व्रज-प्रदेशमें व्यक्त रूप ले,
दुरित लोकके दूर हैं करे।
विरह-तापकी शान्ति कारिणी,
अलभ औषधी दे हमें हरे ॥१८॥

हे कृष्ण कोमल पदाम्बुज ये तुम्हारे,
जो बार बार हमने निज वक्ष धारे।
इन्से फिरो हो वन में जब प्राण प्यारे,
पीड़ा उठे है उरमें अति ही हमारे॥१९॥

—श्रीधर पाठक



श्री गोपीगीत



पू. श्री रामचंद्र डोंगरेजी महाराज